संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला १४वां पुष्प

भारतीय वृष्टिविज्ञान परिशीलन

प्रधान सम्पादक
प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति

लेखक एवं सम्पादक
प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली - 110016

संस्कृत विद्यापीठ ग्रन्थमाला १४वां पुष्प

भारतीय वृष्टिविज्ञान परिशीलन

प्रधान सम्पादक
प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति

लेखक एवं सम्पादक
प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी

श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित विश्वविद्यालय)
नई दिल्ली-16

प्रकाशक
श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ
(मानित-विश्वविद्यालय)
कुतुबसांस्थानिकक्षेत्र
नई दिल्ली-११००१६

आई.एस.बी.एन : 81-87987-72-3

प्रकाशन वर्ष - 2015

मूल्यम् : ₹ 350/-

मुद्रक:
अमर प्रिंटिंग प्रैस
दिल्ली-११०००९
दूरभाष : 9871699565, 8802451208

पुरोवाक्

भारतीय मनीषा आदि काल से ही प्रकृति का विचार बहुत ही सूक्ष्मदृष्टि सें करती रही है। प्रकृति का वैज्ञानिक विवेचन करते हुये भारतीय ऋषियों एवं आचार्यो ने जीवन के प्रत्येक बिन्दु एवं समस्या का विचार किया है। भारतीय सभ्यता जिनती प्राचीन है उतनी ही उसकी वैज्ञानिक विचार धारा भी है। भारत आदिकाल से ही कृषि प्रधान देश रहा है। इसकी प्राचीन काल से ही सर्वविध समृद्धि एवं अर्थव्यवस्था कृषि पर ही आधारित रही है। भारतीय परिप्रेक्ष में कृषि का आधार प्राकृतिक वृष्टि रही है। प्रकृति प्रदत्त वृष्टि से ही समग्र कृषि को व्यवस्थित किया जाता था। प्राचीन भारतीय विचार प्रकृति के साथ सामाञ्जस्य बनाकर चलने की बात करते हैं। भारतवर्ष में नदियाँ बहुत हैं, परन्तु नदियों का जल हम पूर्णरूप से उपयोग नहीं कर पाते हैं। प्रकृति ने हमें नदियाँ दी हमने उनका दुरुपयोग कर उन्हें दूषित कर दिया, जिसके भयानक परिणाम दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यह किसका दोष है ? अत: कह सकते हैं कि यह मानव की उपभोगवादी प्रकृति का दोष है। जल एवं जलचक्र के सन्दर्भ में वेद एवं पुराणों में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। बिना जल चक्र को समझे हम अपनी कृषि को व्यवस्थित नहीं कर सकते हैं।

प्राचीन भारत में विकसित समग्र विज्ञानों में ऋतुविज्ञान सर्वाधिक प्रशस्त एवं निरापद रहा है। प्राचीन ऋषि प्रत्येक ऋतु में होने वाली वृष्टि और वृष्टि के मूल कारक तत्त्वों का विचार करते हुये वृष्टि का पूर्वानुमान कई वर्ष पहले कर देते थे। इससे ही सभी कृषक अपनी कृषि को व्यवस्थित व परिमार्जित करते थे। प्राचीन काल में जहॉं कुछ लोग वृष्टि को विधाता के द्वारा निरूपित मानते थे वहीं आचार्यों का एक वर्ग ऐसा भी था जो प्रत्येक वृष्टि के कारणों के अन्वेषण में सतत संलग्न था। महर्षि पाराशर ने कृषि एवं वनस्पति के उपज का कारण वृष्टि को ही

माना है। इसलिये इन्होंने कहा है कि यत्नपूर्वक वृष्टि का विचार करना चाहिये। यथा -

वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलञ्च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्।।

गीता में भगवान् कृष्ण सभी प्राणियों को अन्न से, अन्न को वृष्टि से, वृष्टि को यज्ञ से और यज्ञ को कर्म से समुद्भूत हुआ मानते हैं। यथा-

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः।।

यह यज्ञ क्या है? जिससे मनोकामना की पूर्ति होती है। पर्जन्य और यज्ञ के विषय में यदि विचार करें तो सर्व प्रथम प्रश्न उत्पन्न होता है कि यज्ञ से पर्जन्य का निर्माण कैसे सम्भव है? इस तरह के बहुत प्रश्न उत्पन्न होते हैं। आप् (जल) की याज्ञिकता और उत्पत्ति के साथ-साथ स्वरूप कैसे प्रकट होता है? जल कहाँ से किस रूप में पृथ्वी तक पहुँचता है? इन सभी प्रश्नों का समाधान वैदिक साहित्य के अध्ययन से हो जाता है। वैदिक साहित्य से ही पर्जन्य एवं यज्ञ का ठीक-ठीक सम्बन्ध समझ में आता है। ऋषियों ने समग्र चिन्तन से यह पाया कि समग्र वृष्टि का आधार सूर्य है। यथा - **सूर्याद् हि जायते तोयं तोयाद् शस्यानि शाखिनः।**

जल के भौतिक स्वरूप के सन्दर्भ मे जब विचार करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि जल का उद्भव अग्नि से हुआ। जैसा कि उपनिषद् में कहा भी है "**अग्नेरापः**" इति। सांख्यदर्शन ने जल को रस तन्मात्रा से, नैयायिकों ने परमाणु विशेष से जल को उत्पन्न माना। वेदान्त में कहा गया है कि "**तमः प्रधानविक्षेपशक्तिमदज्ञानोपहितचैतन्यादाकाश आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापोऽदभ्यः पृथिवी चोत्पद्यते**" इत्यादि अर्थात् तमःप्रधान विक्षेप शक्तिमदज्ञानोपहित चैतन्य से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथवी उत्पन्न हुइ। अतः जल की उत्पत्ति अग्नि से हुई ऐसा सभी भारतीय चिन्तकों का मानना है।

आधुनिक वैज्ञानिक भी वृष्टि के मूल में सूर्यताप को ही स्वीकार करते हैं। भारतीय ऋषि परम्परा प्रकृति के लक्षणों व ग्रहों के राशि सञ्चार के आधार पर दिक्-देश-काल के अनुसार वृष्टि के पूर्वानुमान में सर्वाधिक सफल रही। ऋत्वानुकूल परिवर्तन से मात्र एक वर्ष की और ग्रहों के आधार पर कई वर्षों की वृष्टि का पूर्वानुमान किया जा सकता है।

ग्रहचार के आधार पर किया जाने वाला वृष्टि का पूर्वानुमान पूर्ण वैज्ञानिक लगता है। इन दोनों विधियों से यदि ऋत्वानुकूल वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाय तो सर्वाधिक अनुकूल परिणाम मिलेंगे और धन व्यय भी कम होगा, जबकि आधुनिक दृष्टि से वृष्टि के पूर्वानुमान में सर्वाधिक धन व्यय करने पर भी मात्र कुछ ही दिनों की वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है।

भारतीय वृष्टि विज्ञान पर गहन शोधकार्य करते हुए प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी ने प्राचीन और अर्वाचीन वृष्टि का तुलनात्मक वैज्ञानिक आकलन किया है। यह अध्ययन अत्यन्त उपयोगी एवं शास्त्र के वैज्ञानिक आधार को पुष्ट करने वाला है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ के प्रकाशन से वृष्टिविज्ञान के जिज्ञासुओं एवं शोध अध्येताओं को निश्चित एक नई दृष्टि मिलेगी, एतदर्थ मैं प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी को साधुवाद देता हूँ।

प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
कुलपति

प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय **पूर्वपीठाध्यक्ष**
राष्ट्रपतिसम्मानप्राप्त सवाईजयसिंहज्योतिर्विज्ञानपीठ
पूर्व संकायप्रमुख एवं अध्यक्ष, ज्योतिषविभाग ज.रा.रा.संस्कृतविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी – 221005 जयपुर, राजस्थान
38, मानसनगर, वाराणसी-5, फोन-फैक्स 0542-2310707, Email : rcp_9rediffmail.com

दो शब्द

किं वातः परमन्यच्छास्त्रज्यायोऽस्ति यद्विदित्वैव।
प्रध्वंसिन्यपि काले त्रिकालदर्शी कलौ भवति।। (वराहः)

आचार्य वराहमिहिर कि यह उक्ति ज्योतिषशास्त्र के महत्व का प्रदर्शित करते हुए वर्तमान समय में इसकी उपयोगिता की ओर भी इंगित करती है। निःसन्देह एकमात्र ज्योतिष शास्त्र ही ऐसा शास्त्र है जो जीवन से सम्बन्धित या समस्त संसार से सम्बन्धित सभी पक्षों पर विचार कर मनुष्य का मार्गदर्शन करने में आज भी सक्षम है। सर्ग से विसर्ग तक, पिण्डों की स्थिति और गति ज्ञान में भूगोल से लेकर ब्रह्माण्ड की सीमा तक, कालगणना में परमाणु से कल्पान्त तक, प्रकृति में कृषि से वृष्टि तक, प्राकृतोत्पात में ईति से भूकम्प तक, मानव जीवन में आधान से अवसान तक सर्वत्र ज्योतिष शास्त्र विद्यमान है। शिक्षा क्षेत्र की आधुनिक अनेक विधाओं का प्रतिनिधित्व करने वाला एकमात्रशास्त्र ज्योतिष शास्त्र ही रहा है। इस शास्त्र की आधार शिला गणित पर स्थित है इसलिए यह शास्त्र प्रामाणिक और सार्वकालिक है। ईसा पूर्व सहस्राब्दियों से भारतीय, गणित के परिणाम स्वरूप ज्योतिष के अनेक प्रमाण वैदिक काल से ही उपलब्ध हैं। लगभग 5000 वर्षों से ही ग्रहगणना से सम्बन्धित सूर्य-चन्द्रग्रहण के अनेक प्रमाण महाभारत आदि प्राचीनतम ग्रन्थों में सुलभ हैं जिनका उल्लेख भारतीय इतिहास से सुपरिचित अनेक विद्वानों ने समय-समय पर किया है। ऐसे महत्त्वपूर्ण और जीवनोपयोगी शास्त्र की उपेक्षा जनहित में नहीं है। यह न केवल विचारणीय है अपितु इस तथ्य को पुनः प्रयोग द्वारा विश्व के समक्ष उपस्थित करने की महती आवश्यकता है। कहा जाता है कि ज्योतिषशास्त्र में अध्ययन के साथ-साथ तप की भी

आवश्यकता होती है। तप का एक रूप प्रयोग विज्ञान भी है। मुझे स्मरण है कि एक बार मैंने और डॉ. धुनीराम त्रिपाठी ने कृषिपाराशर पर आधारित वृष्टिज्ञान के परीक्षणार्थ 24 घण्टे की वायु की दिशा एवं वेग का संकलन करने का अहर्निश प्रयास किया था। अहोरात्र जागरण करते हुए वायु का निरीक्षण करना स्वयं एक कठिन अनुष्ठान था, परन्तु उस अनुष्ठान के द्वारा जो वृष्टि का पूर्वज्ञान किया गया वह अतिशय उत्साहवर्धक रहा। इस प्रकार के प्रयोग भी एक प्रकार के तप ही हैं। यह एक लघुप्रयास उदाहरण मात्र है। सभी पहलुओं पर अहर्निश परीक्षण करने से हमें शास्त्र के गूढ़ तत्वों का प्रत्यक्षीकरण होगा। ऐसी स्थिति में आचार्य वराह मिहिर की यह उक्ति चरितार्थ होती रहेगी–

दैवविदविहितचित्तो द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति।
तस्य मुनेरिव वाणी न भवति मिथ्याम्बु निर्देशे॥

–बृ.सं.ग.ल.5

जो दैवज्ञ एकाग्र मन से अहर्निश मेघगर्भ लक्षण का निरीक्षण करते रहते हैं, मुनियों की तरह वृष्टि सम्बन्धी उनकी भविष्यवाणी असत्य नहीं होती है।

वृष्टि की आवश्यकता सभी देशों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि जल ही जीवन है तथा जल का साधन वृष्टि है। इसी प्रकार अन्न के लिए भी कहा गया है– अन्न ही प्राण है, अन्न ही सभी प्रकार के मनोरथों का साधक है। देवासुर एवं मनुष्य सभी अन्न पर जीवित हैं। अतः अन्न के लिए कृषि कर्म करना आवश्यक है किन्तु बिना वृष्टि के कृषि सम्भव नहीं है। अतः सर्वप्रथम वृष्टि का ज्ञान ही आवश्यक है। कहा है–

वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्।
तस्मादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्॥

–कृषिपाराशर 2.1

मुझे अतीव प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि युवा दैवज्ञ प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी ने इस दिशा में अपनी अभिरुचि दिखलाई है तथा भारतीय वृष्टिविज्ञान परिशीलन नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में भारतीय ज्योतिष के वृष्टिविषयक अनेक तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। यदि इन सभी परीक्षणीय विन्दुओं पर प्रायोगिक शोध किया जाय तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि वृष्टिसम्बन्धी पूर्व ज्ञान में महत्वपूर्ण सफलता मिलेगी। मैं इस कार्य के लिए प्रो.देवीप्रसाद त्रिपाठी को साशीर्वाद साधुवाद देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि शोध और लेखन में सतत प्रवृत्त रहते हुए ज्योतिष शास्त्र के गूढ एवं व्यावहारिक तथ्यों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करते रहेंगे। मैं इनके सुखद एवं यशस्वी जीवन की कामना करता हूँ।

–रामचन्द्रपाण्डेय

भूमिका

भारत आदिकाल से ही कृषि प्रधान देश रहा है। ऋषियों ने कृषि को व्यवस्थित करने के बहुत प्रयत्न किये है जैसा कि प्राचीन साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है। प्राचीन काल में भी देश की सर्वविध समृद्धि एवं अर्थव्यवस्था कृषि पर ही आधारित होती थी । आज भी अर्थ व्यवस्था सर्वाधिक कृषि पर ही आधारित रहती है। जब से हमारे देश में कृषि पर ध्यान देना प्रारम्भ हुआ तभी से हम विकासशील देशों की कोटि में आये। यदि हमें पूर्ण रूप में विकसित होना है तो कृषि पर पुन: बहुत सूक्ष्मता से विचार कर ध्यान देना होगा। भारत की भौगोलिक स्थिति कृषिप्रधान देश की है और प्रकृति ने भी हमें बहुत सहयोग किया है परन्तु हम प्रकृति के साथ न चल कर अप्राकृतिक कृषि पर अधिक ध्यान देने की बात करते हैं जो कि ठीक नहीं है। यदि हम प्राकृतिक रूप से प्रदत्त कृषि पर ही रहे और उसे ही आगे बढ़ाये, तो सर्वाधिक उत्तम होगा । भारत वर्ष में नदियाँ बहुत हैं, परन्तु नदियों का जल हम पूर्णरूप से उपयोग नहीं कर पाते हैं और हमारा यह जल समुद्र में चला जाता है क्योंकि यह उसकी अपनी प्रकृति है। प्रकृति ने हमें नदियाँ दी हमने उसे उपयोग में नहीं लिया तो किसका दोष है? निश्चित रूप में यह दोष हमारा या हमारी व्यवस्था का ही है। नदियाँ जल से भरपूर रहे। यह जल चक्र के व्यवस्थित क्रम से ही सम्भव है। जल एवं जलचक्र के सन्दर्भ में वेद, वेदाङ्ग एवं पुराणादि में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। बिना जल चक्र को समझे हम अपनी कृषि को व्यवस्थित नहीं कर सकते हैं। इसलिए प्राचीन पराशरादि ऋषियों के कृषि का मूल वृष्टि को माना और कहा कि यही वृष्टि जगत का

पालन करने वाली है। वृष्टि ही जीवन का मूल है, वृष्टि है तो सब कुछ है।[१] इस सन्दर्भ में वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में कहा है कि संसार का प्राण अन्न है और वह अन्न वर्षाऋतु के अधीन है अत: यत्नपूर्वक वर्षा ऋतु की परीक्षा करनी चाहिए।[२] आचार्य वराहमिहिर कहते हैं कि मैं जो कुछ भी वृष्टि के विषय में कह रहा हूँ। यह सब कुछ आदि मुनियों गर्ग, पराशर, कश्यप एवं वज्रादि के द्वारा निबद्ध साहित्य पर आधारित है।[३] जो दैवज्ञ रात–दिन अविक्षिप्त चित होकर वृष्टि विचार में लगे रहते हैं ऋषि–मुनियों की भाँति उनकी वाणी (पूर्वानुमान) कभी मिथ्या नहीं होती है।[४]

श्रीमद्‌भगवद् गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि अन्न से ही भूत अर्थात् प्राणियों का जीवन है, अन्न पर्जन्य (बरसने वाले मेघ) से पैदा होता है। पर्जन्य यज्ञ से उत्पन्न होता है और यज्ञ कर्म से समुद्‌भूत होता है। यथा –

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभव:।

यज्ञाद्भवति पर्यन्यो यज्ञ: कर्मसमुद्भव:।।[५]

यह यज्ञ क्या है? जिससे मनोवृत्ति की पूर्ति होती है। पर्जन्य और यज्ञ के विषय में यदि विचार करें तो सर्व प्रथम प्रश्न उत्पन्न होता है कि यज्ञ से पर्जन्य का निर्माण कैसे सम्भव है? इस तरह के बहुत प्रश्न उत्पन्न होते हैं। आप् (जल) की याज्ञिकता और उत्पत्ति के साथ–साथ स्वरूप कैसे प्रकट होता

---

१. वृष्टिमूला कृषि: सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्।। – कृषिपराशर–२/१

२. अन्नं जगत: प्राणा: प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम्।
यस्मादत: परीक्ष्य: प्रावृट्काल: प्रयत्नेन।। – बृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्याय–०१

३. तत्रैव श्लो–०२

४. तत्रैव श्लो–०३

५. श्रीमद्‌भगवद् गीता – ३/१४

है? जल कहाँ से किस रूप में पृथ्वी तक पहूँचता है? इन सभी प्रश्नों का समाधान वैदिक साहित्य के अध्ययन से हो जाता है। बिना वैदिक साहित्य के इनका समाधान खोजना बहुत कठिन है। वैदिक साहित्य से ही पर्जन्य एवं यज्ञ का ठीक–ठीक सम्बन्ध समझ में आता है। आधुनिक वैज्ञानिकों का एक समुदाय वेदमूर्ति केतन काले और डॉ. टी. वेणूगोपाल आदि भी इस परियोजना पर प्रायोगिक कार्य कर रहे हैं कि **"यज्ञाद् भवति पर्जन्यः"** कैसे सम्भव है। इस प्रायोगिक परियोजना में इन्हें अनुकूल परिणाम भी मिले हैं।

वैदिक परम्परा के अनुसार **"अग्नौ सोमाहुतिर्यज्ञः"** अर्थात् अग्नि में सोम की आहुति ही यज्ञ है। यद्यपि भिन्न–२ परिपेक्ष में शास्त्रकारों ने यज्ञ को परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। जैसे– **"अन्नोर्कप्राणानामन्योन्यपरिग्रहो यज्ञः", "वाचाश्चित्तस्योत्तरोत्तरिक्रमो यज्ञः"** आदि[१] इन सभी परिभाषाओं का समन्वय **"अग्नौ सोमाहुतिर्यज्ञः"** के अन्तर्गत समाहित हो जाता है। नित्यप्रति पृथ्वी के वातावरण में निहित सोम की आहुति सूर्य रश्मियों के द्वारा निसृत अग्नि में होती रहती है। यही प्रकृति द्वारा होने वाला यज्ञ है जिससे पर्जन्य उत्पन्न होता है। यज्ञ एक प्रक्रिया है जो प्राकृतिक रूप से निरन्तर चलती रहती है। इस सन्दर्भ में मनुस्मृति में मनु कहते हैं कि – अग्नि में छोड़ी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है। सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजायें उत्पन्न होती हैं।[२]

वेद की ऋचाओं में वर्णन मिलता है कि अग्नि और जल का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अग्नि को जल का पित्त (ऊष्मा) कहा गया है।[३] ऋग्वेद की एक ऋचा में वर्णन मिलता है कि जल में अन्तर्हित अग्नि को कौन जानता है? अग्नि जल का पुत्र है परन्तु अग्नि ही रूपवान् जल की रचना भी करता है।

---

१. उद्धृत कादाम्बिनी, पं. मधुसूदन ओझा, भूमिका पृष्ठ १२ संस्करण–२००३

२. अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यग् आदित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।। – मनुस्मृति–३/७६

३. अग्नेः पित्तम् अपामसि । अथर्ववेद–१८/३/५

अग्नि के कारण ही मेघ बनते हैं और वर्षा होती है। इसी लिए जल के गर्भ में अग्नि वास करती है ऐसा वेदों में वर्णन मिलता है।[1] जल में विद्युत् रूप में रहने वाली अग्नि ही बादलों का निर्माण करती है। सूर्य की किरणें जल को भाप रूप में अपने आकर्षण से ऊपर ले जाती है और पुनः वृष्टि के रूप में पृथ्वी पर बरसाती है जिससे पृथिवी गीली हो जाती है।[2] ऋग्वेद में जल चक्र का वर्णन मिलता है इस सन्दर्भ में उल्लेख है कि जो जल सूर्य की किरणों से ऊपर जाता है वही जल अन्तरिक्ष को शान्ति प्रदान कर, वायुमण्डल को पोषित करता हुआ मेघ के रूप में वृष्टि के द्वारा पृथिवी को भी पोषित करता है।[3] यजुर्वेद में वर्णन मिलता है कि जल के कण भाप रूप में संगठित होते हैं और मरुत (वायु) के रूप में ये कण आकाश में ऊपर पहुँचते हैं और उसके बाद वृष्टि होती है।[4] मेघ के निर्माण एवं वृष्टि में मरुतों का योगदान सर्वाधिक है यह उल्लेख ऋग्वेद[5] एवं अथर्ववेद[6] में विस्तृत रूप में उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में मेघ बनाने वाले मूल तत्त्वों में जल (भाप), मरुत (वायु), अग्नि, अभ्र, विद्युत् का प्रमुख रूप में उल्लेख मिलता है।[7] तैत्तिरीय संहिता में वर्षा के कारणों में मरुत (वायु), अग्नि, सोम और सूर्य का विशेष रूप में उल्लेख मिलता है।[8] इन देवों के अतिरिक्त वसुगण, शर्मण्यदेव, आशुहेमन् (तीव्र गति

---

१. ऋग्वेद १.९५.०४, १.७०.०२
२. कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा। अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति।। – ऋग्वेद–१/१६४/४७
३. समानमेतदुदकम् उच्चैत्यव चादभिः। भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वत्यग्नयः।। –ऋग्वेद–१/१६४/५१
४. मरुतां पृषतार्गच्द, वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह।। – यजुर्वेद–२/१६
५. उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्ष यथा पुरीषिणः।। – ऋग्वेद–५/५५/५
६. मरुद्भिः प्रच्युता मेघा वर्षन्तु पृथिवीमनुः।। – अथर्ववेद–४/१५/०७
७. अपाम् अग्निं०। आपो विद्युत् अभ्रं वर्ष। मरुद्भिः प्रच्युता मेघा०। – अथर्ववेद–४/१५/०७
८. तैत्तिरीय संहिता– २.४.७–८

वाला अग्नि) का भी वर्णन मिलता है। इन देवों की व्याख्या में डॉ. कपिल देव द्विवेदी कहते हैं कि मित्र (आक्सीजन Oxygen) और वरुण (हाईड्रोजन Hydrogen) हैं। ये दोनों गैसे धनात्मक एवं ऋणात्मक हैं इन्हीं के मिश्रण से जल बनता है। जिसे आज वैज्ञानिक परिभाषा में H_2O कहते हैं।[1]

ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि ये मित्र और वरुण अन्तरिक्ष, द्यु एवं पृथिवी में रहते हैं। ये दोनों जल को रूपवान् बनाते हैं। इन्हीं दोनों देवों के कारण जल नेत्रों से दिखाई देता है। जल पहले गैस या वायु रूप था। मित्र और वरुण दोनों गैस या वायु रूप है जब ये दोनों अग्नि के समक्ष मिलते हैं तो जल प्रकट होता है। यथा–

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन्।

हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो करुणो जुषन्त।।[2]

ऋग्वेद में मित्र और वरुण प्रमुख देव हैं; इन दोनों देवों की स्तुति भी की गयी है। स्तुति में कहा गया है कि हे मित्र और वरुण! तुम हम पर प्रसन्न होकर अन्नों और जलों से हमारी गोचर भूमि को उत्तम बनाओ तथा अमृत के समान मधुर तथा सुस्वादु रमणीय जल लोगों को दो।[3] अथर्ववेद के वर्णन के अनुसार सूर्य की सात किरणें ही वर्षा करती है।[4] सूर्य किरणों को ही वृष्टिवान् (वृष्टिदाता अथवा वृष्टिकर्त्ता) कहा गया है।[5] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि अग्नि से धूम, धूम से अभ्र (मेघ), और अभ्र से वृष्टि होती है।[6] धूम में सोमीय

---

१. वेदों में विज्ञान, पृष्ठ–२३१, संस्करण–२००४

२. ऋग्वेद ७/६४/०१

३. आ नो मित्रावरूणा हव्यजुष्टिं धृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिलाभिः।।
प्रतिं वामत्र वरमा जनाय पृण्वीत मुद्रो दिव्यस्या चारोः।। – ऋग्वेद–७/६५/४

४. अव दिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः आपः समुद्रियाः धाराः । – अथर्ववेद – ७/१०७/१

५. स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये । – यजुर्वेद–३८/०६

६. अग्नेर्वै धूमो जायते धूमाद्भ्रम्, अभ्राद् वृष्टिः। – शतपथब्राह्मण–५/३/५/१७

तत्त्व होता है। यह जलीय तत्त्वों को एकत्रित करके वर्षा का कारण बनता है। वर्षा के लिए पुरोवात् (पूर्वीहवा), अभ्र (बादल), विद्युत्, स्तनयित्नु (गर्जन) की आवश्यकता होती है।[१]

विद्युत (अग्नि) को वर्षा का कारण माना गया है। अग्नि के आठ रूप शिव के ही आठ रूप कहे गये हैं।[२] ये आठ रूप हैं– रुद्र, सर्व, पशुपति, उग्र, अशनि, भव, महादेव और ईशान। इनमें से भव और अशनि का साक्षात् सम्बन्ध वर्षा से है क्योंकि भव को पर्जन्य और अशनि को विद्युत कहा गया है। ऋग्वेद के एक मन्त्र में वर्षा का वर्णन इस प्रकार मिलता है कि इन्द्र ने जलों को रोक कर रखने वाले मेघों को बरसाया तथा पर्वतों की चोटियों पर बैठकर जलरूपी धन को रोककर रखने वाले आवरणशील मेघों को नीचे गिराया। जब इन्द्र ने शक्ति से वृत्त को मारा, उसके बाद सूर्य ने अपना प्रकाश फैलाया।[३] इस मन्त्र में मेघ और वृष्टि का वर्णन है। मेघ समग्र आकाश में छा जाता है परन्तु बरसता नहीं है यही वृत्त है। इन्द्र ने वृत्त को मारकर अर्थात् इन्द्र विद्युत है जो मेघों को बरसाकर आकाश साफ करता है और सूर्य को चमकता है।

छान्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषदों में अग्नि के तीन रूप उल्लिखित हैं। १. द्युलोकस्थ आदित्य, २. अन्तरिक्ष में पर्जन्य (मेघ, विद्युत्), ३. पृथ्वी पर अग्नि। अन्तरिक्षस्थ अग्नि का वर्णन करते हुए वर्णन मिलता है कि पर्जन्य ही अग्नि है, वायु (Wind) उसकी समिधा है। अभ्र (बादल Cloud) इसका धूम है, विद्युत् (बिजली, Lightning) इसकी आर्चि (Radiance) है अशनि

---

१. देवा: पुरोवातं ससृजिरे अभ्राणि समप्लावयन्।
विद्युतम्...स्तनयित्नुम्,.........प्रावर्षयत्।' — शतपथब्राह्मण–१/५/२/१८

२. एतानि–अष्टौ अग्निरूपाणि, विद्युत् वा अशनि
पर्जन्यो वै भव:। पर्जन्याद् हीदं सर्वं भवति।। — शतपथब्राह्मण–६/१/३/१०–१८

३. त्वमपामपिधानावृणोरयाऽधारय: पर्वते दानुमद् वसु।
वृत्तं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित् सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे।। — ऋग्वेद–१/५१/०४

(वज्र Thunder) इसका अंगारा है और ह्रादुनि (बादलों का गर्जन, Thundering Sound) इसके विस्फुटिंग (चिनगारी) है। इस प्रकार की अग्नि में देवता गण सोमीय द्रव्यों की आहुति देते हैं इससे ही वर्षा होती है। इस आधार पर उपनिषदों में वर्षा के वायु, अभ्र, विद्युत्, अशनि, घनगर्जन और सोमीयद्रव्य विशेष उपकरण हैं। यथा– **पर्जन्यो वाव गौतमाग्निः, तस्य वायुरेव समिद्, अभ्रं धूमो, विधुदर्चिः, अशनिरङ्गाराः, ह्रादुनयो विस्फुलिंगाः।**[१]

मेघ और वायु के सन्दर्भ में ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि ये दोनों युग्म में रहते हैं । ये दोनों ही जल के धारण एवं वृष्टिकर्त्ता हैं। इनके द्वारा ही बादलों में गर्जन और कड़क है मरुत के घर्षण से ही विद्युत् और अशनि का निर्माण होता है। मरुत को ही वर्षा का कारक माना गया है।[२] यजुर्वेद में वायु के छ प्रकार के भेद मिलते हैं[३] १. समुद्रतटीय वायु, २. नदी सरोवर तटीयवायु, ३. अनाधृष्य (झोंके आनेवाली) वायु, ४. प्रतिधृष्य (तूफानी) वायु ५. अवस्यु (स्वास्थ्यवर्धक) वायु, ६. अशिमिह (शीतल मन्द और सुगन्धित) वायु।

सायण आचार्य ने ऋग्वेद के मन्त्र **"यः सप्तरश्मिः"**[४] मन्त्र की व्याख्या में सात प्रकार के पर्जन्य (मेघ) का वर्णन किया है जो वर्षा से पृथ्वी को तृप्त करते हैं। ये हैं – १. वराहु, २. स्वतपस्, ३. विद्युन्महस्, ४. धूपि, ५. श्वापि, ६. गृहमेध, ७. अशिभिविद्रिस्।[५] तैत्तिरीय संहिता में वर्षा के लिए किए जाने वाले यज्ञ को कारीरि इष्टि कहा गया है। इसमें वर्षा के आठ भेदों

---

१. छान्दोग्योपनिषद्–५.४.५, वृहदारण्यकोपनिषद्– ६.२.९

२. ऋग्वेद–१०.६६.१०, ऋग्वेद–१०.६५.०९, शतपथब्राह्मण–९.१.२.५

३. समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा, सरिशय., अनाधृष्याय., अप्रतिधृष्याय., अवस्यवे, अशिमिदाय। – यजुर्वेद–३८.०७

४. ऋग्वेद २/१२/१२

५. वराहवः स्वतपसः, विद्युन्महसः, धूपयः, श्वपयः, गृहमेधाः, अशिमिविद्विषः पर्जन्याः सप्त०। –तैत्ति. आर.–१/९/४–५

का वर्णन मिलता है[१]— १. जिनरावृत् (पूर्वी हवा के कारण होने वाली वृष्टि), २. अग्ररावृत् (तेज हवा के साथ वर्षा), ३. भीमरावृत् (बादलों की गर्जना के साथ वर्षा), ४. त्वेषरावृत् (विना मेघ गर्जन और गर्जन के साथ वर्षा), ५. पूर्तिरावृत् (रात्रि भर बरसना), ६. श्रुतरावृत् (धुआँधार बरसना)७. विराड्आवृत् (धूप के साथ बरसना) ८. भूतरावृत् (बादलों की गड़गड़ाहट के साथ बरसना)।

ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि सूर्य की किरणें पृथ्वी को ऊर्वराशक्ति देने वाली वर्षा के जल को साढे छः मास तक रोक कर रखती है। यथा— **सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि।**[२] इस मन्त्र में सप्तार्धगर्भा शब्द की व्याख्या करते हुए विद्वानों ने साढ़े छः मास अर्थात् १९५ दिन लिया है। यहां पर सप्तार्ध का अर्थ सातवां भाग आधा अर्थात् छः और आधा हुआ इसी आधार पर साढ़े छः मास ग्रहण किया गया है।

अतः उपर्युक्त समस्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य में अनेक विषयों का वर्णन विस्तृत एवं सटीक रूप में उपलब्ध है। वृष्टि विज्ञान से सम्बन्धित समस्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि आर्यो को वृष्टि और उसके हेतुओं का ठीक—ठीक ज्ञान था जिससे वे वृष्टि के पूर्वानुमान में सफल रहते थे। वैदिक ज्ञान के स्तर इस वृष्टि विज्ञान को समृद्ध बनाने में वेदोत्तर संस्कृत साहित्य का भी पूर्ण योगदान है। रामायण, महाभारत, पुराणों विशेषकर वायुपुराण, ब्रह्मपुराण, विष्णुपुराण, मत्स्यपुराण एवं अग्निपुराण व ज्योतिषशास्त्र के संहिता ग्रन्थों में मेघ निर्माण, मेघों का वर्गीकरण एवं मेघों द्वारा होने वाली वर्षा का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है जो आज भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

आज मौसम विज्ञान वृष्टि के पूर्वानुमान पर बहुत प्रकार से कार्य कर रहा है परन्तु भारतीय प्राचीन ज्ञान अभी भी उपेक्षित पड़ा है। आज

१. पुरोवातो वर्षन् जिन्वरावृत्, वातावद्वर्षन् उग्ररावृत्, भीमरावृत्, त्वेषरावृत्, पूरिरावृत्, श्रुतरावृत्, विराड्आवृत्, भूतरावृत्। — तैत्ति. सं.—२.४.७

२. ऋग्वेद—१.१६४.३६

आवश्यकता है प्राचीन मौसम विज्ञान के अध्ययन की और अध्ययनोपरान्त उसे पुन: स्थापित करने की जिससे प्राचीन ज्ञान का लाभ सभी को मिल सके। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर यह वृहद शोध योजना "प्राच्य प्रचीत्य दृष्ट्या वृष्टि विज्ञान का परिशीलन एवं परीक्षण ''विश्व विद्यालय अनुदान आयोग में अनुदान एवं हेतु प्रस्तुत किया था। योजना के उद्देश्य एवं उसकी सार्थकता को समझकर विश्व विद्यालय अनुदान अयोग ने इस विषय पर कार्य करने की अनुमति प्रदान की। यथाविधि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रारूप के अनुरूप ही इस शोधकार्य को पूर्ण किया गया। शोधकार्य को करने में काफी समस्याओं का सामना भी करना पड़ा। शोध प्रारूप के अनुसार योजना में आधुनिक एवं प्राचीन मौसम विज्ञान का परिशीलन एवं परीक्षण किया गया। इस परीक्षण प्रक्रिया के तहत समय–समय पर आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण आवश्यकता से अधिक समय इस योजना की सम्पूर्ति में लगा। इस शोध योजना में आधुनिक विज्ञान का समग्र विवरण (डाटा) मौसम विज्ञान के डाटा सेण्टर पूणे (महाराष्ट्र) से लिया गया। एतदर्थ इस अवसर पर मौसम विज्ञान, पूणे (महाराष्ट्र) के अधिकारियों का सहयोग अविस्मरणीय है।

इस शोधयोजना का सूत्रपात करने वाले संस्कृत जगत के उन्नायक परमादरणीय स्वर्गीय प्रो. वाचस्पति उपाध्याय, पूर्व कुलपति श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली थे। इनकी ही सद्प्रेरणा से यह शोधकार्य प्रारम्भ हुआ और आज इस प्रणति पर पहूँचा। अत: इस अवसर पर मैं इनको अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित करता हूँ।

इस शोध योजना में मेरा दिशानिर्देश करने वाले परमपूजनीय गुरु जी प्रो. रामचन्द्रपाण्डेय जी है। इनके सद्दिशानिर्देशों से ही यह शोध योजना अपना उद्देश्य पूर्ण करने में सफल रही। एतदर्थ में श्री गुरु चरणों में प्रणाम करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि इनका आशीर्वाद मुझ पर सदा बना रहे।

इस अवसर पर सर्वाधिक स्मरणीय मेरे मित्र डॉ. मनोजकुमार श्रीवास्तव उपाचार्य–भूभौतिकी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

हैं। इनके ही सहयोग एवं सद्परामर्श से वास्तविक रूप में यह शोध योजना अपने उद्देश्य में सफल होकर पूर्ण हुई। बिना डॉ. श्रीवास्तव के यह शोधकार्य सफलता तक नहीं पहूँच सकता था। इस शोधकार्य में जो इन्होंने अपना अमूल्य समय दिया इस हेतु धन्यवाद जैसे शब्द बहुत छोटे हैं तथापि शिष्टाचार वश मैं इन्हें धन्यवाद प्रदान करता हूँ। मेरे अन्य मित्र डॉ. नागेन्द्रप्रताप सिंह, डॉ. राजीव भाटला, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, डॉ. संगीत श्रीवास्तव एवं श्री नरेन्द्र कुमार गौड भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT) नई दिल्ली ने इस शोधकार्य में अपना सहयोग प्रदान किया। अत: मैं इन्हें भी धन्यवाद प्रदान करता हूँ।

इस शोध कार्य में प्रिय शिष्य डॉ. अशोक थपलियाल का सर्वाधिक सहयोग रहा इसके अतिरिक्त अपना सहयोग देने वाले प्रिय शिष्यों में डॉ. खीमानन्द उप्रेती, डॉ. रतनलाल शर्मा, डॉ. रामेश्वरदयाल शर्मा, श्री प्रवेश व्यास, एवं श्रीयोगेन्द्र शर्मा हैं । एतदर्थ मैं इन्हें शुभाशीर्वाद देता हूँ और ईश्वर से कामना करता हूँ कि ये सभी अपने लेखन एवं शोधकार्य में संलग्न रहें।

इस कार्य की सम्पूर्ति में विद्यापीठ के यशस्वी कुलसचिव डॉ. वी. के. महापात्र, शोध एवं प्रकाशन विभागाध्यक्ष प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय तथा ज्योतिष विभागाध्यक्ष प्रो. प्रेमकुमार शर्मा का सहयोग भी अविस्मरणीय रहा है। अत: मैं इन्हें धन्यवाद प्रदान करते हुए कामना करता हूँ कि इन लोगों की सद्भावना मुझ पर सास्वत बनी रहे। इन लोगों की सद्प्रेरणा से ही यह कार्य सम्पन्न हो सका। इस शोधयोजना में अपना कार्यालयीय सहयोग प्रदान करने वाले श्री अजयकुमार टण्डन व उनके सभी विभागीय सहयोगियों तथा लम्बे समय से टंकण का कार्य कर रहे श्री अशोक कुमार का भी मैं धन्यवाद करता हूँ। जिन अन्य ज्ञाताज्ञात मित्रों ने समय–समय पर इस शोधयोजना के कार्य के निमित्त अपना समय देकर इस शोध योजना को पूर्ण करने में सहयोग किया। मैं उन सभी को भी धन्यवाद प्रदान करते हुए कामना करता हूँ कि

इनकी यह भावना सदा बनी रहे।

इस अवसर पर मैं अपनी धर्म पत्नी श्रीमती सावित्री देवी को भी साधुवाद देता हूँ। इन्होंने इस कार्य के प्रति सदा मेरा उत्साह बनाये रखा।

मुझे विश्वास है कि आधुनिक विज्ञान के अध्येता व जिज्ञासु इस शोधप्रबन्ध का अध्ययन कर अपने ढंग से इसे अपने प्रयोग में लेकर प्राचीन पद्धतियों की गुणवत्ता का आंकलन करते हुए प्राचीन विधियों को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न करेंगे। सभी के प्रयत्न करने से ही कोई कार्य सफल होता है। यदि यह सम्भव हुआ तो मेरा यह प्रयास सार्थक समझा जायेगा। सभी अध्येताओं व जिज्ञासुओं से नम्र निवेदन है कि त्रुटियों का यथा सम्भव समाधान करते हुए, उपयोगी तथ्यों को ग्रहण करेंगे। यथा—

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः।।

—देवीप्रसाद त्रिपाठी

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय BANARAS HINDU UNIVERSITY
ESTABLISHED BY PARLIAMENT BY NOTIFICATION NO. 225 OF 1916

डा. मनोज कुमार श्रीवास्तव
उपाचार्य, भू-भौतिकी विभाग
Dr. Manoj Kr. Srivastava
Associate Professor, Department of Geophysics

दो शब्द

ग्रन्थ का शीर्षक भारतीय वृष्टि विज्ञान परिशीलन स्वयं ही अपने सार्थक उद्देश्य को प्रस्तुत करता है। यह ग्रन्थ मौसम विज्ञान के प्राचीन भारतीय ज्ञान को न केवल संकलित करता है अपितु उस ज्ञान को आधुनिक ज्ञान से प्राप्त आंकड़ों के द्वारा परिशोधित भी करता है। सम्प्रति आधुनिक मौसस विज्ञान के उच्च स्तर एवं लगभग सटीक भविष्यवाणी के इस काल में भी इस प्राचीन विधा पर कार्य करना अपने आप में एक संशय की स्थिति पैदा करता है। मैं इस कार्य के आरम्भ से ही संबद्ध रहा हूँ इसके अंतिम निष्कर्ष पर हमेशा से संशय रहा करता था। जैसे-जैसे यह शोध कार्य गति पकड़ता गया एवं निष्कर्ष सामने आने लगे, तो लगा कि इस विधा पर भी गहन विचार एवं शोध की आवश्यकता है। इस शोधकार्य के निष्कर्ष अपेक्षा से कहीं अधिक उत्साह वर्द्धक हैं।

इस ग्रन्थ को प्रो. त्रिपाठी ने बहुत ही सटीक ढ़ग से प्रस्तुत किया है। इन्होंने प्राच्य एवं आधुनिक दोनों विधाओं को उचित स्थान दे कर उल्लेखनीय कार्य किया है। वृष्टि, मेघ, वायु एवं भूमि, आधुनिक एवं प्राचीन दोनों दृष्टियों से मौसम पूर्वानुमान में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस ग्रन्थ में मौसम के इन चार घटकों के द्वारा प्राच्य एवं आधुनिक दोनों विधियों से मौसम पूर्वानुमान की विधाओं को समझाने का प्रयत्न किया गया है। आधुनिक ज्ञान के अनुसार इन चार घटकों के इतर मौसम के एवं वायुमण्डल के उल्लेखनीय परिणामों का मुख्य स्रौत सूर्य माना जाता है परन्तु इस ग्रन्थ में प्राच्य ज्ञान के आधार पर सूर्य के अतिरिक्त अन्य ग्रहों-उपग्रहों, अर्थात् चन्द्र, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति एवं शनि

BHU capital of knowledge
Varanasi 221005, UP, India
T. 91.542.670.2955
E. mksriv@gmail.com
M. 91.9452.82.8888

आदि को भी मुख्य स्थान दिया गया है इस भाग में ही मुख्य रूप से आधुनिक एवं प्राचीन पूर्वानुमान की विधियों में भेद प्रदर्शित होता है। जहाँ आधुनिक विज्ञान वायुमण्डल की मुख्य ऊर्जा का कारक सूर्य को समझता है वहीं प्राच्य ज्ञान सूर्य के अतिरिक्त अन्य ग्रहों को भी मौसम पूर्वानुमान में मुख्य घटक के रूप में प्रमुखता देता है। अन्य प्रभागों में भी वृष्टि के लक्षण एवं काल साथ ही तत्कालीन वर्षा (Thunderclonds) एवं मानसून की वर्षा के सम्बन्ध में प्राच्य एवं आधुनिक विधाओं को प्रस्तुत किया गया है।

इस ग्रन्थ का मुख्य सार प्राचीन एवं आधुनिक विधियों एवं उनसे मिलने वाले वर्षा के पूर्वानुमान की समीक्षा है। लेखक ने पूर्व ज्ञान के आधार पर प्राप्त दो विधियों से वृष्टि का पूर्वानुमान प्रस्तुत किया है। इन दो विधियों पर निर्भर रहकर जिसमें कई कमियाँ भी हैं, परन्तु इसके पश्चात् भी आंकड़ों के आधार पर एक अच्छा पूर्वानुमान मिलता है। यदि अन्य विधियों का भी आकलन किया जाए तथा इन दो विधियों, 'ग्रहचार' एवं 'पौष मास की वायु' पर अधिक सटीक ढ़ग से आंकड़ों को एकत्रित किया जाय और उसके पश्चात् निर्दिष्ट परिणामों की समीक्षा की जाए तो सफलता का औसत बढ़ सकता है।

इस ग्रन्थ को देखकर बहुत दिनों के पश्चात् ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि कोई कार्य निष्ठा, धेय एवं धैर्य से किया जाए तो निष्कर्ष संतुष्ट कर सकता है। इस कार्य के आरम्भ से ही मैंने यह अनुभव किया था। विभिन्न स्तरों पर लेखक से वार्तालाप एवं विचार विमर्श, कार्य में हो रही प्रगति को दर्शाता रहता था। अब, जब यह शोध कार्य और उसका निष्कर्ष एक ग्रन्थ का रूप ले रहा है तो प्रसन्नता हो रही है। अतः मैं इस कार्य के मुख्य शोधकर्ता, प्रोफेसर देवीप्रसाद त्रिपाठी एवं उनके शोध छात्रों को इस अप्रतिम कार्य के सफलता पूर्वक सम्पन्न होने एवं मौसम के लिए एक नई दिशा प्रदान करने के लिए बधाई देता हूँ और अनुरोध करता हूँ कि पुनः इस प्राचीन ज्ञान पर विस्तृत चर्चा एवं गहनशोध की सम्भावना पर विचार करें जिससे कि एक प्राच्य विधि को आधुनिक बनाने में सहयोग प्राप्त हो सके।

–डॉ. मनोज कुमार श्रीवास्तव

विषय सूची

चतुर्थ अध्याय :

पञ्चम अध्याय :

षष्ठ अध्याय :

संकेताक्षरसूची

अ.को.	—	अमरकोश
अ.वे.	—	अथर्ववेद
अ.ध्या.	—	अष्टाध्यायी
अ.पु.	—	अग्निपुराण
अ.ज्यौ.	—	अथर्वज्यौतिष
अ.सा.	—	अद्भुतसागर:
अ.ज्यो.वि.	—	अर्वाचीनज्योतिविज्ञान
काद.	—	कादम्बिनी
कृ.पा.	—	कृषिपाराशर
ज्यौ.र.	—	ज्यौतिषरत्नाकर
ज्यो.वि.भ.	—	ज्योतिर्विदाभरण
ज्यो.पी.	—	ज्योतिषपीयूष
ज्यो.शा.इ.	—	ज्योतिषशास्त्रस्येतिहास
ज्यो. सा.	—	ज्योतिषसार
ना.सं.	—	नारदसंहिता
न.ज.स्व.	—	नरपतिजयचर्यास्वरोदय
बृ.सं.	—	बृहत्संहिता
भ.बा.सं.	—	भद्रबाहुसंहिता

भ.पु.	—	भविष्यपुराण
भा.ज्यो.	—	भारतीयज्योतिष
भु.दी.	—	भुवनदीपक
म.पु.	—	मत्स्यपुराण
म.चि.	—	मयूरचित्र
म.भा.	—	महाभारत
मु.चि.	—	मुहूर्त्तचिन्तामणि
मे.मा.	—	मेघमाला
ना.ज्यो.	—	नारदीयज्योतिष
ना.त्रि.ज्यो.	—	नारदत्रिस्कन्धज्योतिष
बृ.दै.र.	—	बृहद्दैवज्ञरञ्जन
अ.वे.सं.	—	अथर्ववेदसंहिता
ऋ.वे.	—	ऋग्वेद
ऐ.ब्रा.	—	ऐतरेयब्राह्मण
गो.ब्रा.	—	गोपथब्राह्मण
जै.ब्रा.	—	जैमिनीयब्राह्मण
तां.ब्रा.	—	ताण्ड्यब्राह्मण
तै.ब्रा.	—	तैत्तिरीयब्राह्मण
तै.सं.	—	तैत्तिरीयसंहिता
ब्र.वै.पु.	—	ब्रह्मवैवर्त्तपुराण
ब्र.पु.	—	ब्रह्माण्डपुराण
भु.को.वि.	—	भुवनकोशविमर्श
भा.गो.मी.	—	भास्करीयगोलमीमांसा

सू.सि.	—	सूर्यसिद्धान्त
आ.व.वा.वि.	—	आर्षवर्षावायुविज्ञान
कू. पु.	—	कूर्मपुराण
ली.व.	—	लीलावती
छा.उ.	—	छान्दोग्योपनिषद्
भा.ज्यो.इ.	—	भारतीय ज्योतिष का इतिहास
म. स्मृ.	—	मनुस्मृति
वा.पु.	—	वामनपुराण
वा.पु.	—	वायुपुराण
वृ.आ.उ.	—	वृहदारण्यकोपनिषद्
श.ब्रा.	—	शतपथब्राह्मण
श.क.	—	शब्दकल्पद्रुम
ग.त.	—	गणकतरङ्गिणी
स्क. पु.	—	स्कन्धपुराण
च.ग्र.सि.	—	चन्द्रग्रहणसिद्धान्त
श्रीमद.भ.	—	श्रीमद्भगवतगीता
मे.दू.	—	मेघदूत
व.मा.	—	वनमाला
घा.भ.	—	घाघभड्डरी
व.प्र.	—	वर्षप्रबोध
प्रा.भा.ऋ.वि.	—	प्राच्यभारतीय ऋतुविज्ञानम्

प्रथम अध्याय

वृष्टि के आधार

वृष्टि का पूर्वानुमान करने की अनेक विधियाँ हैं जिनकों हम दो विभागों में विभक्त कर सकते हैं शास्त्रीय एवं आधुनिक। शास्त्रीय अर्थात् हमारे देश में प्राचीन ग्रन्थों, लोकोक्तियों आदि द्वारा वर्षाज्ञान की परम्परागत विधि जिसमें बिना किसी महंगे साजो समान की सहायता के ही पंचांगादिकों के द्वारा वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है। यह भारतीय मनीषियों की स्वयं अन्वेषण प्रक्रिया द्वारा प्राप्त की हुई विद्या है। आधुनिक अर्थात् सम्प्रति वैज्ञानिकों द्वारा कृत्रिम उपग्रहादि महंगे उपकरणों की सहायता से वर्षा का पूर्वानुमान करने की विधि का नाम है। जो अत्यन्त व्ययसाध्य होने के कारण बड़े प्रतिष्ठानों द्वारा ही सम्भव है। यहाँ दोनों विधियों के द्वारा वृष्टिविज्ञान का एक प्रायोगिक परिशीलन प्रस्तुत किया जा रहा है।

वृष्टिज्ञान के शास्त्रीय आधार

परम्परागत वृष्टिविज्ञान[1] के अनुसार वर्षासम्भव ज्ञान के दो आधार हैं

१. निमित्त परीक्षण विधि।

२. गणितीय सैद्धान्तिक विधि।

१. निमित्त परीक्षण विधि

इस विधि से वर्षा ज्ञान के लिए निम्न तथ्यों का समय–समय पर निरीक्षण करते रहने से वृष्टिज्ञान की महत्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है।

---

1. Weather forecasting in almanacs relating to farming operations and its relevans in today's agricuture.

वातावरणीय परिवर्तन– तापमान, वायुदाब एवं वायु दिशा, आर्द्रता आदि वातावरणीय परिवर्तन के सामान्य निरीक्षण द्वारा वर्षा का पूर्वानुमान किया जा सकता है।

जैविक हलचल– वातावरण में कोई भी परिवर्तन होने पर जीवजन्तुओं के व्यवहार में परिवर्तन होने लगता है। पशु पक्षी अपने व्यवहार से मौसम परिवर्तन एवं वर्षा आदि का पूर्वानुमान हमें प्रदान करते हैं। पशु, पक्षी, कीट, पतंग, पेड़ पौधे, मछलियाँ आदि जैविक प्राणियों के व्यवहार से परिवर्तन का निरीक्षण करने पर हमें वर्षा का ज्ञान हो जाता है। उदाहरणार्थ गर्मियों के मौसम में अधिक आर्द्रता (उमस) होने पर चिड़ियां मिट्टी को खोद कर उसमें लोटने लगती है जो घटना शीघ्र ही वर्षा होने की सूचना प्रदान करती हैं।

रासायनिक परिवर्तन– वातावरण में अनुभव होने वाले रासायनिक परिवर्तन भी वर्षा होने की सूचना हमें देते हैं। कुछ जैविक और अकार्बनिक रासायन यौगिक मिलकर वातावरण में फैल जाते हैं जिनसे हमें वर्षा का ज्ञान हो सकता है। उदाहरणार्थ जब चारों दिशाओं में धुन्ध से भरा हुआ वातावरण हो तो शीघ्र ही वर्षा होने की सम्भावना बनती है।

भौतिक परिवर्तन– सूर्य, चन्द्र आदि के चारों ओर दिखाई देने वाला भौतिक परिवर्तन वस्तुतः वातावरण के कारण होता है। उदाहरणार्थ– जब हमें चन्द्रमा के चारों ओर मुर्गे की आंख के रंग की भाँति हल्का पीला प्रभामण्डल (परिवेश) दिखाई देता है, तो यह शीघ्र वर्षा होने का सूचक है।

आकाशीय परिवर्तन– मेघों की आकृति, बिजली चमकना, आंधी–तूफान, कुहरा–धुन्ध, बादलों की गड़गड़ाहट, इन्द्रधनुष आदि भी शीघ्र वर्षा होने की सूचना देते हैं।

२. गणितीय सैद्धान्तिक विधि

भारतीय परम्परा में वर्षा ज्ञान की कई सैद्धान्तिक पद्धतियां हैं जो सामान्य गणितीय प्रक्रिया या पंचांग के द्वारा आसानी से वर्षा सम्भव

ज्ञान करा देती हैं।

ग्रह नक्षत्र से वृष्टि ज्ञान– ग्रहों की आकाशीय स्थिति एवं ग्रह–नक्षत्रों के परस्पर संयुति से भी वर्षा के योग एवं आधार बनते हैं। जैसे– बुध या शुक्र वक्रगामी होते हैं तो वर्षा की कम सम्भावना बनती है और जब शनि एवं मंगल, धनिष्ठा नक्षत्र में स्थित हो तो वर्षा की कोई सम्भावना नहीं बनती है।

सूर्य संक्रमण से वृष्टिज्ञान– सौर संक्रान्ति एवं सौरमास के कुछ विशिष्ट दिवसों के अध्ययन से दीर्घकालिक या तात्कालिक वर्षा की भविष्यवाणी की जा सकती है।

चन्द्र नक्षत्र से वृष्टिज्ञान– 'रोहिणी निवास' सिद्धान्त के अनुसार जब सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है उस समय चन्द्र अधिष्ठित नक्षत्र से, नक्षत्रों की गणना रोहिणी तक करनी चाहिए। यदि संख्या १,२,८,९,१५,१६,२२ या २३ हो तो रोहिणी का वास समुद्र में माना जाता है जो वर्षा की अधिकता की संसूचक है।

नाड़ीचक्रों से वृष्टिज्ञान– कुछ सिद्धान्तों के अनुसार २८ नक्षत्रों को २ नाडी चक्रों में विभक्त किया जा सकता है इसे 'द्विनाड़ी चक्र' कहते हैं। तीन नाड़ी चक्र में विभक्त होने पर 'त्रिनाड़ी चक्र', सात भागों में विभक्त होने पर 'सप्तनाड़ी चक्र' कहा जाता है। तब नक्षत्रों के सापेक्ष सूर्य व चन्द्र की स्थितियों का निरीक्षण करके वर्षा का पूर्वानुमान किया जाता है।

दशतपा से वृष्टिज्ञान– दशातपा सिद्धान्त के अनुसार 'ज्येष्ठ अमावस्या' से 'आषाढ़ शुक्ल दशमी' तक के १० चान्द्रदिवसों के आधार पर ही आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद एवं आश्विन इन चार वर्षाकाल के मासों में वर्षायोग का ज्ञान होता है।

निमित्त परीक्षण द्वारा वृष्ट्यावधि–

निमित्त परीक्षण सिद्धान्त के अनुसार दीर्घावधि, मध्यमावधि एवं अल्पावधि वृष्टिज्ञान के निम्न आधार हैं[१]–

१. **वार्षिक वृष्टि के हेतु**
   - क. आषाढ़ी योग
   - ख. फाल्गुनी योग
   - ग. स्वाती योग

२. **मासिक एवं पाक्षिक वृष्टि के हेतु**
   - क. मेघ गर्भधारण सिद्धान्त
   - ख. वायुगर्भधारण सिद्धान्त
   - ग. प्रवर्षण सिद्धान्त
   - घ. रोहिणी योग
   - ङ. स्वातीयोग
   - च. आषाढ़ी योग
   - छ. दशातपा सिद्धान्त
   - ज. मासिक ऋतु परीक्षण सिद्धान्त

३. **दैनिकवृष्टि के हेतु**
   - क. मेघगर्भ धारण सिद्धान्त
   - ख. वायुगर्भधारण सिद्धान्त
   - ग. प्रवर्षण सिद्धान्त
   - घ. रोहिणी योग
   - ङ. स्वाती योग
   - च. आषाढ़ी योग

---

१. वायु वृष्टि विज्ञानम्–संगोष्ठी ज्योतिषविभागः, संस्कृतविद्याधर्म विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, संगोष्ठी पत्रिका, पृ. १५–१६

छ. दशतपा सिद्धान्त

ज. सद्योवृष्टि सिद्धान्त

झ. आनावृष्टिलक्षण सिद्धान्त

गणितीय सिद्धान्त द्वारा वृष्ट्यावधि–

इस सिद्धान्त के अनुसार सम्पूर्ण वर्ष की पञ्चाङ्ग गणना के पश्चात् वृष्टिज्ञान में निम्नलिखित तत्त्वों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस आधार पर किसी भी वर्ष की सम्पूर्ण गणितीय प्रक्रिया पूर्ण कर वृष्टि का पूर्वानुमान कभी भी किया जा सकता है। दीर्घावधि पूर्वानुमान के लिए यह विधि सर्वाधिक सहायक है।

१. **वार्षिक वृष्टि के हेतु**

क. संवत्सर

ख. संवत्सर अधिकारी

ग. गुरुवर्ष

घ. विंशोपक

ङ. शकाब्दसंख्या

च. आर्द्राप्रवेश

छ. मेघनाम

ज. नागनाम

झ. रोहिणीवास

ञ. जलाढ़क

२. **मासिक वृष्टि के हेतु**

क. द्विनाडी

ख. त्रिनाडी

ग. सप्तनाडी

घ. वृष्टि सम्बन्धि विविध योग

३. **दैनिक वृष्टि के हेतु**

क. द्विनाडी

ख. त्रिनाडी

ग. सप्तनाडी

प्राचीन भारतीय वृष्टिविज्ञान के आधारभूत सिद्धान्त सार रूप में निम्नवत् हैं[१]–

१. मेघों के वायु के आश्रित होने के कारण वायुगति के आधार पर भावी वृष्टि का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

२. पृथ्वी के वायुमण्डल में वायुगति का क्रम सुनिश्चित पूर्वापरक्रम के आधार पर होता है। अत: काल विशेष में देखी गई वायुगति वायु का भावी गतिक्रम को सूचित करती है। यह वायुचक्र पौष से आरम्भ कर वर्ष में पूरा होता है।

३. खमण्डल में विद्यमान ग्रह एक दूसरे को अपनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण प्रभावित करते हैं। इन सूर्यादि ग्रहों का प्रभाव न केवल भूमण्डलीय तत्वों पर पड़ता है अपितु वायुमण्डल की गति एवं मेघ व वायु में गतिक्रम पर भी पड़ता है। अत एव सौरमण्डलीय ग्रहों की स्थिति विशेष अर्थात् ग्रहों के उदयास्त गति–संक्रमण–योगादि के आधार पर भी पृथ्वी के वायुमण्डल में मेघ व वायु की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर वर्षा का ज्ञान किया जा सकता है।

४. पृथ्वी के वायुमण्डल में मेघ व वायु के संचारणादि के कारण सूर्य–चन्द्र के प्रकाशकिरणों का मार्ग भी प्रभावित होता है। अत: सूर्य–चन्द्र मण्डलों के चारों ओर दिखाई देने वाली प्रकृति – विकृति से मेघ – वायु की स्थिति जानकर वर्षाज्ञान सम्भव है।

---

१. प्राच्य भारतीयम् ऋतुविज्ञानम्, पृ. २२४–२२५

५. मेघ व वायु के विकृत्यादि कारणों से भूमण्डलगत रासायनिक पदार्थ प्राणी व वनस्पतियाँ भी प्रभावित होती है। अत: रासायनिक पदार्थों, प्राणियों व वनस्पतियों में परिवर्तनादि चेष्टाएँ देखकर वायुमण्डलगत मेघ व वायु की स्थिति सम्बन्धी परिवर्तनों को जानकर वर्षा का पूर्वानुमान सम्भव है।

६. पृथ्वी के वायुमण्डल में तापक्रम, वायु की आर्द्रता एवं मात्रा से वृष्टि सम्भव ज्ञान होता है। यही सिद्धान्त पाश्चात्य मौसमविज्ञान का भी आधार है।

७. मेघों का गर्भकाल से लेकर वर्षाकाल तक एक सुनिश्चित विकासक्रम है। यह चक्र या क्रम सामान्यतया ६½ मास का होता है। इस क्रम में थोड़ा सा भी व्यतिक्रम हो जाने पर वृष्टि अवरूद्ध हो जाती है। तब विकृत मेघगर्भ पुन: अपने आधानकाल के मास को प्राप्त कर करकरूप (ओले) में बदल जाता है।

८. प्रतिसूर्य, परिवेष, इन्द्रधनुष, बिजली, उल्का, बज्र, निर्घात तारादि मेघ व वायु की मूल विकृतियाँ सद्योवृष्टि का पूर्वज्ञान कराती है। इन विकृतियों का प्रभावक्षेत्र एवं प्रभाव अवधि सुनिश्चित होती है।

९. जिस प्रकार भारतीय पञ्चाङ्ग पद्धति में संवत्सर 'मास' पक्ष एवं तिथियों का ग्रहगतिमूलक क्रम प्रत्येक कल्प एवं युग में पुनरावर्तित होता है उसी प्रकार मेघ व वायु आदि का भी गतिचक्र व क्रम प्रत्येक कल्प एवं युग में पुनरावर्तित होता है। अत: भारतीय पञ्चाङ्ग के आधार पर मेघ व वायु का गतिक्रम उनकी विकृति आदि को जानकर वर्षा सम्भव ज्ञान का पूर्वानुमान होता है।

१०. **प्राचीन भारतीय पद्धति में वर्णित विभिन्न योगादिकों के द्वारा सम्पूर्ण वर्ष में वृष्टिगर्भ स्थिति सूचक आकाशादि के लक्षणों के पर्यवेक्षण से भावी वृष्टि का प्रमाणिक ज्ञान कर सकते हैं।**

पण्डित मधुसूदन ओझा के अनुसार[1] इस शास्त्र में वर्षा के निमित्त; भौम, आन्तरिक्ष, दिव्य और मिश्र, इन ४ भेदों में विभक्त हैं–

१. **भौतिक निमित्त–** देश, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि भौतिक वस्तुओं के द्वारा वर्षा के ज्ञान होने को भौतिक निमित्त कहते हैं।

२. **आन्तरिक्ष निमित्त–** वायु, बादल, विद्युत, गर्जन, तर्जन, सन्ध्या, दिग्दाह, प्रतिसूर्य, तारा, मण्डल, आंधी, गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष, वायुधारण आदि से वर्षा का ज्ञान होना आन्तरिक्ष निमित्त कहलाता है।

३. **दिव्यनिमित्त–** सूर्य–चन्द्र ग्रहण, पुच्छलतारे, सूर्य के चिह्न, सप्तनाडी चक्र, ग्रहों का उदयास्त, संक्रान्ति आदि से वृष्टि ज्ञान प्राप्त करना दिव्यनिमित्त हैं।

४. **मिश्र निमित्त–** कार्तिक से आश्विन तक के १२ मासों के प्रत्येक दिनों में तथा विशेषकर अक्षय तृतीया, आषाढ़ पूर्णिमा, होलिका आदि के शकुनों एवं उपर्युक्त चिह्नों से वर्षाज्ञान प्राप्त करना मिश्र निमित्त है।

इन निमित्तों में भौमनिमित्त की अपेक्षा आन्तरिक्ष मिमित्त और आन्तरिक्ष की अपेक्षा दिव्य निमित्त इस तरह उत्तरोतर एक दूसरे से अधिक बलवान हैं। क्योंकि भौमनिमित्त का फल बहुधा थोड़ी ही दूर तक, आन्तरिक्ष का फल एक जिले तक, दिव्यनिमित्त का फल एक प्रान्त तक और मिश्रमिमित्त का फल सर्वत्र होता है। इनमें प्राय: भौमनिमित्तों से सद्योवृष्टि का ज्ञान होता है। इन निमित्तों के परीक्षण हेतु खगोलीय ग्रहनक्षत्रस्थिति का ज्ञान परमावश्यक है। यहाँ भारतीय वृष्टि विज्ञान के कुछ आधारभूत सिद्धान्त वर्णित हैं–

१. मेघ गर्भधारण सिद्धान्त

जब सन्तप्त वायु पर्याप्त जलवाष्प को लेकर आकाश में सम्पृक्त होती है तब पृथ्वी के वायुमण्डल में वृष्टिकरने वाले मेघों की उत्पत्ति होती है

---

१. कादमिबनी भूमिका, पृ. XIX

और इन मेघों से वृष्टि होती है। जब वायु जलवाष्प कणों को सम्पृक्त नहीं कर पाती है तब केवल हल्के बादल जो वर्षा करने में अक्षम होते हैं उन्हीं की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वायु के द्वारा सम्पृक्त जलवाष्प कणों से मेघ उत्पन्न होते हैं। जलवाष्पकणों से वायु की सम्पृक्तता को वृष्टि गर्भधारण या 'मेघ गर्भधारण' कहा जाता है। इसी मेघगर्भधारण की विवेचना शास्त्रीय मतानुसार यहाँ प्रस्तुत है।

मेघ गर्भधारण का काल—मेघों के गर्भाधारण काल के विषय में प्राचीनाचार्यों में मतान्तर हैं। जैसे सिद्धसेन के मतानुसार[१] कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की समाप्ति (कार्तिक पूर्णिमा) के अनन्तर ही मेघों के गर्भधारण के दिन होते हैं परन्तु गर्ग वराहमिहिर आदि आचार्यों के मतानुसार मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा के आसन् जब चन्द्रमा पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में स्थित हो तो गर्भधारण का काल मानते हैं।[२]

गर्भ की विपाकावधि— प्रायः चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में स्थित होने से गर्भस्थिति होती है। उससे १९५वें दिन में उसका प्रसव होता है।[३]

गर्भ का प्रसव काल— यदि गर्भ शुक्ल पक्ष में हो तो कृष्णपक्ष में, कृष्णपक्ष में हो तो शुक्लपक्ष में, दिन में हो तो रात्रि में, रात्रि में हो तो दिन में, पूर्वसन्ध्या में हो तो पश्चिम सन्ध्या में, पश्चिम सन्ध्या में हो तो पूर्व सन्ध्या में प्रसव होता है।[४]

गर्भ की सफलता— जब पृथ्वी के वायुमण्डल में क्षेत्रविशेष में मेघगर्भधारण होता है तब उस क्षेत्र के वायुमण्डल एवं आकाश में विविध लक्षण दिखाई देते हैं। इन लक्षणों से उस क्षेत्र के मनुष्य,पशु—पक्षी आदि प्रभावित होते हैं। इन प्रभावकारी लक्षणादिकों से मेघगर्भज्ञान होता है। जैसे—

---

१. बृ.सं. गर्भलक्षणाध्याय, श्लोक ५ एवं टीका

२. तत्रैव श्लोक ६

३. बृ.सं. गर्भलक्षणाध्याय, श्लोक—७

४. बृ.सं. गर्भलक्षणाध्याय, श्लोक—८

गर्भस्थिति काल में उत्तर ईशान एवं पूर्व दिशा से सुखदायी वायु उत्पन्न होती है। आकाश किञ्चिद् हल्के शुभ्र बादल युक्त होता है। चन्द्र व सूर्य श्वेत् व स्निग्ध परिवेश युक्त होते हैं। मनुष्य व पशु हर्षित होते हैं तो मेघ गर्भ पुष्ट होता है।[1] इसी प्रकार अपने शोधान्वेषण द्वारा प्राचीनाचार्यों ने पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा एवं रोहिणी नक्षत्र में मेघ गर्भधारण शुभ कहा है।[2]

२. वायु परीक्षण सिद्धान्त

सूर्य के ताप से वाष्प रूप जलकणों को वायु उच्च आकाश में ले जाता है। वहाँ जलवाष्प शीतल होकर जलविन्दुओं में परिणत होकर वृष्टि करता है। इस प्रक्रिया में वायु की गतिशीलता का कारण वायुमण्डल में ताप की विषमता है। वायुमण्डल में विद्यमान ताप का प्रमुख कारण सूर्य है। सूर्यताप से प्रेरित वायुगति का एक सुनिश्चित क्रम होता है। अत: वायुगति के क्रम का पर्यवेक्षण एवं अध्ययन करने से मेघों द्वारा वृष्टि के क्रम का भी ज्ञान हो सकता है। अतएव हमारे प्राचीनाचार्यों ने वृष्टि के पूर्वानुमान एवं ऋतु परिवर्तन के ज्ञान के लिए वायु की गति के विविध प्रकार से पर्यवेक्षण के फल कहे हैं। उदाहरणार्थ अग्रिम वर्ष के वृष्टि के पूर्वानुमान के लिए पौष मास की वायुगति का अध्ययन कर फल कथन विधि पराशरमुनि ने अपने ग्रन्थ में वर्णित की है।[3] इसी प्रकार घाधभण्डरी की कहावतें, वृहत्संहिता आदि ग्रन्थों में भी वायु परीक्षण वशात् वृष्टि का पूर्वानुमान कहा गया है। इसका विस्तृत वर्णन अग्रिम अध्यायों में किया गया है।

३. प्रवर्षण सिद्धान्त

प्राचीनाचार्यों के मतानुसार ज्येष्ठमास के बाद पूर्वाषाढ़ादि नक्षत्रों का काल प्रवर्षणकाल होता है। इस काल में हुई वर्षा को देखकर भावी वृष्टिकाल

१. तत्रैव श्लोक–१४–१८

२. तत्रैव श्लोक–२८

३. देखिए ऋषि पराशर, श्लोक–३०–३२

का एवं वृष्टिमान का ज्ञान हो सकता है। इस प्रकार प्रवर्षकाल में हुई वर्षा के आधार पर भावी वृष्टि का पूर्वानुमान करना ही 'प्रवर्षण सिद्धान्त' है। गर्गमत में प्रवर्षणकालिक वर्षा से भावी वृष्टि का पूर्वानुमान निम्नप्रकार से किया जाता है। ज्येष्ठ मास में मूल नक्षत्र के अनन्तर (अर्थात् ज्येष्ठ पूर्णिमा के बीतने पर पूर्वाषाढ़ादि नक्षत्रों) प्रतिपदा से आगे वर्षा होने पर वृष्टि ज्ञान के लिए निमित्तों का परीक्षण करना चाहिए अर्थात् वृष्टि हो तो वर्षा शुभ अन्यथा अवर्षण होगा।[१] इसी प्रकार आषाढ़ादि मासों में द्वादशयोजन तक वृष्टि होने पर वर्षाकाल में सुन्दर वर्षा होती है।[२] ऐसा ही मत वसिष्ठ एवं पराशर का भी है। कश्यप का मत भी लगभग ऐसा ही है। उनके अनुसार किसी भी प्रदेश में प्रवर्षण काल में वर्षा देखी जाती है तो वर्षा काल के प्रारम्भ से सुन्दर वर्षा होती है।[३] देवलमुनि के अनुसार यदि प्रवर्षण काल में कम से कम दशयोजन तक वृष्टि हो तो वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होगी।[४] वराहमिहिर कुछ विशेष मत रखते हैं। उनके अनुसार प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्रों में से जिस किसी नक्षत्र में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में उसी नक्षत्र में पुनः वृष्टि होती है। यदि प्रवर्षणकाल में पूर्वाषाढ़ा आदि सब नक्षत्रों में वृष्टि न हो तो प्रसवकाल में अनावृष्टि होती है।[५]

प्रवर्षण नक्षत्रों से वृष्टि प्रमाण—वराह के मतानुसार[६] यदि नक्षत्र निरूपद्रव[७] अर्थात् सूर्य, शनि, केतु, मंगल या त्रिविध उत्पातों दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम से पीडित न हो और हस्त, पूर्वाषाढ़ा, मृगशिरा, चित्रा, रेवती या धनिष्ठा नक्षत्रों में यदि

---

१. वृ.सं. प्रबर्णाध्याय, श्नोक १, गर्ग वचन उद्धृत टीका
२. तत्रैव, श्लोक ४ टीका गर्गवचन उद्धृत
३. तत्रैव, कश्यप वचन
४. तत्रैव, देवल वचन
५. बृ.सं. प्रवर्षणाध्याय, श्लोक, ५
६. बृ.सं. प्रवर्षणाध्याय ४—९
७. तत्रैव १०

प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में सोलह द्रोण[1] वृष्टि होती है। इसी तरह शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वाती में ४ द्रोण, कृतिका में १० द्रोण, श्रवण, मघा, अनुराधा, भरणी और मूल में १४ द्रोण, पूर्वाफाल्गुनी में २५ द्रोण, पुनर्वसु में २० द्रोण, विशाखा व उत्तराषाढ़ा में २० द्रोण, आश्लेषा में १३ द्रोण, उत्तरभाद्रपदा, उत्तरफाल्गुनी व रोहिणी में २५ द्रोण पूर्वभाद्रपदा एवं पुष्य में १५ द्रोण, अश्विनी में १२ द्रोण तथा आर्द्रा में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में १८ द्रोण वृष्टि होती है। यदि नक्षत्र उपद्रवों से पीडित हो तो वृष्टि का अभाव रहता है किन्तु उपद्रव रहित नक्षत्र यदि बुध, वृहस्पति या शुक्र से युत हो तो सुन्दर वृष्टि का योग बनाते हैं।

४. रोहिणी योग

वराह के मतानुसार[2] आषाढ़ के कृष्णपक्ष में रोहिणी का समागम देखकर 'रोहिणीयोग' द्वारा संसार का शुभाशुभ फल कहना चाहिए। विधिवत् व्रत, हवन, कलशादि स्थापनकर पूजनोपरान्त १२ हाथ ऊँचे बाँस पर पतली एवं चार हाथ लम्बी पताका बांधनी चाहिए। दिग्ज्ञान के उपरान्त रोहिणीयोग में स्थित चन्द्र के समय में उस पताका के फहराने से वायु ज्ञान करना चाहिए।

वायु से शुभाशुभ ज्ञान[3]—

आषाढ़ कृष्णपक्ष में रोहिणी चन्द्र समागम के दिन, सूर्योदय से लेकर एक प्रहर तक शुभ वायु चले तो श्रावण कृष्णपक्ष में पूरे पक्ष में अच्छी वर्षा होती है। इसी प्रकार दूसरे प्रहर से श्रावण शुक्लपक्ष, तीसरे प्रहर से भाद्रपद कृष्णपक्ष, चौथे प्रहर से भाद्रपद शुक्लपक्ष में तथा रात्रि के प्रथम प्रहर से

---

१. लीलावती परिभाषा प्रकरण के अनुसार मापन प्रणाली
१ आढ़क = ७ किलो ७०० ग्राम, ४ आढ़क= १ द्रोण (३० कि. ८०० ग्राम)
१६ द्रोण = १ खारी (४९३ किलो ८०० ग्राम)

२. बृ.सं. रोहिणी योगाध्याय ४–९

३. तत्रैव १०

आश्विन कृष्णपक्ष में, दूसरे प्रहर से आश्विन शुक्लपक्ष में, तीसरे प्रहर से कार्तिक कृष्णपक्ष में, चौथे प्रहर से कार्तिक शुक्लपक्ष में अच्छी वर्षा होती है। यदि सूर्योदय से आधे प्रहर तक सुन्दर वायु चले तो श्रावण कृष्णादि के ७ दिन, उसके आधे काल तक में ४½ दिन इत्यादि प्रकार से वृष्टि कहनी चाहिए। यदि पताका सद्य होकर चले तो सदा शुभ करने वाली वृष्टि होती है। जिस वायु में स्थिरता हो उसी से शुभाशुभ कहना चाहिए।

मेघ वर्णन एवं फल– यदि कृष्ण श्वेत् व स्वच्छ कान्तियुक्त मेघ रोहिणी योग के समय आकाश में हो[१] अथवा बिजली, इन्द्रधनुष एवं कृष्णवर्ण मेंघों से युक्त उस समय विचित्र आकाश हो[२] रोहिणी योग के समय यदि काले व श्वेतवर्ण वाले मेघों से युक्त आकाश हो[३] अथवा काले हाथी के सदृश मेघों से आकाश उस काल में व्याप्त हो[४] अथवा नील एवं पीतवर्ण युक्त बादल हों[५] अथवा मयूर चातक और मेंढ़क के शब्दों से युत मधुर शब्द वाले, आकाश को व्याप्त कर दिगन्त तक लटके हुए और पृथ्वी पर अधिक वृष्टि करने वाले मेघ[६] २ या ३ दिन तक रोहिणी योग के समय दिखाई दे तो सुभिक्ष एवं पृथ्वी पर अधिक वृष्टि होती है।[७] आकाश में बादल न हो, सूर्य खूब तेज चमकता रहे तो भी वर्षा होती है। इसी प्रकार रात में आसमान में तारें खूब दिखें मानो किसी तालाब में खूब कुमुद खिले हों तो भी उत्तम वर्षा होती है।

पश्चिमी मेंघों से उत्तम वर्षा होती है तथा उत्तरी मेघों से भी उत्तम वर्षा होती है। वायव्य कोण से उठे मेघों से कही कहीं हवा के साथ वर्षा होती है।[८]

---

१. बृ.सं. रोहिणी योगाध्याय, श्लोक १३–१४
२. तत्रैव श्लोक, १५
३. तत्रैव श्लोक, १६
४. तत्रैव, श्लोक १७
५. तत्रैव, श्लोक १८
६. तत्रैव, श्लोक १९
७. तत्रैव, श्लोक २०
८. बृ.सं.,रोहिणीयोग २३–२४

प्राचीनकाल में चारों दिशाओं में चार कलश स्थापित करने का विधान बताया गया था। उन दिनों चारों कुम्भों की तीसरे दिन अर्थात् रोहणी योग के समय परीक्षा करनी चाहिए।

अत: जिस दिशा के कुम्भ में पानी पूरा हो उस दिशा के द्वारा सङ्केतिक मास में पूर्ण वर्षा होती है। कम जल रहने से कम वर्षा होती है।[१] गर्ग के मतानुसार उपर्युक्त उत्तर दिशा के कुम्भ से श्रावण, पूर्व कुम्भ से भाद्रपद, दक्षिण कुम्भ से आश्विन व पश्चिम कुम्भ से कार्तिक मास की परिकल्पना करनी चाहिये। यदि उपर्युक्त विधि के अनुसार स्थापित चारों कुम्भ भरे हुए हों तो चारों मासों में वर्षा प्रचुर मात्रा में होती है।[२] यदि रोहणी का दक्षिण से स्पर्श करते हुए चन्द्रमा उत्तर की ओर गमन करे तो वर्षा उत्तम होती है। यदि राहिणी को बिना स्पर्श किए हुए चन्द्र उत्तर की ओर गमन करे तो सुंदर वृष्टि होती है।[३]

पशुओं से वृष्टिज्ञान– जब सायंकाल गाएं जंगल से चर कर लौट रही हों तब रोहणी योग के दिन गायों के आगे–आगे बैल (साँड) चल रहा हो या अगली कतार में कोई काले रंग का जानवर हो तो अच्छी वर्षा होती है।[४]

अदृश्य चन्द्रफल– रोहिणी योग के समय यदि मेघयुक्त आकाश में चन्द्र नहीं दिखाई दे तो उस वर्ष अच्छी वृष्टि होती है।[५]

५. स्वाती योग –

रोहिणी योग की तरह आषाढ़ शुक्ल में स्वाती नक्षत्र में स्थित चन्द्र का वृष्टिजन्य फल होता है।[६] स्वाती नक्षत्र में स्थित चन्द्र के दिन के ३ विभाग करने

१. तत्रैव, २६
२. तत्रैव टीकायाम्
३. बृ.सं.,रोहिणीयोग २९
४. बृ.सं., रोहिणीयोगा. ३५
५. तत्रैव ३६
६. बृ.सं., स्वातीयोगा. श्लोक १

पर यदि उस दिन के प्रथम भाग में वृष्टि हो तो वर्षाकाल में सुन्दर वृष्टि, द्वितीयभाग में वृष्टि होने पर कृमियुक्त वृष्टि एवं तृतीय भाग में वृष्टि हो तो मध्यम वृष्टि होती है। यदि सम्पूर्ण दिन व रात्रि में वृष्टि हो तो वर्षाकाल में सुन्दर वृष्टि होती है।[१]

यदि माघ कृष्ण सप्तमी में स्वाती नक्षत्र गतचन्द्र में हिम गिरे, भयंकर वायु चले, जलयुक्त मेघ गरजें, आकाश में बिजली चमके तथा मेघाछन्न आकाश रहे तो वर्षाकाल में शुभ रहता है।[२] इसी तरह फाल्गुन, चैत्र और वैशाख के कृष्णपक्ष में भी स्वाती योग का विचार होता है परन्तु आषाढ़ मास में विशेष रूप से इसका विचार करना चाहिए।[३]

६. आषाढ़ी योग

आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन उतराषाढ़ा नक्षत्र गत चन्द्र के समय को ही आषाढ़ी योग कहते हैं। वराहमिहिर के अनुसार 'अभिमन्त्रित तराजू'[४] के दक्षिण तरफ के पलड़े पर सुवर्ण और उत्तर तरफ के पलड़े पर क्रमश: कूप, नदी एवं सरोवर के जल व अन्य शेष द्रव्यों की स्थापना कर माप ले, और दूसरे दिन देखें कि यदि प्रथम दिन की अपेक्षा द्वितीय दिन में कूप का जल बढ़े तो अवृष्टि, नदी का जल बढ़े तो मध्यम वृष्टि एवं सरोवर का जल बढ़े तो उत्तम वृष्टि होती है।[५]

रोहणी, स्वाती व उत्तराषाढ़ा नक्षत्रों में यदि हवा पश्चिम की ओर चले तो उत्तम वर्षा, वायव्य की हवा चले तो हवा के साथ वर्षा, उत्तर की हवा चले तो उत्तम वर्षा व ईशान की हवा चले तो अच्छी वर्षा होती है।[६]

१. बृ.सं., स्वातीयोगा. ३
२. तत्रैव ५
३. तत्रैव ६
४. द्रष्टव्य बृ.सं. आषाढ़ीयोगाध्याय १–५
५. बृ.सं. आषाढ़ीयोगाध्याय ७–८
६. तत्रैव १३

आषाढ़कृष्ण चतुर्थी का फल

यदि आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में मेघ वृष्टि करें तो उस वर्ष अच्छी वर्षा होती है यदि वृष्टि न करें तो अवृष्टि रहती है।[१]

७. फाल्गुनी योग–

होलिकादहन के समय फाल्गुन पूर्णिमा को प्राय: उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का चन्द्र से संयोग होता है। इसी आधार पर सम्भवतया फाल्गुनी योग बना हो किन्तु सम्प्रति होलिकादहन के दिन फाल्गुनी पूर्णिमा को चाहे उस दिन उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रगत चन्द्र हो या न हो, भारतीय कृषक आज भी होलिका ज्वाला के गमन की दिशा अर्थात् वायुगति को देखकर भावी वृष्टि का अनुमान करते हैं। उदाहरणार्थ घाघभड्डरी की निम्न कहावत दर्शनीय है–

होली झर कौ करौ विचार।
शुभ अरु अशुभ कहा फल सार।।

पशिचम वायु बहै अति सुन्दर।
समया निपजै सजल वसुन्धर।।

पूरब दिसि की बहै जो बाय।
कहु भीजै कहु कोरो जाय।।

दक्खिन बाय वहै वधनाश।
समया उपजै सनई घास।।

उत्तर बाय बहै दड़वडिया।
पिरथी अचूक पानी पडिया।।

जोर झकोरै चारो बाय।
दुखड़ा परिया जीव डेराय।।

---

१. तत्रैव १४

जो पै भरो अकामै जाय।
तौ पिरथी सङ्ग्राम कराय।।[1]

८. दशतपा सिद्धान्त –

(१) पौष मास में मूल नक्षत्र से लेकर भरणीनक्षत्र पर्यन्त चन्द्र की स्थिति के अनुसार मेघ गर्भ लक्षण का अध्ययन कर आगे वर्षा ऋतु के आगमन पर आर्द्रा नक्षत्र से लेकर स्वाती पर्यन्त १० नक्षत्रों में सूर्यचार के अनुसार क्रमशः वर्षा की भविष्यवाणी करनी चाहिए। अर्थात् यदि पौष मासीय मूलनक्षत्र में मेघ गर्भ धारण करता है तो आगे आर्द्रा नक्षत्र में सूर्य के आने पर वर्षा होगी। इसी तरह पौष मास में मूल से आगे यदि पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में मेघ गर्भयोग घटित होता है तो आगे पुनर्वसु नक्षत्र में सूर्य के संचार होने से वर्षा होगी। इसी तरह क्रमशः जानना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक नक्षत्र को १३ दिन क्रम से भोगता हुआ कार्तिक में सूर्य विशाखा नक्षत्र पर जाता है।[2]

(२) पौष शुक्ल प्रतिपदा से दशमी पर्यन्त यदि मेघ गर्भ रह जाय तो भी चातुर्मास्य में अच्छी वृष्टि होती है यदि इस गर्भ का चैत्र में पतन न हो।[3]

(३) पौषादि से वैशाखमास के अन्त तक सभी मासों में मूल नक्षत्र से प्रारम्भ कर भरणी तक बिजली गर्जन, पूर्व या उत्तर की वायु, मेघ या वर्षा (गर्भपुष्टि प्रमाण) के होने से सूर्य के आर्द्रा से विशाखा नक्षत्र पर रहने तक वृष्टि होती है।[4]

(४) मेष संक्रान्ति से ९ दिन में जिन–जिन दिनों में बादल, पवन और बिजली चमके तो गर्भलक्षण होता है। उन दिनों में क्रम से आर्द्रानक्षत्र

---

१. घाघ भड्डरी की कहावते पृ. १००–१०१, पद्य १६१ (घाघ और भड्डरी)
२. कादम्बिनी, द्वादशमासिकाध्याय, श्लोक ४१
३. तत्रैव ४२
४. तत्रैव ४१,८८,१४८ इत्यादि

पर सूर्य आगमन से चित्रानक्षत्र पर्यन्त सूर्य स्थिति रहने तक सुवृष्टि होती है।[1]

(५) चैत्र में अश्विनी से मघा तक के १० नक्षत्रों के दिनों में बादल आदि हो तो गर्भ लक्षण होने पर शुभ होता है।[2]

(६) कुछ के मतानुसार आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदारम्भ से दशमी पर्यन्त (१० दिवस) यदि अधिक गर्मी हो तो आषाढ़ादि ४ मासों में अधिक वर्षा होती।[3]

१०. मासिक ऋतु परीक्षण सिद्धान्त

मासिक ऋतु परीक्षण एवं निरीक्षण का वर्णन मेघमाला, गुरु संहिता आदि ग्रन्थों में विस्तृत रूप से उपलब्ध होता है। नारद, पाराशरादि मुनियों एवं घाघ, भड्डरी आदि लोक कवियों ने भी इस सिद्धान्त की परीक्षण विधि कही है।[4] कादम्बिनी[5] में द्वादशमासिकाध्याय में इस विषय को विस्तृत रूप से वर्णित किया है। वस्तुत: प्रत्येक मास में वृष्टि के निमित्त किए जाने वाले पर्यवेक्षण में उस मास के वृष्टिगर्भलक्षणों को देखा जाता है। उदाहरणार्थ द्वादश मासों में वृष्टि गर्भ लक्षण के आधार पर परीक्षण विधि संक्षिप्त में वर्णित है[6]—

१. माघ में शीत न पड़े, फाल्गुन में वायु न बहे, चैत्र में बादल न हो, वैशाख में ओले गिरे और ज्येष्ठ में प्रचण्ड धूप हो तो वर्षाऋतु में अल्पवृष्टि होती है।

---

१. तत्रैव १५४
२. तत्रैव १५६
३. Weather forcasting in almanus retating to farming------page.11
४. द्रष्टव्य 'प्राच्य भारतीयम् ऋतु विज्ञानम्', तृतीय प्रकरण
५. कादम्बिनी द्वितीय अध्याय
६. कादम्बिनी द्वादशमासिकाध्याय, सिंहावलोक:, श्लोक ५९२—६१२

२. माघ में यदि बादलों की घटा न हो तो चैत्र में जल बरसे, व अक्षय तृतीया को गर्जना न हो तो अनावृष्टि होती है।

३. माघ में गरमी, ज्येष्ठ में शीत एवं श्रावण में ठंडी वायु चले तो अनावृष्टि होती है।

४. माघ में शीत न हो, ज्येष्ठ में मूल नक्षत्र पर बादल या आर्द्रा में जल न बरसे तो अनावृष्टि होती है।

५. चैत्र में बिजली न चमके, वैशाख के प्रारम्भ में जल बरसे व ज्येष्ठ में अधिक गर्मी हो तो सुवृष्टि होती है।

६. चैत्र में शीत, वैशाख में ओले पड़े व ज्येष्ठ में निर्मल आकाश रहे तो सुवृष्टि होती है।

७. पौष में गरमी व वैशाख में ठण्ड हो तो आषाढ़ में कुछ वृष्टि किन्तु श्रावण व भाद्रपद में वृष्टि नहीं होती है।

८. चैत्र शुक्ल प्रतिपदा या ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा को मृगशीर्ष नक्षत्र में वायु का चलना शुभ होता है।

९. ज्येष्ठ पूर्णिमा में मूलनक्षत्र में बरसना, श्रावण कृष्ण चतुर्थी को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में गर्जना न होने और आषाढ़ पूर्णिमा में पूरे ६० घड़ी मूल नक्षत्र के होने से अवृष्टि योग होता है।

१०. माघ शुक्लसप्तमी, फाल्गुन शुक्ल पंचमी, चैत्र शुक्ल तृतीया व वैशाख शुक्ल प्रतिपदा को यदि शुभप्रद वायु (पूर्व, ईशान और उत्तर की) बहुधा चले तो वर्षाकाल में सुवृष्टि होती है।

११. कार्तिक शुक्ल १२, मार्गशीर्ष शुक्ल १०, पौष शु० ५ और माघ शु० ७ तिथियों में हवा, बादल, गर्जना, बिजली अथवा वृष्टि होने पर आषाढ़ से आश्विन तक के महीनों में तिथि क्रम से अवश्य वर्षा होती है।

१२. चैत्र, वैशाख व फाल्गुन के शुक्लपक्ष की त्रयोदशियों में धुन्ध छाने पर वर्षा का अभाव होता है।

१३. आश्विन, कार्तिक, माघ, चैत्र, ज्येष्ठ, फाल्गुन एवं श्रावण इन मासों की पूर्णिमा में यदि बादल न हो तो शुभफलदायी होता है।

१४. पौष, भाद्रपद, वैशाख, मार्गशीर्ष व आषाढ़ की पूर्णिमाओं में धुन्ध, मेघ, बिजली और शुभ पवन का चलना शुभफलदायी होता है।

ऋतु के अनुसार गर्भ लक्षण[१]—

१. मार्गशीर्ष व पौष मास में संध्याकाल में आकाश अधिक लाल हो, बादल घिरे हुए हों, मार्गशीर्ष में अधिक ठंड न पड़े, पौष में पाला या बर्फ गिरे तो आगामी वर्षा के लिए शुभ लक्षण कहना चाहिए।

२. माघ में तेज हवाए चले, सूर्य व चन्द्रमा की रोशनी गर्द कोहरे या हिम से दबी रहे। चन्द्रमा धुँधला हो, सूर्योदयास्त के समय सूर्य के निकट बादल न हो तो ये लक्षण भावी वर्षा ऋतु में उत्तम वर्षा की सूचना देते हैं।

३. फाल्गुन में रूखी हवायें चलें बादल छाने लगे, सूर्य व चन्द्रमा ढ़के से रहे, सूर्य ताँबे के रंग जैसा या पीला सा दिखे तो शुभ होता है।

४. चैत्रमास में खूब बादल छाये तथा बूँदा—बाँदी भी हो, वैशाखमास में बादल बिजली गरजें तथा बूँदें भी गिरे तो आगे वर्षाऋतु में उत्तम वर्षा होती है।

५. माघ पक्ष में खूब बिजली चमके व बादल छाये रहें तथा हवाएँ खूब चलें तो खूब वर्षा होती है।

१. वृ.सं. गर्भलक्षण, १९—२२

भद्रवाहु संहिता के महत्वपूर्ण वृष्टियोग

१. पौषमास की अमावस्या को यदि सोमवार, शुक्रवार और गुरुवार हों इस दिन आकाश मेघों से घिरा हुआ हो तो आगामी वर्ष में अच्छी वर्षा होती है।[१]

२. पौष शुक्लप्रतिपदा, सप्तमी, अष्टमी, नवमी तिथि को यदि आकाश में बादल दिखलाई पड़े तो उस वर्ष वर्षा अच्छी होती है। पौषकृष्ण सप्तमी को बिना जल वर्षाये मेघ यदि खूब गर्जना करे तो श्रावणपूर्णिमा को अत्यन्त वर्षा होती है।[२]

३. पौष कृष्ण सप्तमी को बिना जल वर्षाये मेघ यदि खूब गर्जना करे तो श्रावण को अत्यन्त वर्षा होती है।[३]

४. यदि पौष कृष्ण दशमी को खूब वर्षा हो तो श्रावण कृष्ण दशमी में खूब अच्छी वर्षा होती है।[४]

५. पौष पूर्णिमा को प्रात:काल श्वेतरंग के बादल आकाश में आच्छादित हों तो आषाढ़ और श्रावण मास में अच्छी वर्षा होता है। यदि पौष शुक्ल चतुर्दशी को आकाश में बादल गर्जना करते हुए दिखाई पड़े तो भाद्रपद मास में अच्छी वर्षा होती है।[५]

६. माघ कृष्ण सप्तमी के दिन आकाश में बिजली चमके तो उत्तम वर्षा होती है अर्थात् १२ महीने वृष्टि होती रहती है।[६]

७. यदि आषाढ़ी पूर्णिमा के आधे दिन दोपहर तक पूर्व दिशा की वायु चले तो पहले दो महीने अच्छी वर्षा होती है।[७]

८. यदि आषाढ़ी पूर्णिमा को सूर्योदय से प्रथम प्रहर में पूर्व दिशा की वायु चले तो एक महीने अच्छी वर्षा होती है।[८]

१–८. भ.सं. अष्टम अध्याय विवेचनाटीका, पृ. १०१–१०३

९. आषाढ़ पूर्णिमा के दिन आधे दिन सूर्योदय से दोपहर तक पूर्वी हवा चले तो पहले दो महीनों में भारी वर्षा होगी।[1]

१०. आषाढ़ पूर्णिमा को आधे दिन के बाद दोपहर से सायंकाल तक पूर्वी हवा चले तो अगले महीने में भारी वर्षा होती है।[2]

११. किसी भी दिशा की वायु यदि साढ़ेसात दिन तक चले तो उसे अतिवृष्टि का सूचक मानना चाहिये।[3]

१२. आषाढ़ी प्रतिपदा के दिन सूर्यास्त के समय यदि पूर्व दिशा की हवा चले तो आश्विन महीने में अच्छी वर्षा होती है।[4]

१३. रात्रि के समय जब आकाश मेघों से छाये हुए हों व धीमी–धीमी वर्षा हो रही हो और उस समय पूर्वी हवा चल रही हो तो भाद्रपद मास में अच्छी वर्षा होती है।[5]

१४. आषाढ़ी प्रतिपदा यदि खूब तप गयी हो तो चातुर्मास में अच्छी वर्षा का योग बनता है।[6]

१५. आषाढ़ प्रतिपदा को सूर्योदय वेला में पूर्वी हवा चले तथा आकाश में मेघ हों लेकिन वर्षा न हो रही हो तो श्रावण महीने में उत्तम वर्षा होती है।[7]

१६. आषाढ़ी पूर्णिमा को पूरे दिन पूर्वी हवा चले तो चातुर्मास पर्यन्त अच्छी वर्षा होती है।

१७. यदि श्रावणमास में पश्चिमी हवा, भाद्रपद में पूर्वी हवा तथा आश्विन में ईशानकोणीय हवा चले तो अच्छी वर्षा होती है।[8]

१–२. भद्रवाहु संहिता ९/९–१०

३. भद्रवाहु संहिता, ९/४१

४–८. भ.सं. नवमाध्याय, विवेचन टीका, पृ. ११६–११८

११. सद्योवृष्टि सिद्धान्त

वृष्टिकाल में कुछ समय पूर्व भी वृष्टिलक्षण दिखाई देने लगते हैं। पशु–पक्षी, कीट–पतंग जलचर आदि की चेष्टाएं सद्योवृष्टि को संसूचित करती है। इसी प्रकार प्रश्नलग्न, चन्द्रचार, प्रश्नकालिक परिस्थितियां, वातावरण निरीक्षण आदि से भी सद्योवृष्टि ज्ञान हो जाता है। सिद्धान्त के विषय में आगे विस्तृत चर्चा की जायेगी।

१२. अनावृष्टि सिद्धान्त

वृष्टिगर्भलक्षण विवेचन प्रसङ्ग में जो वृष्टि गर्भ पोषक लक्षण वर्णित है उसके विपरीत की स्थिति अनावृष्टि को द्योतित करती है। इसी प्रकार जीव जन्तूओं की वृष्टि सूचक चेष्टाओं से विपरित चेष्टाएं भी अनावृष्टि को संसूचित करती है। ग्रह नक्षत्रादियों की स्थिति विशेष भी भावी अनावृष्टि को सूचित करती है। इस आधार पर प्राचीनाचार्यों ने अनावृष्टि लक्षण वर्णित किये हैं। जैसे 'ऋषिपराशर' के अनुसार[१]–मंगल का हस्त, मूल, कृतिका, मघा आदि नक्षत्रों में संचरण, मंगल के पीछे सूर्य का होना, चित्रा नक्षत्र के मध्यम में शुक्र की स्थिति सिंह राशि में भौम व रवि की युति आदि योग अनावृष्टि करते हैं। इस सिद्धान्त के द्वारा अनावृष्टि काल ज्ञान होने पर वृष्टि के निमित्त मंत्र, हवन, जलाभिषेकादि विधियों का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है।

वार्षिक पञ्चाङ्ग आधारित सिद्धान्त –

वृष्टिज्ञान के निमित्त प्रति वर्ष के पञ्चाङ्ग पर आधारित आधारभूत सिद्धान्तों का विवेचन निम्नप्रकार है–

---

१. ऋषि पराशर, पृ. २१, श्लोक–७५–७८

१. संवत्सर

भारतीय मनीषियों ने वृष्ट्यादि के ज्ञान के लिए भारतीय पञ्चाङ्ग के आधार पर पर्यवेक्षण कर मौसमविज्ञान की भारतीय पञ्चाङ्ग पर आधारित विधि का सृजन किया। इस विधि में गणित से, संक्रान्ति वार आदि के योग से एवं तिथिवारादि के आधार पर और वत्सर विशेष के राजा–मन्त्री–सस्येशादि से वृष्ट्यादि विषयक फल वर्णित किये जाते हैं। यहाँ ध्यातव्य है कि संक्रान्तिफलविधि में सूर्य के आर्द्रा प्रवेश के द्वारा वर्णित फल केवल विन्ध्य के दक्षिण देश में ही फलित होता है। राजा का फल केवल कम्बोज–कश्मीर–कलिङ्ग देशों में ही प्रमुखता से घटित होता है। मंत्री का फल वाह्लिक एवं मानवदेश में ही प्रभावित है। सस्येश का फल पौण्ड्र एवं विदर्भ में, रसेश का फल कोंकण व मगध देश में, नीरसेश का फल मालव देश में तथा मेघेशफल द्राविण व गौड देश में चरितार्थ होते है। शेष फल सार्वदैशिक है।[१] भावी वत्सर के वृष्ट्यादि ज्ञान के लिए वत्सर के राजा व मन्त्री के आनयन की तीन विधियाँ प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है–

१. गणितात्मक, २. सूर्यसंक्रान्तिवारादि के योग से, ३. तिथिवार पर आधारित

गणितात्मक विधि– पराशर मुनि के अनुसार[२] शकाब्द को ३ से गुणा कर २ जोड़कर ७ से भाग देने पर जो शेष बचे वह सूर्यादि क्रम से राजा होता है। राजा से चतुर्थ मंत्री होता है।

उदाहरणार्थ– $\left(\frac{\text{शकाब्द }१९३०\times ३+२}{७}\right)$ = शेष ३ अर्थात् राजा मंगल, मंत्री शुक्र

---

१. संवत्सरफलम्, पृ. १६ उद्धृत प्राच्य भारतीयम् ऋतुविज्ञानम्, पृ. ९०

२. ऋषिपराशर, पृ. ३ श्लोक १२

किन्तु ऋषि संग्रह[1] के अनुसार शकाब्द के काल को ३ गुणित कर पृथक्–पृथक् क्रम से २,५,८ एवं ४ जोड़कर ७ का भाग देने पर क्रमश: राजा, मन्त्री, जलाधिप एवं सस्येश होता है।

तिथिवाराश्रित विधि– चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को जो वार होता है वह राजा, मेषसंक्रान्ति दिवस को जो वार होता है वह मंत्री, कर्कसंक्रान्ति दिवस का वार सस्याधिप एवं सूर्य के आर्द्रा प्रवेश दिवस का वार मेघाधिप होता है।[2]

संक्रान्तिवारादि विधि– कुछ विद्वानों के मतानुसार[3] मेष संक्रान्ति का वारेश ही राजा होता है, किन्तु वत्सर का मंत्री मेष संक्रान्ति का वारेश होता है ऐसा अधिकांश विद्वानों का मत है। उपर्युक्त विधियों से आनीत राजादि का वृष्टि सम्बन्धिफल निम्नवत् है।[4]

ग्रह	गणितविधि से राजा व मंत्री होने पर वृष्टिफल	तिथिवाराश्रित विधि से राजा होने पर वृष्टिफल	संक्रान्ति विधि से मंत्री होने पर वृष्टिफल	संक्रान्ति विधि से संस्याधिप होने पर वृष्टिफल
सूर्य	संयत/अल्प वर्षा	अत्यवर्षा	संयत वर्षा	संयत वर्षा
चन्द्र	अतिवृष्टि	प्रभूतवृष्टि	बहुत वर्षा	सुन्दर वर्षा
मंगल	मन्दवृष्टि	अल्प वृष्टि	अल्पवृष्टि	कम वर्षा
बुध	उत्तम वृष्टि	उत्तम वृष्टि	उत्तम वृष्टि	प्रचुर वर्षा
गुरु	शोभन वृष्टि	शोभन वृष्टि	प्रचुर वर्षा	प्रचुर वर्षा
शुक्र	उत्तम वृष्टि	उत्तम वृष्टि	प्रचुर वर्षा	शोभन वर्षा
शनि	पृथ्वीधूलि सम्पूर्ण एवं अल्पवृष्टि	अल्पवृष्टि	वृष्टि अभाव	वृष्टि अभाव

१. ऋषि संग्रह, श्लोक २२
२. मकरन्द सारिणी
३. संवत्सरफल पृ. ४४
४. प्रा.भा. ऋ.विज्ञान, पृ. ८२–८६

इसी प्रकार मेघेश (सूर्य के आर्द्रा प्रवेश दिवस का वार), धान्येश (धनुसंक्रान्ति का वारेश), रसेश (तुला संक्रान्ति का वारेश), फलेश (मीन संक्रान्ति का वारेश), आदि ग्रहाधिपों द्वारा भी वर्षा का फल जाना जाता है। वस्तुत: शुभग्रहों (चन्द्र, बुध, गुरु व शुक्र) के वत्सर के मंत्री परिषद् में स्थान पाना वृष्टियादि के लिए शुभ एवं पापग्रहों (सूर्य, मंगल व शनि) का अधिप होना शुभ नहीं होता है।

२. **मेघानयन**–प्राचीन भारतीय वृष्टि विज्ञान में चार मेघों का वर्णन मिलता है।[१]

१. आवर्त, २. संवर्त, ३. पुष्कर, ४. द्रोण इनके नामानुसार वर्ष में वृष्टिफल का विचार किया जाता है। शकाब्द में ३ जोड़कर ४ का भाग देने पर शेष को मेघनाम से जानना चाहिए। यथा– शकाब्द

$\frac{१९३०+३}{४} = \frac{१९३३}{४}$ = शेष १ अर्थात् आवर्तसंज्ञक मेघ हुआ।

इन मेघों का फल निम्नप्रकार कहा गया है–

मेघनाम	फल[२]	प्रकारान्तर से फल[३]
आवर्त	एक देश में वर्षा	छिन्नवृष्टि
संवर्त	सर्वदेशीय वर्षा	जलपूरित
पुष्कर	दुष्कर वर्षा	मन्दवृष्टि
द्रोण	बहुजल	सर्वदा वृष्टि

कुछ विद्वानों के मत में अग्रिमवर्ष में वृष्टिसूचक ९ मेघ होते हैं।[४]

१. ऋषि पराशर, पृ. ५०६, श्लोक २३–३४
२. ऋषि पराशर, श्लोक २५
३. संवत्सरफल उद्धृतं प्रा.भा. वि. पृ., ८७
४. तत्रैव, पृ. ९८

शकाब्द में १५१२ घटाकर उसमें ९ से भाग देकर शेषादि को क्रम से ९ मेघ जानना चाहिए। नवमेघ वृष्टिफल अधोलिखित है।[१]

क्रम	मेघनाम	वृष्टिफल
१.	आवर्त	अल्प वृष्टि
२.	संवर्त	वायुपीडा
३.	पुष्कर	मन्द वृष्टि
४.	द्रोण	अच्छी वृष्टि
५.	कालक	अल्पवृष्टि
६.	नील	शीघ्र वर्षा
७.	वरुण	सर्वाधिक वर्षा
८.	वायु	वर्षा अभाव
९.	तम	वृष्टि अभाव

३. नाग—प्राचीनाचार्यों ने वृष्टि सूचक १२ नाग कहे हैं। इनके ज्ञान से भावी वर्ष के वृष्टि का ज्ञान होता है। गत शकाब्द में २ जोड़कर १२ का भाग देने पर शेषवश क्रमशः निम्न नाम के नाग एवं उनका फल जानना चाहिए[२]—

---

१. तत्रैव, पृ. ९८

२. प्रा.भा.ऋ.वि., पृ. १०३–१०४

क्रम	नाग नाम	फल
१.	सुबुद्ध	वृष्टि
२.	नन्दिसारी	महावृष्टि
३.	कर्कोटक	जलाभाव
४.	पृशुश्रवाः	स्वत्प वृष्टि
५.	वासुकि	बहुवृष्टि
६.	तक्षक	मध्यमवृष्टि
७.	कंबल	मध्यमवृष्टि
८.	अश्वतर	स्वल्पवृष्टि
९.	हेममाली	महावृष्टि
१०.	नरेन्द्र	पृथ्वी जलमग्न
११.	वज्र द्रष्ट्र	अनावृष्टि
१२.	वृष	ईतिभय

४. रोहिणी वास चक्र[१]– रोहिणी चक्र में तट, गिरि, सन्धि, समुद्रादिकों का अंकन कर वहां मेषादि दिवसीय नक्षत्र से प्रारम्भ कर वक्ष्यमाणविधि से नक्षत्रों का अंकन किया जाता है। उसके बाद रोहिणीचक्र के आधार पर रोहिणी की स्थिति को जानकर वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है–

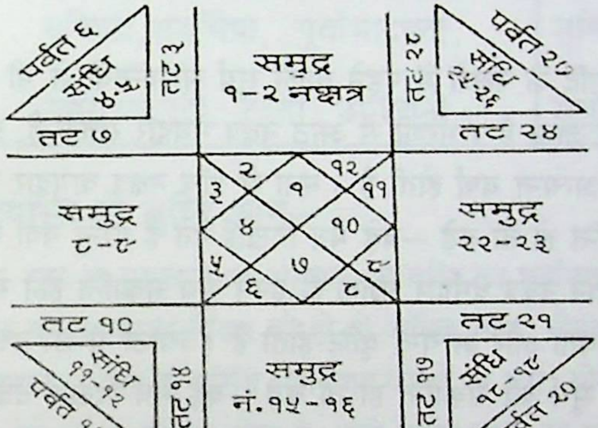
रोहिणी वास ज्ञान[२]

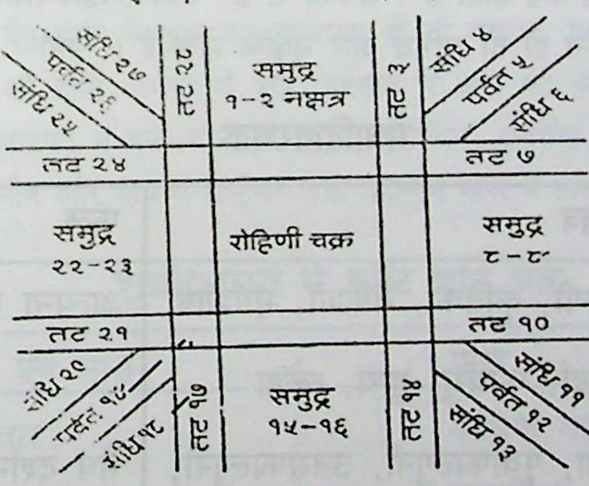
मेष–संक्रांति के दिन जो नक्षत्र हो उससे आरम्भ करके २–२ नक्षत्र

१. भद्रबाहुसंहिता १० अध्याय टीका, पृ. १३८
२. नरपतिजनचर्या समुद्रचक्रम्।

समुद्र में २–२ तटों में, २ सन्धि में १ पर्वत पर इस प्रकार अभिजित् सहित २८ नक्षत्र यहाँ बताये चक्र के अनुसार स्थापित करें। जिस जगह रोहणी नक्षत्र पड़े वहीं पर रोहिणी का निवास जानना चाहिए।

फल– समुद्र में अति वर्षा। तट में शुभ वर्षा अन्न धन की वृद्धि। पर्वत में वर्षा नहीं हो खेती सूखे। संधि खंड वृष्टि हो किन्तु खेती सूखे नहीं।





सूर्य की मेष संक्रान्ति के समय जो चन्द्र नक्षत्र हो उससे आरम्भकर अट्ठाईस नक्षत्रों को स्थापित करना चाहिए। इनमें दो–दो शृङ्ग में, एक–एक नक्षत्र सन्धि में, और एक–एक तट में स्थापित करें। यदि उक्त क्रम से रोहिणी

समुद्र में पड़े तो अधिक वर्षा, शृङ्ग में पड़े तो थोड़ी वर्षा, सन्धि में पड़े तो वर्षाभाव और तट में पड़े तो अच्छी वर्षा होती है। यदि रोहिणी नक्षत्र सन्धि में हो तो वैश्य के घर, पर्वत पर हो तो कुम्हार के घर, सिन्धु में हो तो माली के घर और तट में हो तो धोबी के घर रोहिणी का वास समझना चाहिए। रोहिणी चक्र में अश्विनी नक्षत्र के स्थान पर मेष सूर्य संक्रान्ति का नक्षत्र रखना होगा।

मेघद्वार–

मेघद्वारादि के नक्षत्रों में पड़ने वाली सूर्य संक्रान्तियों से भी वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है । भरणी से आठ नक्षत्र मेघद्वार संज्ञक हैं, इनमें सूर्य संक्रान्ति हो तो अत्यन्त वर्षा होती है । मघा से पाँच नक्षत्र वायुद्वार संज्ञक हैं, इनमें सूर्य संक्रान्ति हो तो बड़े –बड़े मेघ दिखाई देते हैं परन्तु वर्षा नहीं होती है । स्वाती से तीन नक्षत्र धर्मद्वार संज्ञक हैं, इनमें सूर्य संक्रान्ति होने से सुभिक्ष, कल्याण, आरोग्यता और अत्यन्त वृष्टि होती है । ज्येष्ठा से छः नक्षत्र रेतद्वार संज्ञक हैं, इनमें सूर्य की संक्रान्ति हो तो बड़े –बड़े मेघ दिखाई देते हैं परन्तु वर्षा और उपज कम होती है । धनिष्ठा से छः नक्षत्र हेमद्वार संज्ञक हैं, इनमें सूर्य की संक्रान्ति हो तो सुभिक्ष और सुवृष्टि होती है[१]। यथा–

मेघादिद्वारचक्र

द्वार	नक्षत्र	फल
मेघ	भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृर्गशीर्ष आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा	अत्यन्त वर्षा
वायु	मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा	मेघ दर्शन परन्तु वर्षा नहीं

१. नरपतिजयचर्या मेघद्वाराणि, श्लोक १–५

धर्म	स्वाती, विशाखा, अनुराधा	अत्यन्त वृष्टि
रेत	ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा	मेघ दर्शन
	अभिजित्, श्रवण	अल्प वृष्टि
हेम	धनिष्ठा,शतभिषा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी	सुभिक्ष एवं सुवृष्टि

शुक्रोदयास्त से वृष्टि ज्ञान–

शुक्र के उदयास्त के अनुसार भी वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है यदि शुक्र का उदयास्त रविवार को हो तो अधिक वायु, भौमवार को हो तो शत्रु पीड़ा, बुधवार को हो तो दुर्भिक्ष, शनिवार को हो तो भय, सोमवार, गुरुवार एवं शुक्रवार को हो तो शुभिक्ष होता है। इसी प्रकार मास का फल भी कहा गया है। यदि चैत्र मास में शुक्र का उदयास्त हो तो वज्रवत् शासन, वैशाख में चतुष्पदों की हानि, ज्येष्ठ में वर्षा, आषाढ़ में जल का अभाव, श्रावण में भूकम्प, भाद्रपद में धन–धान्य में वृद्धि, आश्विन, कार्तिक एवं मार्गशीर्ष में हितकर, पौष और माघ में राष्ट्रभंग तथा फाल्गुन मास में अल्पवृष्टि होती है।[1]

शुक्रोदयास्त से वृष्टि ज्ञान चक्र

वार एवं मास	फल
रविवार	अधिक वायु
भौमवार	शत्रुपीड़ा
बुधवार	दुर्भिक्ष

१. नरपतिजयचर्या शुक्रोदयास्तफल, श्लोक–१–५

शनिवार	भय
सोम, गुरु एवं शुक्रवार	शुभिक्ष
चैत्र	वज्रवत् शासन
वैशाख	चतुष्पदों का नाश
ज्येष्ठ	वर्षा
आषाढ़	जल का अभाव
श्रावण	भूकम्प
भाद्रपद	धन–धान्य वृद्धि
अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष	हितकर
पौष, माघ	राष्ट्रभंग
फाल्गुन	अल्पवृष्टि

५. **सप्तनाड़ीचक्र**–रुद्रयामलगतस्वरोदय के अनुसार[१]–

दिशा	**दक्षिण में निर्जलनाडी**			**मध्य**	**उत्तर में सजल नाडी**		
नाडीनाम	चण्डा	वाता	दहना	सौम्य	नीरा	जला	अमृता
स्वामी	शनि	रवि	मंगल	गुरु	शुक्र	बुध	चन्द्र
नक्षत्र	कृतिका	रोहिणी	मृग.	आर्द्रा	पुन.	पुष्य	आश्ले.
	वि.	स्वा.	चि.	हस्त	उ.फा.	पू.फा.	मघा
	अनु.	ज्ये.	मू.	पू.षा.	उ.षा.	अभि.	श्रव.
	भर.	अश्वि.	रेव.	उ.भा.	पू.भा.	शत.	धनि.

१. उद्धृत् प्रा.भा.ऋ. वि., पृ. ११०

चण्डानाडी में २–३ से अधिक स्थित हुए ग्रह प्रचण्ड हवा चलाते हैं। वाता नाडी होने पर वायु और दहना नाडी होने पर ऊष्मा पैदा करते हैं। इनमें वर्षा का प्राय: अभाव रहता है। सौम्य नाड़ी में स्थित होने से समता रहती है। नीरा नाडी में स्थित होने पर मेघों का संचय, जल नाडी में प्रविष्ट होने से वर्षा तथा अमृतानाडी में स्थित होने पर अतिवृष्टि करते हैं। अपनी नाडी में स्थित हुआ एक भी ग्रह उस नाडी का फल दे देता है किन्तु मंगल सभी नाडियों में स्थित उस नाडी के अनुसार फल देता है।[1] जिस नाडी में क्रूर व सौम्य ग्रह मिले हुए हों उनमें जिस दिन चन्द्रमा का समागम हो उस दिन वर्षा होती है।[2] वनमाला ग्रन्थ में किञ्चिद् भिन्न सप्तनाडीचक्र कहा गया है।[3] किन्तु उपर्युक्त सप्तनाडी चक्र ही दैवज्ञों में अधिक प्रचलित है।

६. त्रिनाडीचक्र ज्ञान[4]–

त्रिनाडी चक्र

अ.	आ.→	पु.	उ. →	ह.	ज्ये.→	मू.	श.→	पू.	स्वर्ग
↓	↑	↓	↑	↓	↑	↓	↑	↓	
भ.	मृ.	पु.	पू.	चि.	अ.	पू.	ध.	उ.	पाताल
↓	↑	↓	↑	↓	↑	↓	↑	↓	
कृ.→	रो.	श्ले.→	म.	स्वा.→	वि.	उ.→	श्र.	रे.	भूमि

जब समस्त शुभ व पाप ग्रह एक नाडी में होते हैं तो शीघ्र ही अधिक पानी की वर्षा होगी ऐसा जानना चाहिये। जब इस त्रिनाडी चक्र में स्वर्ग नाडी में पापग्रह और पाताल नाडी में शुभग्रह संचारण करते हैं तो शीघ्र वर्षा

१. कादम्बिनी, सप्तनाडीचक्र, श्लोक ३२२–३२४

२. तत्रैव ३२८ विस्तृतफल हेतु देखें–तत्रैव श्लोक ३२५–३४२

३. द्रष्ट. प्रा.भा.ऋ.वि. पृ. १०७

४. वृ.दै.र. पांचवां प्रकरण, श्लोक ४६–५२

होती है। जब एक नाडी में नपुंसक ग्रहों का योग होता है या स्त्री संज्ञक ग्रहों का तो वायु चलती है वर्षा नहीं होती है। जब स्त्री व पुरुष संज्ञक बली ग्रह एक नाडी में होते हैं तो उत्तम वर्षा होती है। जब नपुंसक व स्त्री ग्रह होते हैं तो ठंड होती है। पुरुष ग्रह एक नाडी में होते हैं तो वायु का भय होता है। वातादि नाडी में स्थित ग्रह तज्जनित फल प्रदान करता है। जब बुध, शुक्र, भौम गुरु एक नाडी में होते हैं तो उस समय अवश्य ही अच्छी वर्षा होती है। जब भौम मार्गी हो या गुरु का उदय हो या शुक्र अस्त हो या शनि की वक्रता समाप्ति हो तो वर्षा होती है।

७. **आर्द्रा विचार**[१]– सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश करते समय जो तिथि, वार, नक्षत्र, योग, लग्नादि हो उसके अनुसार ही वृष्टिफल कहा गया है।

तिथिफल–अष्टमी तिथि हो तो कम वर्षा त्रयोदशी तिथि में अच्छी वर्षा होती है इसी आधार पर १,४,९,१४ तिथियों में आर्द्रा प्रवेश अशुभ एवं अन्य तिथियों में शुभ कहा गया है।

वारफल–रवि, मंगल व शनिवार अशुभ शेष शुभ है।

चन्द्र नक्षत्रफल–कृतिका नक्षत्र में जलवृष्टि, मघा में कम वर्षा, शतभिषा में अधिक वर्षा। सामान्यतया भरणी, कृतिका, आर्द्रा, अश्लेषा, मूल, ज्येष्ठा, मघा, पू.षा. नक्षत्र अशुभ हैं। शेष नक्षत्र शुभ।

योगफल– प्रीतियोग में पृथ्वी जल से व्याप्त, शुभ व शुक्ल योग में अच्छी वर्षा, ब्रह्मयोग में मध्यम वर्षा तथा ऐन्द्रयोग में सामान्य वृष्टि कही गयी है। सामान्यतया शूल, व्यतीपात, व्याघात, परिघ, वैधृति व अतिगण्ड अशुभ योग हैं। शेष शुभ हैं।

आर्द्रा प्रवेश में वर्षाफल– आर्द्रा पर सूर्य के आते ही वर्षा हो तो ज्येष्ठ महीने तक वर्षा नहीं होती है। आर्द्रा प्रवेश के दिन वर्षा हो तो डेढ़ महीने तक वर्षा नहीं होती।

आर्द्रा प्रवेश लग्न–लग्नकुण्डली में चन्द्र व सूर्य नवम पञ्चम हों

---

१. सचित्र ज्योतिषशिक्षा अध्याय १९ आर्द्रा विचार

या केन्द्र में जलचर राशि में हो तथा शुभग्रहों से द्रष्ट हों तो शुभ होता है।

८. **प्रश्नलग्नानुसार वर्षाविचार –**

१. वर्षा ऋतु में शुक्र से सप्तम चन्द्र हो और शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तथा शनि के पांचवें सातवें घर या त्रिकोण में चन्द्र हो तो वर्षा होने का योग होता है।

२. शुभ ग्रह जलचर राशि पर हो या प्रश्न लग्न के केन्द्र में या तीसरे घर में हो और शुक्ल पक्ष हो चन्द्रमा जलचर राशि में हो तो वर्षा होगी।

३. चन्द्रमा सूर्य से सप्तम शुक्र शनि यथा क्रम से होवें या चौथे घर में और आठवें घर में होवें या लग्न से इन्हीं घरों में होवें या लग्न से ३,१०,११, घर में हो तो वर्षा काल में वर्षा होगी।

४. बुध शुक्र का समागम (एक राशि में) हो या गुरु शुक्र का समागम हो या बुध गुरु का समागम हो तो नि'सन्देह वर्षा होती है।

५. जब सब ग्रह सूर्य के पीछे हों फिर सब आगे हो जाय तो सब जगह पृथ्वी पर जल की वर्षा होती है।

६. बुध शुक्र के बीच सूर्य हो तो जल का शोषण और इन्हीं के समीप हो तो बहुत वर्षा होती है।

७. आगे की राशि पर मंगल हो और पिछली राशि पर सूर्य हो तो वर्षा काल में भी ज्यादा वर्षा नहीं होती है।

८. वर्षा प्रश्न का लग्न ४,१०,१२ हो और उसमें चन्द्र हो या शुक्ल पक्ष में चन्द्र लग्न के केन्द्र में हो उस पर शुभ दृष्टि हो तो इच्छानुसार वर्षा होती है। चन्द्र को पाप ग्रह देखे तो अल्प वृष्टि होगी ऐसा कहना चाहिए।

९. वर्षाकाल में ४,१०,१२ लग्न में शुक्र हो या शुक्ल पक्ष में केन्द्र में हो उस शुक्र पर शुभ दृष्टि हो तो इच्छानुसार जल वर्षेगा। शुक्र पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो अल्प वर्षा होती है।

१०. उस काल में चन्द्र यदि जल राशि ४,११,१२,६ और मकर के

अंत्यार्द्ध राशि लग्न या केन्द्र में हो शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो बहुत जल बरसता है, पाप ग्रह की दृष्टि हो तो थोड़ा जल बरसता है और बहुत काल तक वर्षा नही होती। शुक्र भी चन्द्र के समान फल देता है।

११. प्रश्न लग्न में चौथे घर में शनि राहु हो उस वर्ष महाघोर दुभिक्ष होता है यदि चारों केन्द्र में शुभ ग्रह हो तो जिस–जिस केन्द्र में जो ग्रह हो उनकी ग्रह की दिशा में धान्य और सुभिक्ष होता है। जिस दिशा में क्रूर ग्रह हो उनकी ग्रह की दिशा में धान्य होता है और सुभिक्ष हो जिस दिशा में क्रूर ग्रह हो और उस पर शनि की दृष्टि हो तो उस दिशा में निश्चय दुर्भिक्ष होता है।

१२. प्रश्नकर्त्ता यदि पाँच अंगुली पकड़ कर भी अंगूठे को पकड़े हुए प्रश्न करे तो अधिक वर्षा होती है यदि कनिष्ठा को छुए तो कम वर्षा होती है। प्रश्न से शुभाशुभ (वार+तिथि+नक्षत्र)×२÷३= शेष १–शुभ २–शुभ, ३–दुर्भिक्ष।

वर्षा प्रश्न–प्रश्न लग्न से दूसरी या तीसरी जलचर राशि हो उसमें जलग्रह चंद्र, बुध, गुरु, शुक्र, हो तो अधिक वर्षा हो। किसी महीने की पूर्णिमा को भूचाल हो तो उस दिन जरूर वर्षा होती है अन्य तिथियों में नहीं।

ग्रहयोग–यदि चौमासे के दिन में चन्द्र को शुभ ग्रह देखें या शुक्र से सातवीं राशि में चन्द्र हो या चन्द्र शनि से ९, ५, ७ राशि में आवे तो उस दिन वर्षा होती है।

२. शनि भौम गुरु शुक्र के घर में या अन्यत्र इकट्ठे हों तो वर्षा बहुत होती है या युद्ध होता है।

३. ज्येष्ठ में सूर्य के साथ ५ ग्रह एक राशि में हो तो सावन में वर्षा होती है या छत्र भंग होता है।

४. कार्तिक शुक्ल में एक राशि में ५ ग्रह हो तो असमय वर्षा होती है।

५. मार्गशीर्ष शुक्ल में एक राशि में ५ ग्रह हो तो मनुष्यों में महामारी फैलती है।

६. यदि मघा आदि ५ नक्षत्रों में स्थित शुक्र का उदय पूर्व दिशा में हो तो लगातार वर्षा होती है।

७. यदि स्वाती आदि ३ नक्षत्रों में स्थित शुक्र का उदय पश्चिम दिशा में हो तो वर्षा होती है इन नक्षत्रों में से अन्य पर शुक्र का उदय हो तो वर्षा नहीं होती।

८. मंगल शनि यदि एक राशि पर हों या परस्पर एक दूसरे से सप्तम हों या इसी प्रकार गुरु शुक्र और मंगल सूर्य हो तो वर्षा नहीं होती।

आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार वृष्टि के आधार

जब वायुमण्डल के धरातल पर तरलावस्था अथवा ठोस रूप से जल गिरता है, तो इसे वृष्टि, वर्षण या अवक्षेपण कहा जाता है। जलवर्षा, हिमवर्षा, फुहार तथा उपलवृष्टि इत्यादि वर्षण के सामान्य रूप हैं किन्तु कोहरा, ओस तथा तुषार को साधारण अर्थों में वर्षण के अन्तर्गत नहीं माना जाता है।[1]

जब आर्द्र वायु की अपार मात्रा किसी कारणवश ऊपर उठती है तो उसके कारण तापमान में गिरावट आती रहती है और अंत में एक ऊँचाई पर जाकर उसमें संघनन की प्रक्रिया सम्पन्न होने लगती है। ऊपर उठती वायु में संघनन प्रक्रिया से मेघों की उत्पत्ति होती है। मेघ जल की छोटी–छोटी बूंदों अथवा छोटे–छोटे हिमकणों या दोनों से ही निर्मित होते हैं। मेघों में अपनी वायु व्यवस्था होती है। जल बूँदे मेधों के अन्दर विद्यमान वायुगति के साथ ऊपर–नीचे होते रहते हैं। ये छोटी–छोटी जल बूँदे भार में हल्की होती है जिस कारण वे बादलों से मुक्त नहीं हो पाती हैं, परन्तु जब छोटी–छोटी जलबूँदे आपस में जुड़कर बड़ी बूँदों में बदल जाती हैं तो भारी होने के कारण वे बादलों को छोड़कर भूमि पर गिरने लगती हैं। मेघकणों (जलकण व हिमकण) के आकार वृद्धि की क्रियाविधि को ही ''वर्षण प्रकम'' कहते हैं।[2] बादलों में इस प्रक्रिया के बिना वृष्टि सम्भव नहीं हैं। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के द्वारा किए गए परीक्षणों व शोधकार्यो से यह महत्वपूर्ण तथ्य सामने आया है कि[3]

१. जलवायु विज्ञान – डी.एस.लाल पृ. २२१
२. जलवायु विज्ञान – एस.एल.गुप्ता पृ. २३२
३. जलवायु विज्ञान – डी.एस.लाल पृ. २२१

एक औसत मेघ–कण का अर्द्धव्यास १० माइक्रान (१/१०० मिलीमीटर) होता है जबकि वर्षा की एक औसत बूँद का अर्द्धव्यास १००० माइक्रान (१ मिलीमीटर) पाया गया है। इस प्रकार यदि मेघकणों तथा वृष्टि में जल की बूँदों को गोलाकार मान लिया जाए, तो वर्षा की एक औसत आकार वाली बूँद के निर्माण के लिए कम से कम १०लाख मेघ–कणों की आवश्यकता होगी। इसी प्रकार ३ मिलीमीटर (१/१००मि.ली.) व्यास वाले लगभग २.७ करोड़ मेघकणों की आवश्यकता होगी। अत: मेघों से वृष्टि होने के लिए आवश्यक है कि इतने अधिक जलसीकरों का संलयन होकर वर्षा की एक बूंद का निर्माण होता है।

वस्तुत: आकाश में मेघों की उत्पत्ति से वृष्टि का प्रारम्भ होना अनिवार्य नहीं होता है। कुछ विशेष प्रकार के मेघों के द्वारा विशेष परिस्थितियों में ही वृष्टि होती है। वर्षाकारी मेघों के द्वारा भी कभी वृष्टि होती है और कभी विना वृष्टि के ही उनका वाष्पीकरण हो जाता है। कई बार मेघों से जल की बूँदे धरातल की ओर गिरती तो हैं परन्तु वायुमण्डल में ही वाष्पीकरण हो जाने से धरातल तक वे नहीं पहुँच पाती हैं। श्री डी.एस.लाल के शब्दों में – मेघकणों को वृष्टि के रूप में धरातल पर गिरने के लिए आवश्यक है कि उनके आकार में इतनी वृद्धि हो जाए कि उनको आरोही वायु तरंगे ऊपर ही न रोक सकें।[1]

वर्षण के सिद्धान्त[2] –वर्षा की बूँद निर्माण के सम्बन्ध में सम्प्रति निम्न दो सिद्धान्त प्रचलित हैं–

१. बर्जरान–फिंडीसेन का हिमक्रिस्टल सिद्धान्त

२. सम्मिलन सिद्धान्त

---

१. जलवायु विज्ञान – डी.एस.लाल, पृ. २२१

२. जलवायु विज्ञान – एस.लाल. गुप्ता, पृ. २३२–२३६

इनमें से बर्जरान-फिंडीसेन का हिमक्रिस्टल सिद्धान्त मध्य तथा उच्च अक्षांशों में हिमकणों और सम्मिलन सिद्धान्त उष्णकटिबंध में जलकणों के आकार वृद्धि पर लागू होता है। दोनों ही सिद्धान्तों की अपने-अपने क्षेत्रों में काफी महत्ता है।

१. हिमक्रिस्टल सिद्धान्त-

सन् १९३५ ई. में बर्जरान-फिंडिसेन ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। यह सिद्धान्त मुख्यत: उच्च अक्षांशों में होने वाले हिमपातों की व्याख्या करता है, क्योंकि उच्च अक्षांशो में अधिकतर मेघ हिमांक स्तर से काफी ऊपर तक स्थापित हो जाते हैं। वस्तुत: उच्च अक्षांशों में हिमांक स्तर भी अधिक ऊँचाई पर स्थित नहीं होता है। हिमांक स्तर क्षोभमण्डल में वह ऊँचाई है जहाँ जलकण तापमान की कमी के कारण हिमकण में बदल जाते हैं।

इस सिद्धान्त के अनुसार मेघ सामान्य जलकणों की जगह अतिशीतल जलकणों तथा हिमकणों से मिलकर बने हैं अर्थात् मेघ में अतिशीतल जलकण तथा हिमकण एक साथ मौजूद हैं। तापमान के अनुसार जलकण व हिमकण की प्रतिभागिता निम्न प्रकार व्यक्त की जा सकती है।

तापमान	मेघों में जलकण व हिमकण
१. ०° सेल्सियस से -१०° से०	अतिशीतल जलकण
२. -१०° सेल्सियस से -४१° से०	अतिशीतल जलकण+हिमकण
३. -४९° सेल्सियस से अधिक	हिमकण

हिमकण तथा अतिशीतल जलकण दोनों पर संतृप्त वाष्पदाब पड़ता है परन्तु संतृप्त वाष्पदाब हिमकण के ऊपर कम तथा अतिशीतल जलकण पर अपेक्षाकृत अधिक पड़ता है। जिस कारण हिमकण के ऊपर की वायु पहले संतृप्त हो जाती है। ०° सेल्सियस के नीचे तापमान पर वाष्पदाब अंतर के फलस्वरूप अतिशीतल जलकणों के चारों ओर की हवा असंतृप्त तथा

हिमकणों के चारों ओर की हवा संतृप्त हो जाती है। अत: हिमकणों के आसपास संतृप्त अवस्था पहले स्थापित हो जाती है। इसी समय जलकणों का वाष्पन भी जारी रहता है और वाष्प जलकणों से हिमकणों की ओर खिंचकर ऊर्ध्वपातन द्वारा हिमकणों पर संघनित होकर इनके ऊपर एकत्र होने लगती है। ऊर्ध्वपातन वह क्रिया है जिसके अंतर्गत ऊपर उठती हुई हवा में मौजूद वाष्प कण तरल अवस्था प्राप्त करने से पूर्व ही हिमकण में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार बादल के जलकण तो वाष्प में बदलते हैं और यही वाष्प हिमकणों के चारों ओर जमता हुआ एकत्रित होता रहता है जिस कारण हिमकण अपने आकार में विस्तार करते हैं जल के सूक्ष्मकण शुद्ध हवा में –४०° सेल्सियस तापमान तक अतिशीतल रहते हैं तथा हिम का रूप धारण नहीं करते हैं।

इस प्रकार बादलों में जलकणों एवं हिमकणों के साथ–साथ स्थित होने से जलकण तो वाष्पीकृत होते रहते हैं जबकि हिमकण आकार में वृद्धि करते रहते हैं। यह प्रक्रिया –१२° से० पर सर्वाधिक होती है क्योंकि इस तापमान पर हिमकणों एवं जलकणों पर पड़ने वाले संतृप्त वाष्पदाब का अन्तर सबसे अधिक (२७ मिलीबार) होता है। इसी तापमान में हिमकणों के आकार में वृद्धि का काम भी सम्पन्न होता है। ज्योंही हिमकण अपना विस्तार करके काफी बड़ा आकार ग्रहण कर लेते हैं, त्यों ही वे बादलों को छोड़कर भूमि पर गिरने लगते हैं। इस प्रक्रिया में बड़े आकार वाले हिमकणों को कुछ दूरी तक मेघ के अंदर से ही यात्रा करनी होती है और इस मेघ यात्रा के दौरान हिमकण जलकणों एवं अन्य हिमकणों से टकराकर इन्हें अपने ऊपर समेटकर अपना आकार और भी बड़ा बना लेते हैं। यदि हिमकण बादलों को ऐसी ऊँचाई पर छोड़ता है कि उस ऊँचाई के नीचे मेघ में तापमान हिमांक से अधिक है जो हिमकण पिघलकर जलबूँदों में परिवर्तित हो जाते हैं। जलबूँदें शेष मेघ आवरण से होती है अंत में मेघ को त्यागकर वर्षा के रूप में धरातल पर गिरती है। यदि निचले मेघ का तापमान भी हिमांक के नीचे होता है तो हिमपात होता है।

उपर्युक्त बर्जरान-फिंडीसेन के हिमक्रिस्टल सिद्धान्त की सार्थकता ब्रिटेन एवं उत्तरी अमेरिका में किए गए अनेक वायुमण्डलीय परीक्षणों ने सिद्ध कर दी है, जिसके अनुसार घनघोर मूसलाधार वर्षा केवल कपासी-वर्षा मेंघों से ही सम्भव है, क्योंकि ये मेघ ही हिमांकतल से सैकड़ों मीटर की ऊँचाई तक स्थित होते हैं। पालमेर ने कनाडा में अनेक मौसम रॉडार प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकाला कि हिमांक तल से लगभग ६५० मीटर की ऊँचाई पर वर्षा की मात्रा में काफी वृद्धि हो जाती है। इस सिद्धान्त का प्रभाव कृत्रिम वर्षा की विधियों पर भी पड़ा है।

२. सम्मिलन सिद्धान्त –

यह सिद्धान्त विशेषरूप से उष्णकटिबन्धी क्षेत्रों की वर्षा पर लागू होता है। उष्णकटिबन्ध में सभी मेघ हिमांक स्तर से नीचे स्थित होने के कारण अधिकतर छोटे-छोटे जलकण अथवा जलबूँदों से बने होते हैं। इस सिद्धान्त में भी यह मानकर चला जाता है कि मेघ में छोटे-छोटे जलबूँदों के अतिरिक्त कुछ इतने बड़े आकार की जलबूँदें भी मौजूद होती हैं जो मेघों में उपस्थित हवा के ऊपर नीचे होने वाले प्रवाह से मुक्त होकर भूमि पर गिरने योग्य भार रखती है। सम्भवत: इसका कारण यह है कि कुछ मेघकण शुरु में ही संयुक्त होकर काफी बड़े आकार के हो जाते हैं। बादल में विद्यमान वायु के ऊपर-नीचे होने वाले प्रवाह के प्रभाव से मेघकण भी ऊपर नीचे प्रवाहित होते रहते हैं। जिससे छोटे-छोटे मेघकण आपस में टकराकर संयुक्त हो जाते हैं और अपने आकार में वृद्धि करते रहते हैं। गिरती हुई जलबूँद के कारण बादल में एक धारा रेखा प्रवाह बन जाता है। जलबूँद के मार्ग के आगे दाब कुछ बढ़ जाता है और पीछे दाब कुछ कम हो जाता है। इस प्रकार नियमित दाब प्रवणता स्थापित हो जाती है जिसके प्रभाव से मेघकण स्वयं बड़ी बूँद के चारों ओर खिंचकर उसके ऊपर संचित हो जाते हैं। इस प्रकार के हि-प्रक्रम के प्रभाव में आकर जलबूँदे तीव्रता से आकार में वृद्धि करती है। जब इनका आकार इतना बढ़ जाता है कि मेघ में विद्यमान ऊपर नीचे होने वाले वायु प्रभाव से ये भार वृद्धि के कारण मुक्त

हो जाएं, तो मेघ को त्याग कर भूमि पर वर्षा के रूप में गिरने लगती हैं।

आधुनिक प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि तूफानी और भयानक शब्दनाद करने वाले श्यामवर्ण मेघों से अधिक वर्षा नहीं होती है। इसका कारण यह है कि बड़ी वर्षा-बूँदे अन्य बूँदों से टकराकर बड़ी होने के बजाय टूटकर अनेक छोटी-छोटी बूँदों में बदल जाती है। ऐसे मेघ वर्षा कम करते हैं और भयङ्कर शोर अधिक। लैंगमूर का मत है[१] कि मेघ से गिरने वाली बूँदे अपनी तीव्र गति के कारण अन्य छोटी-छोटी जलबूँदों को अपने ऊपर समेट लेती हैं और इस प्रकार अपने आकार का और विस्तार कर लेती हैं।

सभी मेघ उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुरूप वर्षा नहीं करते हैं। इसका कारण यह है कि प्रत्येक मेघकण का एक निश्चित आकार होता है जिस पर वह अन्य मेघकण के साथ संयुक्त होता है। जिनका आकार निश्चित आकार से कम होता है वे अन्य मेघकण के साथ नहीं मिल सकते हैं। कम से कम ३.० मि.मी. व्यास के मेघकण ही सम्मिलन योग्य मेघकण होते हैं। डीम (१९८४ ई०) के अनुसार[२] स्वच्छ मौसमी कपासी मेघ तथा स्तरी कपासी मेघ, बृहत् कपासी मेघ तथा स्तरी मेघों की अपेक्षा अधिक छोटे कणों से निर्मित होते हैं। तभी इनसे बहुत कम वर्षा होती है।

मेघों में निलंबित अवस्था में तैरते हुए सूक्ष्म मेघकण (जलकण) दो विधियों से आपस में मिलकर वर्षा बूँद में बदलते हैं[३]– १. स्कन्दन क्रिया द्वारा २. टकराव क्रिया द्वारा। स्कन्दन क्रिया के फलस्वरूप सूक्ष्म जलकण बड़े जलकणों की ओर खिंचकर उनके ऊपर संचित होने लगते हैं। जबकि टकराव क्रिया के अंतर्गत जलकण मेघ में मौजूद हवा के साथ ऊपर-नीचे होने वाले प्रवाह के दौरान परस्पर टकराकर एक दूसरे पर संयुक्त हो जाते हैं। इसे मेघकणों की टकराव क्रिया कहते हैं। इन दोनों प्रक्रियाओं के द्वारा वर्षाबूँदों का

---

१. जलवायु विज्ञान एस.एल.गुप्ता पृ. २३६

२. जलवायु विज्ञान एस.एल.गुप्ता पृ. २३६

३. तत्रैव पृ. २३७

निर्माण होता है। वर्षाबूँदें आकार में बड़ी और भार में अधिक होने के कारण मेघों को त्यागकर भूमि पर गिरने लगती हैं जिसे वर्षा कहते हैं। अपार आर्द्र वायुराशि से ऊपर उठने से उनमें संघनन की प्रक्रिया से मेघों का निर्माण होता है और अनुकूल परिस्थितियों में मेघों से वर्षा होती है। मेघों से गिरने वाले मेघकण सामान्यत: दो रूपों में १. जलबूँदों के रूप में तथा २. हिमकणों के रूप में, भूमि पर गिरते हैं। जब मेघों से जलबूँदें भूमि पर आती हैं तो इसे वर्षा कहते हैं और जब हिमकण भूमि पर आते हैं तो इसे हिमपात कहते हैं। पर कभी–कभी मेघों से इसके अतिरिक्त ओले, फुहार, स्लीट, हिमगोली, बर्फ सूचिका तथा हिमकारी वर्षा आदि भी गिरते हैं। अत: मेघों से भूमि पर आने वाले जल के समस्त रूपों को सामूहिकरूप से वर्षण अथवा अवक्षेपण कहते हैं। इसे ही वृष्टि भी कहा जाता है।

वृष्टि के प्रकार:–

वे कारक जिनसे आर्द्र वायु राशियों को ऊपर उठने में सहायता मिलती है, उनके आधार पर वृष्टि के तीन प्रकार पाये जाते हैं[1]

१. संवहनीय वृष्टि

२. पर्वतीय वृष्टि

३. चक्रवातीय अथवा बालाग्री वृष्टि

१. संवहनीय वृष्टि–

धरातल के अत्यधिक ऊष्मन् से वायुमण्डल में उत्पन्न संवहन धाराओं से होने वाली वृष्टि को संवाहनिक वृष्टि या संवहनीय वृष्टि कहते हैं। ग्रीष्मकाल में सूर्य की प्रचण्ड किरणों से दिन के उत्तरार्द्ध में धरातल का ऊष्मन सर्वाधिक होता है, अत: वायु में उत्पन्न संवहन धारायें भी अधिक शक्तिशाली होती हैं। उष्णवायु में उपस्थित जलवाष्प की मात्रा यदि अधिक हुई, तो वाष्प

---

१. जलवायु विज्ञान डी.एस.लाल पृ. २२७

की संघनन क्रिया प्रचुरमात्रा में होती है तथा वायुमण्डल में मीलों ऊँचाई तक कपासी–वर्षी मेघ निर्मित होते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में ऐसे मेघों से भारी मात्रा में वर्षा हो सकती है।

संवाहनिक वृष्टि की उत्पत्ति दिन में धरातल के ऊष्मन से होती है। अतः वर्ष के गर्म महीने तथा दिन के उष्णतम भाग ही इसके लिए अधिक अनुकूल होते हैं। वृष्टि के उपरान्त प्रायः सन्ध्या समय आकाश मेघरहित तथा मौसम स्वच्छ हो जाता है। संवहनीय वृष्टि अल्पकालिक तथा भारी बौछार के रूप में होती है। ट्रेवार्था के अनुसार यही वृष्टि मध्य एवं उच्च अक्षांशीय प्रदेशों में कृषि कार्य के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होती है। कारण यह है कि वर्ष के गर्म महीनों में फसलों की वृद्धि के लिए नमी की आवश्यकता पड़ती है और ऐसी वर्षा इसी समय होती है।

२. पर्वतीय वृष्टि –

ऑस्टिन मिलर के अनुसार पर्वतीय वर्षा प्रमुख रूप से उस समय होती है जब वायुमण्डल में आर्द्रता की मात्रा अधिकतम होती है। मध्यवर्ती अक्षांशों में शरद ऋतु एवं शीतकाल के आरम्भ में तथा मानसून प्रदेशों में ग्रीष्मऋतु में जब आर्द्रतापूर्ण सागरी पवनों के प्रवाह–पथ में पर्वतों, पठारों अथवा पहाड़ियों के द्वारा अवरोध उपस्थित होता है, तो वायुराशियाँ ऊपर उठने के लिए बाध्य होती हैं जिससे उनमें संघनन क्रिया प्रारम्भ हो जाती है तथा उनके और अधिक ऊपर उठने पर वर्षा का प्रारम्भ हो जाता है। इस वृष्टि को पर्वतीय वृष्टि या उच्चावचन वृष्टि भी कहा जाता है।

पर्वत अथवा पठार आदि भौतिक अवरोधों का कार्य वायु को ऊपर उठाने के अतिरिक्त उसमें पहले से विद्यमान प्रवृत्तियों को और अधिक सबल बना देना है। पर्वतों के द्वारा वायु को ऊपर उठने में जो सहायता मिलती है, उसे ''ट्रिगर प्रभाव'' कहा जाता है। आर्द्र वायुधाराओं के मार्ग में जब पर्वत अवरोध उपस्थित करते हैं, तो उनके वायु अभिमुख ढालों पर अधिकतम वृष्टि

होती है। इसके विपरीत, इन पर्वतों के वायु विमुख ढालों पर वर्षा की मात्रा आकस्मिक रूप से कम हो जाती है जो प्रदेश पर्वतों के वायु विमुख ढाल की ओर होते हैं, उन्हें 'वृष्टि छाया प्रदेश' कहा जाता है।

पर्वतीय वृष्टि की एक विशेषता यह है कि पर्वतों की ओर आने वाली आर्द्र पवन धाराएं उनसे संलग्न स्थिर वायु राशि के द्वारा पर्वतों से कुछ दूरी पर ही ऊपर उठने के लिए बाध्य हो जाती है। अत: वृष्टि की मात्रा में पर्वतों से कुछ दूरी पर ही वृद्धि होने लगती है। पर्वतों के पवनाभिमुख ढाल पर एक निश्चित ऊँचाई तक वृष्टि की मात्रा में क्रमिक वृद्धि होती है किन्तु एक ऐसी ऊँचाई होती है जिसके ऊपर वृष्टि की मात्रा में पुन: कमी होने लगती है। इसे वर्षा की 'व्युत्क्रमणता' कहा जाता है। भौतिक अवरोधों का अप्रत्यक्ष रूप से भी वृष्टि पर प्रभाव पड़ता है। दिन में पर्वतों के ढालों तथा घाटियों के अधिक गर्म हो जाने से वायु में संवहन तरंगे उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे वायुराशियाँ ऊपर उठती है और उनके शीतलन से दिन के तीसरे पहर में ढालों व घाटियों में वृष्टि होती है।

पछुआ पवन की पेटी में निम्नदाब गर्तों के ऊष्मांश में पर्वतीय वृष्टि भारी मात्रा में होती है। केन्ड्रयू के मतानुसार पर्वत श्रेणियाँ उष्णवाताग्री वृष्टि में भी वृद्धि करने में सहायक होती है। दिन के सबसे अधिक गर्म भागों में घाटी समीर के ऊपर उठने से पर्वतों के शीर्ष भागों के ऊपर मेघ निर्माण होकर गरज के साथ छींटे पड़ते हैं। केन्ड्रयू का अभिमत है कि पर्वतों के विखण्डित उच्चावचन में सभी वायुधाराओं के विक्षोभ की मात्रा बढ़ जाती है जिससे पर्वतों की ओर प्रवाहित होने वाली पवन धाराएं पर्वत की ऊँचाई से लगभग दोगुना ऊपर उठ जाती है। इसके परिणामस्वरूप मेघनिर्माण की प्रक्रिया तथा वृष्टि की मात्रा दोनों में वृद्धि हो जाती है। पर्वतीय वृष्टि की एक अन्य विशेषता यह है कि जहाँ कहीं अधिक वेग वाले पवनों से ऐसी वृष्टि होती है, वहाँ वृष्टि की अधिकतम मात्रा शीर्ष भाग से पवन विमुख ढाल की ओर थोड़ी दूर हट कर प्राप्त होती है।

पर्वतीय वृष्टि के वितरण पर धरातल के उच्चावचन का स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की वृष्टि में संवहनीय वृष्टि की अपेक्षा मौसमी अथवा दैनिक आवर्तिता कम पायी जाती है। मानसूनी जलवायु वाले प्रदेशों में स्वाभाविक रूप से ग्रीष्मकाल वर्षाकाल होता है। अन्य प्रदेशों में होनेवाली पर्वतीय वृष्टि की अधिकतम मात्रा का काल अनेक कारकों– स्थल एवं जल का तापान्तर, पवन की शक्ति एवं वह कोण जिस पर पवन धाराएं पर्वतों से मिलती है, पर निर्भर करता है।

३. चक्रवातीय वृष्टि –

जब वृष्टि के लिए आवश्यक विस्तृत एवं स्थूल वायु राशियों का आरोहण चक्रवातों द्वारा होता है। इस प्रकार की होने वाली वृष्टि को चक्रवाती वृष्टि कहा जाता है। धरातल पर अनेक ऐसे अभिसरण क्षेत्र पाए जाते हैं, जहाँ धरातल के समानान्तर बहने वाली विस्तृत वायुराशियाँ जिनमें तापमान, आर्द्रता एवं घनत्व का न्यूनाधिक अन्तर होता है, विपरीत दिशाओं से आकर परस्पर मिलती हैं। धरातल पर उत्पन्न निम्नदाब द्रोणियों में ऊपर उठी हुई वायुराशि में अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है तथा कपासी मेघों के निर्माण की अधिक सम्भावना बनती है। इन मेघों से अनुकूल परिस्थितियों में बौछार के रूप में वर्षा होती है।

मध्य और उच्च–अक्षांशीय कटिबन्धों में शीतकाल में अनेक चक्रवात पश्चिम से पूर्व की ओर चलते हैं। ध्रुवीय एवं उष्ण कटिबन्धीय वायुराशियाँ केन्द्र की ओर आकृष्ट होती है। विभिन्न गुणधर्म वाली वायुराशियों के मेल से इन शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवातों के अनुभाग में उष्णवाताग्र तथा पृष्ठभाग में शीतवाताग्र का निर्माण हो जाता है। उष्ण वाताग्र पर वायु का आरोहण क्रमिक होता है। आरोहण एवं शीतलन के कारण मेघों का निर्माण होता है। शीतलन धीरे–धीरे होने से इन मेघों से होने वाली वृष्टि फुहार के रूप में होती है। इनसे बहुत दूर–दूर तक वर्षा होती है तथा वर्षा की अवधि भी अपेक्षाकृत लम्बी होती है। आकाश सम्पूर्ण रूप से मेघाच्छादित रहता है तथा

बादलों से टप-टप जल की अत्यन्त छोटी बूँदे गिरती रहती हैं। शीतवाताग्रों से होनेवाली वृष्टि प्रायः मूसलाधार, अल्पकालिक तथा बिजली की चमक व मेघगर्जन के साथ होती है।

उष्ण कटिबन्ध (विषुवत रेखीय क्षेत्रों) में भी चक्रवातों से भारी मात्रा में वृष्टि होती है। यहाँ वायु का आरोहण प्रायः ऊर्ध्वाधर होता है जिससे कपासी वर्षी मेघों का निर्माण होता है तथा झंझावाती वर्षा होती है। उष्ण कटिबन्धों में होनेवाली चक्रवातीय वृष्टि भी प्रायः मूसलाधार एवं अल्पकालिक होती है। यूरोप व उत्तरी अमेरिका में शीतकाल में होनेवाली अधिकांश वृष्टि चक्रवातीय होती है। उत्तर भारत की शीतकालीन वर्षा भी चक्रवातीय वृष्टि का विशिष्ट उदाहरण है। भूपटल पर होने वाली वृष्टि एक से अधिक कारकों का प्रतिफल होती है।

वृष्टि को प्रभावित करने वाले कारक[१]

१. अक्षांश –

धरातल पर विद्यमान वायुमण्डलीय अपसरण और अभिसरण की अक्षान्तरीय पेटियों का वर्षा के वितरण पर सर्वाधिक नियन्त्रण रहता है। आरोही वायु राशियों के रुद्धोष्म दर से शीतल होने के कारण ही संघनन और अवक्षेपण की क्रियायें होती है। जिन कटिबन्धों में पवनों का क्षैतिज अभिसरण होता है, वहीं पर वायु राशियों का आरोहण सम्भव है। इसलिए अभिसरण पेटियाँ अधिकतम वृष्टि की पेटियाँ होती हैं। इसके विपरीत उन अक्षांशों में जहाँ वायु का अवतलन तथा पवनों का अपसरण होता है, अल्पवृष्टि वाले अथवा वृष्टिरहित क्षेत्र पाए जाते हैं। क्षैतिज अभिसरण के अतिरिक्त संवहन क्रिया एवं पर्वतीय अवरोध भी वायु को ऊपर उठने के लिए बाध्य करते हैं। वायु के अभिसरण के कारण विषुवत् रेखा के आसपास अधिकतम वृष्टि की एक १०° चौड़ी अक्षान्तरीय पेटी पायी जाती है। उपोष्ण कटिबन्धीय उच्च

---

१. जलवायु विज्ञान डी.एस.लाल पृ० २३३

वायुदाब की पेटी में वायु का अवतलन होने से धरातल के निकट प्रतिचक्रवातीय दशाएं उत्पन्न हो जाती हैं। अत: इन अक्षांशों में अल्प वृष्टि की पेटी पायी जाती है।

२. महाद्वीप तथा महासागर –

एक ही अक्षान्तरीय पेटी में महाद्वीपों की अपेक्षा महासागरों पर वर्षा की मात्रा अपेक्षाकृत् अधिक होती है क्योंकि महाद्वीपीय वायु महासागरीय वायु की अपेक्षा शुष्क होती है। 'ट्रेवार्था' के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए वर्षा का वार्षिक औसत ९७५मि०मी० है। इन्हीं के अनुसार वर्षा से प्राप्त सम्पूर्ण जल का आयतन ४९७ X $१०^{११}$ घन मीटर होता है। पृथ्वी पर जल एवं स्थल खण्डों का विस्तार उसके सम्पूर्ण क्षेत्रफल का क्रमश: ७१% और २९% है, किन्तु सम्पूर्ण पृथ्वी की वार्षिक औसत वर्षा का १९% भाग स्थल तथा शेष ८१% भाग महासागरों पर गिरता है।

क्रिचफील्ड के मतानुसार महाद्वीपों एवं महासागरों के वितरण का सर्वाधिक प्रभाव मध्य एवं उच्च अक्षांशों में स्थित प्रदेशों पर पड़ता है। आर्द्रता के मूल स्रोत महासागरों से काफी दूर स्थित महाद्वीपों के अन्तर्वर्ती क्षेत्रों में वृष्टि कम होती है। उन तटवर्ती क्षेत्रों में, जो महासागरों से आने वाली भापभरी हवाओं के सीधे मार्ग में पड़ते हैं, अपेक्षाकृत् अधिक वर्षा होती है।

३. पर्वतीय अवरोध –

पर्वत अथवा पठार भापभरी हवाओं को रोककर ऊपर उठाने में सहायक होते हैं। इन भौतिक अवरोधों के वायु अभिमुख ढालों पर वर्षा अधिक होती है। वायु विमुख ढालों की ओर वायु के अवतलन एवं ऊष्मन के कारण वृष्टिछाया प्रदेशों में वर्षा की मात्रा काफी कम हो जाती है।

वृष्टि के लम्बवत् वितरण पर भी पर्वतों का निश्चित प्रभाव पड़ता है। पर्वतों के वायु अभिमुख ढालों पर ऊँचाई में वृद्धि के साथ ही वर्षा भी अधिक होती जाती है, किन्तु एक ऐसी ऊपरी सीमा आ जाती है जहाँ वर्षा

की वृद्धि रूक जाती है और उसके ऊपर वृष्टि की मात्रा बढ़ने के बजाय घटने लगती है। इसे वृष्टि की व्युत्क्रमणता कहते हैं। कानरेड के अनुसार वृष्टि की व्युत्क्रमणता शीतोष्ण कटिबन्ध में स्थित पर्वतीय प्रदेशों में नहीं पायी जाती है।

वर्षा की विशेषताएं [१]—

मौसम निरीक्षण के द्वारा वर्षा की मात्रा, अवधि तथा आवृत्ति का अध्ययन किया जाता है। जिससे वर्षा की पाँच प्रमुख विशेषताएं स्वीकार की गई हैं—

१. **वर्षा की तीव्रता तथा प्रायिकता —**

वर्षा की मात्रा तक अवधि की सम्मिलित अभिव्यक्ति को वर्षा की तीव्रता कहते हैं। ऋतुवैज्ञानिक के लिए, बाढ़ तथा सूखे की पूर्व सूचना प्राप्त करने के लिए, मिट्टी के आवरण क्षय तथा वनों की रक्षा के लिए किसी विशेष तूफान से होने वाली वर्षा की मात्रा और अवधि का अध्ययन अति आवश्यक है। वर्षा की दर अंकित करने वाले आलेखों को हाइटोग्राम कहते हैं। इन आलेखों में प्रतिदिन की वर्षा अथवा मासिक वर्षा के अन्तर को प्रदर्शित किया जाता है। तडित तूफान प्रकार की वर्षा में छोटी ही अवधि में अत्यधिक तीव्रता देखी जाती है, जबकि शीतोष्ण प्रदेशों की सीमाग्र वर्षा बहुत दीर्घकाल तक होने पर भी कम मात्रा में रहती है। वर्षा की विधि का प्रदर्शन वर्षीले दिनों तथा कुल वर्षा की तुलना से भी किया जा सकता है, एक वर्षा दिन वह है, जिसमें कम से कम ०.०१ इंच वर्षा हो। वर्षा की प्रायिकता की गणना किसी स्थान के कुल वर्षीले दिनों तथा ३६५ दिनों के अनुपात द्वारा की जाती है। यह प्रायिकता वार्षिक अथवा मासिक (कुल वर्षीले दिन: ३०) दोनों में ही हो सकती है। कृषकों तथा केम्पों में जीवन यापन करने वालों के लिए वर्षा की प्रायिकता का ज्ञान अति आवश्यक है। थोड़ी अवधि में वर्षा की तीव्रता अधिक रहती है और यदि गणना लम्बी अवधि में की जाए तो तीव्रता भी कम

---

१. जलवायु विज्ञान के मूल तत्त्व = ए.के. तिवारी एवं बी.एल. शर्मा,पृ. २७७–२८२

हो जाती है। अधिक तीव्र वर्षा का मुख्य कारण वर्षा की बूँदों की संख्या न होकर उनका आकार होता है।

२. बर्षीले तूफानों का क्षेत्रीय विस्तार –

किसी एक निश्चित काल में वर्षा की कुल मात्रा उसके क्षेत्रीय विस्तार के अनुसार बदलती रहती है। ऐसी अवस्था में वर्षा की मात्रा तथा अवधि दोनों के सम्बन्ध भी पूर्णत: विपरीत हो जाते हैं। यदि यह गणना एक विशाल क्षेत्र के लिए की जाती है, तो वर्षा की तीव्रता के अंक कम हो जाते हैं, क्योंकि एक तूफान से वर्षा की अधिकतम मात्रा कुछ ही वर्गमील क्षेत्र में रहती है और अन्यत्र वर्षा की मात्रा साधारण रहती है।

३. वर्षीले तूफानों की आवृत्तता–

वर्षा के अध्ययन में जरुरी है कि उसकी बारम्बारता पर विचार किया जाए। एक निश्चित मात्रा या तीव्रता की वर्षा पुन: कितने समय बाद सम्पन्न होगी, ऐसी अवधि को वापसी काल या आवृत्ति काल कहते हैं। वर्षा की आवृत्तता का अध्ययन सभी प्रदेशों में सम्भव नहीं है क्योंकि वर्षा की मात्रा, अवधि, तीव्रता व प्रायिकता इत्यादि के आंकड़ें सर्वत्र प्राप्त नहीं होते हैं। आंकड़ों के अध्ययन से वर्षा की बारम्बारता का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है परन्तु यह निश्चित नहीं है कि वर्षा की तीव्रता एक चक्रीयविधि से ही चलती है अत: उसकी पुनरावृत्ति अवश्य होगी।

४. वर्षा की विश्वसनीयता–

वार्षिक अथवा मौसमी वर्षा की विश्वंसनीयता या निश्चितता वर्षा की परिवर्तनशीलता की एक अभिव्यक्ति है। लगभग ३५ वर्ष या उससे अधिक की औसत वर्षा से होने वाले विचलन को वर्षा का परिवर्तन कहते हैं। आर्द्र प्रदेशों में वर्षा का वार्षिक परिवर्तन ५०% से अधिक नहीं होता जबकि शुष्क प्रदेशों में यह परिवर्तन ७५% तक हो जाता है। यह एक

सामान्य नियम है कि जैसे ही कुल वर्षा की मात्रा कम होती जाती है, वार्षिक परिवर्तन अधिक होते जाते हैं।

५. वार्षिक तथा मौसमी वर्षा की मात्रा –

एक साल में कुल वर्षा की मात्रा को वर्षा की गहराई अथवा वार्षिक वर्षा कहते हैं। वर्षा की कुल मात्रा अत्यधिक परिवर्तनशील है। यद्यपि वर्षा की वार्षिक मात्रा पर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। दिन–प्रतिदिन के मौसम में उसका कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं है।

द्वितीय अध्याय

मेघ के आधार

प्राचीनसिद्धान्तों के अनुसार मेघ के आधार

मेघों की निष्पत्ति धूम, ज्योति, सलिल एवं मरुत के संयोग से होती है, ऐसा प्राचीनाचार्यों का मत है। इसलिए मेघदूत में कालिदास कहते है[१]— **''धूमज्योतिः सलिल मरुतां सन्निपातः क्व मेघः।''** सूर्य की किरणों से तप्त समूद्र, नदी आदि का जल धूम वाष्प रूप में परिणत होकर मेघों की उत्पत्ति करता है। मेघ सामान्यतया दो प्रकार के होते है:—अभ्रः और मेघ। जिन बादलों से तुरन्त जल नहीं बरसता है अपितु कुछ काल तक उनमें ही स्थित रहता है वे अभ्र कहे जाते है। **यथा—अग्ने वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्राद् वृष्टिः।**[२] यह मेघ उत्पन्न करने वाला धूम भी शास्त्रों में कई प्रकार का वर्णित है। इनमें यज्ञ धूम से बने बादल हितकारी, दावाग्नि धूम से निष्पन्न बादल वनों के लिए लाभदायी है, मृतकधूम से बने बादल अशुभ और अभिचाराग्नि के धूम से बने बादल प्राणियों के नाशक कहे गये है। मेघ शब्द मेहन करने के कारण कहे जाते है जो सद्यः वर्षा करते है।[३] इस प्रकार वृष्टि कारक मेघों का वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता है।

वस्तुतः सूर्य की किरणों से तप्तजल जलवाष्प रूप में परिणत होता है। यही जलवाष्प वायु के द्वारा ऊँचे आकाश में पहुँचाता है। जहाँ वह शीतल होकर पुनः जलकणों में बदल जाता है। जब शीतलता के कारण वायु संकुचित होती है तब जलकण परस्पर निकट आकर एकत्रित होकर भारी हो

---

१. मेघदूत पूर्वमेघ /५

२. शतपथ ५/१/५/१७

३. वायुवृष्टिविज्ञानम्, काशीहिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, पृ. २३—२४

जाते हैं। जिन्हें वायु ढ़ोने में सक्षम नहीं रह पाती अत: वे ही जलकण वर्षारूप में भूमि पर गिरते हैं। जल के वाष्प रूप में परिणत होने के काल से वर्षण तक के समय को ही वृष्टिगर्भकाल कहते है। यह वृष्टि चक्र ईश्वर की प्रेरणा से चलता है, ऐसा प्राच्यों का मत हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में वृष्टि पद्धति का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि– सूर्य द्वारा ग्रहण किया हुआ जल ही समयानुसार बरसता है। सूर्य, मेघ आदि सबको विधाता ने ही निर्मित किया हैं। सूर्य इच्छानुसार समुद्र से जल लेकर बादलों के लिए देते है और वे बादल वायु द्वारा संप्रेरित होकर ही पृथ्वी के पृथक्–पृथक् स्थान में समय–समय यथोचित जल देते है। यह सब ईश्वर की इच्छा से ही आविभूर्त होता है।[1] यहाँ सूर्यकिरणों से जल लेने की पद्धति को ही सूर्य के जल लेने के रूपक में वर्णित किया गया है। यहाँ भौतिक एवं पौराणिक पक्षों के समन्वय का अच्छा प्रयास दिखाई देता है।

मेघ के भेद, लक्षण एवं गुण–

१. मेघ की स्थिति[2]:–

मेघ की चार प्रकार की स्थितियाँ होती हैं– अभ्र, बादल, घन और घटा। इनमें आकाश के अन्दर फैलने वाला अभ्र कहलाता है। मेघ के टुकड़ों को बादल कहते हैं, फैले हुए खण्ड घन होतें है, और खण्ड–खण्ड न होकर एक ही रूप में फैले हुए हो तो उसे घटा कहते हैं।

---

१. सूर्यग्रस्तञ्च नीरञ्च काले तस्मात् समुद्भव:।
सूर्यो मेघादय: सर्वे विधात्रा ते निरूपिता:।।
हस्ती समुद्रादादाय करेण जलमीप्सितम्।
दद्याद् घनाय तद् दधात् वातेन प्रेरितो घन:।।
स्थाने स्थाने पृथिव्यां च काले काले यथोचितम्।
ईशेच्छयाऽऽविर्भूतं च न भवेत् प्रतिबन्धकम।।
–ब्रहमवै. श्रीकृष्णजन्मखण्ड २१/२०५,१०=१०

२. कादन्विनी, निमित्ताध्याय३/२ लोक ३९–४०

२. मेघ के प्रकारः—

मेघ चार तरह के होते हैं[१] नाग, पर्वत, वृषभ एवं अर्बुद। इन चारों का कारण जल ही है अर्थात् ये वर्षाकारक होते हैं। मेघों की योनि अर्थात् उत्पत्ति के कारण तीन हैं[२] अग्नि, ब्रह्म और पक्ष। इनकी वृद्धि का साधारण हेतु धूम है।

अग्निज मेघ—

ऊष्मा, स्विन्न (गीले पदार्थ) और गर्भ से उत्पन्न मेघों का धूम से प्रवर्तित होना अग्निज का सामान्य लक्षण है। इन मेघों में श्रेष्ठ मेघ दुर्दिन (बादलयुक्त दिवस) की हवा से उत्पन्न हुए होते हैं। हाथी, भैंस और सुअर के आकार एवं रंग की तरह दिखाई देने वाले ये मेघ, वन, पर्वत एवं शिखरों पर वर्षा करते हैं। थोड़ी वर्षा करने वाले बड़े शरीर वाले, पृथ्वी के समीप आये हुए मेघ एक या आधे कोस में ही बसरते हैं।

ब्रह्मज मेघ—

आकाश में नक्षत्र और ग्रहों के योग से जिनकी उत्पत्ति होती है वे मेघ ब्रह्मज कहलाते हैं, अग्नि से पैदा होने के कारण ये मेघ ऊपर आकाश में गए हुए होते हैं। जो धारासार अर्थात् मोटी बूंदों वाले मेघ होते हैं वे बहुत दूर तक वर्षा करते हैं। ब्रह्मज मेघों के प्रसंग से अग्नि से उत्पन्न हुए मेघ भी बरस जाया करते हैं।

पक्षज मेघ—

पर्वतों के पक्ष कटने से जो मेघ बनते हैं, वे पक्षज कहलाते हैं। वे मेघ अनेक प्रकार के आकृतिवाले और घोर आवाज करने वाले होते हैं। युगान्त में पृथ्वी को जल से पूरित करने वाले और कल्पान्त वृष्टि पैदा करने वाले ये मेघ संवर्ताग्नि से बने होते हैं।

---

१. तत्रैव श्लो. ४१

२. तत्रैव श्लोक ४४—५१

३. मेघों की जातियाँ–

कादम्बिनि में वर्णित है कि शीतकाल में दिग्गज जाति के मेघों से हिम की वर्षा होती है[१]। परन्तु सामान्यतया मेघों की निम्न चार जातियाँ मानी जाती है– आवर्त, संवर्त, पुष्कर और द्रोण। इनमें पुष्कर जाति का मेघ दुःख से जल देने वाला, आवर्त्त जाति का मेघ निर्जल, संवर्त्त जाति का मेघ अधिक जल वाला और द्रोण जाती का मेघ घान्य के योग्य बरसने वाला होता है।[२] कृषि पाराशर[३] के अनुसार इनके नामानुसार वर्ष में वृष्टिफल विचारना चाहिए। एतदर्थ शकाब्द में ३ जोड़कर ४ का भाग देने पर शेष को मेघ नाम से जानना चाहिए। यथा शकाब्द= १९३० अत: (१९३०+३) ÷४ = शेष १ अर्थात् आवर्त मेघ इन मेघों का फल कृषि पाराशर में निम्न प्रकार से कहा गया है–

मेघनाम	फल
१. आवर्त	एकदेश में वर्षा
२. संवर्त	सर्वदेशीय वर्षा
३. पुष्कर	दुष्कर वर्षा
४. द्रोण	अधिक वर्षा

अन्य कुछ विद्वानों के अनुसार वृष्टिसूचक ९ मेघ होते हैं। इनका फल निम्नवत् है[४]–

---

१. कादम्बिनी, निमित्ताध्याय ३/४२

२. तत्रैव ४२–४३

३. कृषिपाराशर श्लोक २३–२४ पृ.६

४. प्रा. भा. ऋतुविज्ञानम् पृ. २७

मेघनाम	फल
१. आवर्त	अल्पवर्षा
२. संवर्त	वायुपीड़ा
३. पुष्कर	मन्दवर्षा
४. द्रोण	अच्छी वर्षा
५. कालक	अल्पवर्षा
६. नील	शीघ्रवर्षा
७. वरुण	अर्णवाकारवर्षा (अधिक वर्षा)
८. वायु	वर्षा का अभाव
९. तम	वर्षा का अभाव

४. मेघों के लक्षण–

अधिक पवन चलना या सर्वथा पवन का बन्द होना अधिक गरमी पड़ना या अधिक ठण्ड का ही होना, अधिक बादलों का होना अथवा सर्वथा ही बादलों का न होना ये ६ चिह्न मेघ के होते है। अर्थात् अच्छे मेघ के आने के ये लक्षण हुआ करते है।[१]

५. मेघों के वृष्टिगुण–[२]

आठ दिशाओं में से सूर्य द्वारा त्यक्त, सूर्यद्वारा आक्रमित एवं आक्रमणीय दिशा, ये तीन दिशायें सूर्य से प्रकाशित या दीप्तदिक् कहलाती हैं। अन्य पाँच दिशाएं शान्त कहलाती हैं। शान्त दिशा में श्याम, रक्त अथवा पीले रंग का स्निग्ध और मन्दगतिक मेघ का दर्शन हो तो जलागमन जानना

१. कादम्बिनी निमित्तध्याय ३/५२
२. तत्रैव श्लोक ५४/७०

चाहिए। इसके विपरीत शान्त दिशा में जो मेघ शुक्लवर्ण का दिखाई दे तो स्निग्ध एवं मन्दगति होने पर भी मेघ को रिक्त ही समझना चाहिए।

सुन्दर रंग एवं आवाज वाले मन्दगति और शुभ मुहूर्त्त में उठे हुए मेघ सदा सर्वत्र जल बरसाने वाले होते हैं। अच्छी बिजली, गन्ध, स्वर, वर्षा, वायु एवं बूंदों वाले मेघ सुभिक्षकारक होते है। इसके विपरीत रूखे मेघ वायु पैदा करते हैं, खराब गन्ध वाले व्याधि एवं खराब रंग व आवाज वाले मेघ नहीं बरसते हैं। केसर के जल सदृश तथा नीले व काले रंग के मेघ दक्षिण से अग्निकोण को जाते हुए वहीं बरस जाते हैं। लाल, पीले अथवा नीले रंग के मेघ उत्तर को जाते हुए शीघ्र ही चतुर्दिक हवा करते हुए बरस जाते हैं। दक्षिण से उत्तर को जाये और उत्तर से दक्षिण को आये तो वह मेघ बरसता नहीं अगर बरसे तो कई दिन तक बरसते हैं। पश्चिम से जब मेघ वायव्य, नैर्ऋत्य आदि कोणों की तरफ जाते हैं तब वे अल्पजल वाले हो जाते हैं, उनसे वृष्टि नहीं होती है। पश्चिम से जब मेघ आकुल होते हुए आते हैं तब वे वायु पैदा करते हैं और फिर वृष्टि करते हैं। पश्चिम से पूर्व को और पूर्व से पश्चिम को जब मेघ जाते हैं तब वे आपस में भिड़ते हुए दस दिन तक वर्षा करते हैं। प्रशान्त मौसमी वायु की दिशा से सफेद बादलों के पर्वत सदृश प्रखण्ड मौसमी वायु वाली दिशा में धीरे से चले जाते हैं। इसी प्रकार प्रचण्ड मौसमी वायु वाली दिशा से प्रशान्त मौसमी वायु वाली दिशा में रूई के ढ़ेर के सदृश जो श्वेत बादल होते हैं वे चले जाते है। रूई के ढेर के समान सफेद बादल वायव्य या उत्तर से वेग से आते हो तो वे आठों प्रहर अवश्य वर्षा करेगें। यदि रूई के ढेर के समान श्वेत बादल नैर्ऋत्य या दक्षिण से आते हो तो वे शीतकाल में वर्षा के अन्दर ओले गिराते हैं। तमाल, अञ्जन और नीलकमल की सी प्रभा वाले, मोती और चाँदी की सी आभा वाले और गर्भ में जलचरों की आकृति वाले मेघ अधिक जल बरसाने वाले होते हैं।

भद्रबाहुसंहिता में मेघों के लक्षण एवं फलों का प्रतिपादन करते हुए ग्रन्थकार का अभिमत है कि यदि अंजन के समान गहरे काले मेघ पश्चिम

दिशा में दिखाई पड़े और ये चिकने तथा मन्दगति वाले हों तो भारी जल वृष्टि होती है।[१] पीले पुष्प के समान स्निग्ध मेघ पश्चिम दिशा में स्थित हों तो जल की वृष्टि तत्काल करते हैं।[२] लाल वर्ण के तथा स्निग्ध और मन्दगति वाले मेघ पश्चिम दिशा में दिखलाई दें तो अच्छी जल वृष्टि होती है।[३] श्वेतवर्ण के स्निग्ध और मन्दगति वाले मेघ पश्चिम दिशा में दिखलाई दें तो जितना जल उनमें रहता है। उतनी वर्षा करके वे निवृत्त हो जाते हैं।[४] यदि स्निग्ध, सौम्य, मृदुल आवाज वाले, मन्दगतिक मेघ उत्तम मुहूर्त्त में दिखलाई पड़े तो सर्वत्र वर्षा होती है।[५] सुगन्ध (केशर और कस्तूरी के समान गन्ध वाले) मनोहर गर्जना करने वाले, स्वादु रस वाले, मीठे जल वाले मेघ समुचित जल की वर्षा करते है।[६]

चिकने बादल अवश्य बरसते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उत्तर दिशा के आश्रित बादल प्राय: काल के अनुसार नियमत: वर्षा करते हैं।[७] उत्तर और पूर्व के बादल सदा उत्तम वर्षा करते हैं और दक्षिण व पश्चिम के बादल थोड़ी थोड़ी वर्षा करते हैं।[८] यदि बादल काले, पीले, ताँबे और सफेद वर्ण के हों तो वे उत्तम वर्षा की सूचना देते है।[९] यदि बादल देवांगनाओं और प्राणियों के सदृश विचरण करें और स्निग्ध हों तो वे शुभ होते हैं। और उनसे उत्तम वर्षा होती है।[१०] बादल शुक्ल वर्ण के हों, स्निग्ध हों विद्युत युक्त एवं

---

१. भद्रबाहु सं. ८/२
२. तत्रैव ८/३
३. तत्रैव ८/३
४. भद्रबाहु सं. ८/५
५. तत्रैव ८/८
६. तत्रैव ८/९
७. भद्रबाहु सं. ६/२
८. तत्रैव ६/३
९. तत्रैव ६/४
१०. तत्रैव ६/५

विचित्र रंग के बादल हो तो तत्काल वर्षा होती है।[१] शुभ शकुन और शुभ चिह्नों सहित बादल हो तो वृष्टि होती है।[२]

मेघ गर्भकाल –

शीतकाल को मेघ गर्भ धारण का, उष्णकाल को दोहद (गर्भपोषण) एवं वर्षाकाल को प्रसव (वृष्टि) का समय माना जाता है। कुछ विद्वानों के अनुसार मार्गशीर्ष से फाल्गुन तक शीतकाल, चैत्र से आषाढ़ तक उष्णकाल एवं श्रावण से कार्तिक तक वर्षाकाल होता है।[३] सम्प्रति कार्तिक से माघ तक शीतकाल, फाल्गुन से ज्येष्ठ तक उष्णकाल और आषाढ़ से आश्विन तक वर्षाकाल माना जाता है।[४] शीतकाल में गर्भधारण होता है, इसके पश्चात् उष्णकाल में उसका परिपाक एवं वर्षाकाल में वह प्रसूत हो जाता है अर्थात् बरसता है।[५] किसी का अभिमत है कि ज्येष्ठा नक्षत्र के आस पास जब अमावस्या होवे तब गर्भकाल और ज्येष्ठा नक्षत्र के आसपास जब पूर्णिमा होवे तब प्रसवकाल अर्थात् वर्षाकाल समझना चाहिए।[६] प्राय: मार्गशीर्ष की अमावस्या को एवं ज्येष्ठ की पूर्णिमा को ज्येष्ठा नक्षत्र आया करता है। कई विद्वान मानते हैं कि मूल नक्षत्र के उत्तरार्द्ध में सूर्य के आने से गर्भकाल और आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य के आने से प्रसवकाल होता है। अर्थात् मूल नक्षत्र पर जब सूर्य आये तब से ६ दिन वाद से ४ मास तक गर्भकाल और आर्द्रा पर तब सूर्य आये तब से ४ मास तक प्रसवकाल माना जाता है। मूल पर सूर्य पौष के महीने में और आर्द्रा पर आषाढ में प्राय: आया करता है और १३ दिन तक रहता है।[७] कुछ विद्वान कहते हैं कि जिस पात से सूर्य दक्षिणायन हो वह

---

१. भद्रबाहु ६/६

२. तत्रैव ६/७

३. कादम्बिनी गर्भाध्याय १६

४. तत्रैव श्लोक १७

५. तत्रैव श्लोक १८

६. कादम्बिनी गर्भाध्याय श्लोक १९

७. तत्रैव २०

गर्भकाल का प्रारम्भ और जिस पात से सूर्य उत्तरायण हो वह प्रसवकाल माना जाता है।[१] गर्भकाल के प्रारम्भ का दिन मानने के विषय में किसी का अभिमत हैं कि स्वाति पर सूर्य के आने से, या स्वाति के सूर्य में स्वाति नक्षत्र पर चन्द्रमा के होने से अथवा स्वाति के सूर्य पर अश्विनी के चन्द्रमा होने से अथवा अनुराधा के सूर्य में अनुराधा नक्षत्रगत चन्द्रमा के आने से या मूल पर सूर्य के आने से गर्भकाल का प्रारम्भ होता है। इन पाँचों में मूलार्क से उत्तर के दृढ़फल वाले एवं पहिले के मन्द फलवाले हैं।[२] आचार्य सिद्धसेन का अभिमत है कि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा के बाद गर्भ के दिन होते है।[३] जबकि गर्गादि महर्षियों के मतानुसार वराहमिहिर का अभिभत है कि मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से जब चन्द्रमा पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में स्थित हो उस समय से गर्भ का लक्षण जानना चाहिए।[४] चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में स्थित होने से गर्भस्थिति होती है, उससे १९५ वें दिन में प्रसव होता है। अर्थात् चान्द्रमान से १९५वें दिन में वर्षा होती है।[५] समाससंहिता में भी इसी प्रकार गर्भविपाकावधि कही गयी है।[६]

---

१. तत्रैव २१

२. तत्रैव २२–२३

३. शुक्लपक्षमतिक्रम्य कार्तिकस्य विचारयेत्।
गर्भाणां सम्भवं सम्यक् सस्यसम्पत्ति कारणम्।। –उद्धत बृ. सं. गर्भलक्षणा ५

४. मार्गशिर: सित पक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढ़ाम्
पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम्।। वृ. सं. गर्भलक्ष ६
गर्ग– शुक्लादौ मार्गशीर्षस्य पूर्वाषाढ़ाव्यवस्थिते।
निशाकरे तु गर्भाणां तत्रादौ लक्षणं वदेत्।।
काश्यप–सितादौ मार्गशीर्षस्य प्रतिपद्दिवसे तथा।
पूर्वाषाढागते चन्द्रे गर्भाणां धारणं भवेत्।।
–उद्धृतं तत्रैव टीका

५. यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत्स चन्द्रवशात्।
पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति।।–बृ. सं. गर्भलक्षण. ७

६. पौषासितपक्षाद्यै: श्रावण शुक्लादयो विनिर्देश्या:।
सार्द्धै: षड्भिर्मासैर्गर्भविपाक: स नक्षत्रे।। उद्धत–तत्रैव टीका

मेघगर्भ लक्षणः—

वराहमिहिर का कथन है कि गर्भ स्थिति काल में आह्लादजनक, सुखस्पर्श और उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न वायु, निर्मल आकाश, स्निग्ध और श्वेत परिवेश से व्याप्त चन्द्र और सूर्य, आकाश में विस्तृत और स्निग्ध मेघ, सूच्याकार, क्षुर्याकार लोहित वर्ण, काक के अण्डे के समान, मयूरकण्ठ के समान हो, निर्मल चन्द्र और नक्षत्रों से युत आकाश, इन्द्रधनुष, मेघों के मधुर शब्द, विद्युत् और प्रतिसूर्य से युक्त पूर्वापरा संध्या, सूर्य के अभिमुख होकर उत्तर, ईशान या पूर्वदिशा में स्थित पक्षी और मृग, नक्षत्रों के उत्तर मार्ग से होकर निर्मल उत्पात् रहित ग्रहों का गमन, बाधा रहित वृक्षों का अङ्कुरण, मनुष्य और पशु हर्षित, इन सब गुणों से युत गर्भ का समय हो तो गर्भ पुष्ट होता है। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से वैशाख के अन्त तक गर्भ की परीक्षा करनी चाहिए।[1]

मोती या चाँदी के समान श्वेत् अथवा तमाल वृक्ष, नीलकमल या अञ्जन के समान अतिकृष्ण, अथवा जलचर जन्तु के समान कान्ति वाले मेघ हों तो बहुत वृष्टि करने वाले होते हैं। अति भयङ्कर सूर्य किरण से तापित, अल्पवायु से युत गर्भकालिक मेघ १९५ वें दिन (प्रसवकाल) में धाराप्रवाह अतिवृष्टि करते हैं।[2] गर्भ पुष्टि लक्षण के विषय में आचार्य वराहमिहिर का मत है कि वायु, जल, विद्युत, मेघ का शब्द और मेघों से युत गर्भ हो तो प्रसवकाल बहुत वृष्टिप्रद होता है। इस तरह के गर्भ काल में यदि बहुत वृष्टि हो तो प्रसवकाल में अधिक वृष्टि नहीं होती है।[3]

---

१. बृ. सं. गर्भलक्षणा. १४—१८

२. मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः।
जलचरसत्त्वाकारा गर्भेषु घनाः प्रभूतजलाः।।
तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिता मन्दमारुता जलदाः।
रुषिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यम्भः प्रसवकाले।। तत्रैव २३—२४

३. पवन सलिलविद्युद्गर्जिताऽभ्रान्वितो यः स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः।
विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभूरिप्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति।।
—तत्रैव ३७

ग्रामीण लोकोक्तियों में मेघ गर्भाधान के दश लक्षण कहे जाते हैं। जैसे– बादल का होना, हवा का बहना, बिजली चमकना, पानी का बरसना, आकाश का कड़कना, बादलगर्जन, ओले का पड़ना, इन्द्रधनुष, सूर्य पर मण्डल (परिवेश) होना और सर्दी पड़ना।[१]

मेघ गर्भों के विशेष लक्षण की विवेचना करते हुए आचार्य वराहमिहिर प्रसव काल का निर्देश देते हुए कहते है कि अमान्त मान से मार्गशीर्ष शुक्ल और पौष शुक्ल में स्थित गर्भ मन्द अथवा अल्प वृष्टि प्रदायक होता है। पौष कृष्ण पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण शुक्ल पक्ष में, माघ शुक्ल पक्ष में गर्भ हो तो श्रावण कृष्ण में, माघ कृष्ण में गर्भ हो तो भाद्रपद शुक्ल में, फाल्गुन शुक्लपक्ष में गर्भ हो तो भाद्रपद कृष्ण में, फाल्गुन कृष्ण में गर्भ हो तो आश्विन शुक्ल में, चैत्र शुक्ल में गर्भ हो तो आश्विन कृष्ण में और चैत्र कृष्ण में गर्भ हो तो कार्तिक शुक्ल में प्रसव (वृष्टि) होता है।[२]

गर्भ की वृद्धि के लिए ऋतु के स्वभाव से उत्पन्न अवशिष्ट लक्षणों के अनुसार पौष और मार्गशीर्ष में दोनों सन्ध्याओं के रक्तवर्ण और परिवेश युत मेघ शुभ होते हैं तथा मार्गशीर्ष में अल्पशीत और पौष में हिम का गिरना शुभ होता है। माघ मास में प्रबल भयङ्कर वायु, अतिशीत और मेघ रहित सूर्य का उदयास्त शुभ होता है। फाल्गुन मास में रूक्ष और भयङ्कर वायु, मेघों का उदय, सूर्य व चन्द्र का निर्मल तथा अखण्ड परिवेश, कपिल या ताम्र वर्ण का सूर्य शुभ है। चैत्र मास में वायु, मेघ, वृष्टि और परिवेश युत गर्भ होता है। वैशाख मास में मेघ, वायु, जल, विद्युत और मेघ के गर्जन युत गर्भ शुभ होता है।[३]

---

१. बादल, वायु, बिज्जु बरसंत, कडकै गाजै उपल पडत।
धनुष और परिबेसे मान, मेंम पंडे दस गर्भ प्रमान।।
–उद्धृत वायु वृष्टि विज्ञानसंगोष्ठी पत्रिका, का. हि. वि. वि. वाराणसी, पृ. ४१

२. बृ. सं. गर्भलक्षणा. ०८–१२

३. तत्रैव १९–२२

ऋतुओं के स्वभाव जनित एवं सामान्य लक्षणों से युत होने पर गर्भ की वृद्धि होती है। सब ऋतुओं में पूर्वभाद्रपदा, उत्तर भाद्रपदा, उत्तराषाढा, पूर्वाषाढ़ा एवं रोहिनी इन पाँच नक्षत्रों में बढा हुआ गर्भ प्रसव काल में अधिक वृष्टि करता है।[१] इसी प्रकार शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती एवं मघा नक्षत्र में उत्पन्न गर्भ बहुत दिन तक पुष्ट रहता है।[४२] चन्द्रमा और सूर्य के सौम्य ग्रहों (चन्द्र, शुक्र, बुध, गुरू) से युक्त होने पर गर्भ रहे तो वर्षा अच्छी होती है। यदि क्रूरग्रहों (शनि, मंगल, राहु, केतु, वक्री बुध) से युक्त होने पर गर्भ रहे तो वज्रपात, ओले, मत्स्य आदि के सहित वृष्टि होती है।[३] रवि, भौम, बुध आदि ग्रह गण स्निग्ध गति के हो, पुष्ट हों तथा तारों का प्रकाश खूब चमकीला व स्निग्ध हो और ग्रहण से युक्त न हो, ग्रहों की गति सूर्य के दक्षिण तरफ से हो तो ये भी गर्भ के पुष्ट करने वाले लक्षण होते हैं। इसी तरह यदि पशु–पक्षी भी स्वभाव से ही बिना घबराये हुए की तरह सुन्दर आवाज करते हों और प्रसन्न दिखाई दे, तो गर्भ पुष्ट हुआ समझना चाहिए।[४]

गर्भ सम्भव लक्षण[५]–

मेघ गर्भधारण के समय मध्यम व कोमल गति की हवा, शरीर को प्रसन्नता देने वाली हवा उत्तरी ईशान या पूर्वी हवा चलती है। मेघ गर्भ धारण के समय सूर्य व चन्द्र में चमक अधिक होती है। और चन्द्रमाँ या सूर्य के चारों ओर गोलाकार बादलों का वलय (परिवेश) बनता हैं। जब आकाश में स्थूल व स्निग्ध मेघ छाये हुए हों और आकाश का रंग काक के अण्डे व मोर के पंख के समान हो तो मेघों का गर्भधारण समझना चाहिये। मार्गशीर्ष को जिस दिन चन्द्र ज्येष्ठा या मूल नक्षत्र में होता है उस दिन मेघ गर्भ धारण करते हैं। गर्भ धारण के समय बादल विशाल व घने होते हैं, एवं बादलों का आकार

१. बृ. सं. गर्भलक्षणा. २८
२. बृ. सं. गर्भलक्षण. २९
३. कादम्विनी गर्भाध्याय ३७
४. तत्रैव ४७
५. वृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्याय, भद्रवाहुसंहिता मेधाध्याय

गर्भधारण के समय सूई के समान नुकीले या खुरपे, उस्तरे या फावड़े के समान होते है।

गर्भधारण के समय बादलों का रंग कौवों के अण्डों के समान अत्यधिक काला होता है आकाश में चन्द्रमा व तारे भी खुब चमकते हैं। सन्ध्या समय में इन्द्रधनुष दिखाई देता है तथा बादल मधुर गर्जना करते हैं। बिजली कड़कती है पर सूर्य अवश्य दिखाई पड़ता है ऐसा समय मेघ का गर्भधारण वाला होता है। गर्भधारण समय में पक्षी व जंगली पशु प्राय: उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा की और मुँह करके खड़े होते हैं या भागते दिखाई पड़ते हैं लेकिन सूर्य मण्डल की ओर नहीं देखते हैं। उस समय पशु पक्षियों की आवाज मधुर होती है।

मेघ गर्भ धारण के समय ग्रहों के बिम्ब बड़े आकार वाले, नक्षत्रों के उत्तर मार्ग से गमन करने वाले होते हैं। ग्रहों की किरणें कोमल, उत्पातरहित होती हैं। पेड़ पौधों में अंकुरण होता है। मनुष्य व पशु प्रसन्नता अनुभव करते हैं। इस प्रकार के लक्षणों को मार्गशीर्ष शुक्ल से वैशाख के अन्त तक देखना चाहिये। उपरोक्त सभी लक्षण मेघगर्भ की पुष्टि का संकेत करते हैं। गर्भकाल में बादल तो दिखे, सूर्य की चमकीली धूप हो, मानसुनी हवा चले तो प्रसव काल में अर्थात् वर्षाकाल में बहुत तीव्र वर्षा होती है। मार्गशीर्ष मास में गर्भ लक्षण हो तो १९५ दिन व्यतीत होने के बाद ८ दिनों तक लगातार वर्षा होती है। पौष में मेघ के गर्भधारण करने के १९५ दिनों बाद छ: दिनों तक वर्षा होती है तथा माघ में गर्भधारण हो तो प्रसव काल में १६ दिनों तक लगातार वर्षा होती है। फाल्गुन में २४ दिनों तक व चैत्र में २० दिनों तक तथा वैशाख में ३ दिनों तक वर्षा होती है।

गर्भ धारण के समय हवा चलना, मामूली पानी गिरना बिजली कड़कना, बादलों की गड़गड़ाहट व बादलों का खूब छा जाना ये पाँच लक्षण गर्भ पुष्टि की पहचान है यदि इन पाँच लक्षणों से युक्त मेघ गर्भधारण करे तो आगामी वर्षा काल में सौ योजन तक चारों ओर वर्षा होती है। यदि उपरोक्त पाँच लक्षणों में से एक–एक लक्षण कम होते हुए गर्भधारण हो तो आगामी

वर्षा काल में उतनी–उतनी वर्षा कम होती जायेगी। उक्त चारों निमितों में ५० योजन तक चारों ओर वर्षा होती है एवं तीन निमितों में २५ योजन तक चारों ओर वर्षा तथा दो निमितों में १२१/२ योजन तक और १ निमित में ५ योजन तक वर्षा होती है।

यदि उस गर्भ नक्षत्र में सूर्य या चन्द्रमा स्थित हो तथा उन्हें बुध गुरु शुक्र में से कोई एक देखता हो या योग करे तो ऐसा गर्भधारक मेघ प्रसव के समय खुब वर्षा करता है। यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युक्त हो तो उपल, वज्र और मछली से युत वृष्टि होती है। ग्रहों के उदयास्त के समय, विशेषतया बुध के उदयास्त के समय, ग्रहयुद्ध समागम, अयन परिवर्तन के समय, सूर्य वर्षा नक्षत्र में प्रवेश करें तो वर्षा होने की सम्भावना होती है।

गर्भनाश लक्षण–

यदि गर्भकाल में उल्कापात, विद्युत, धूलि की वृष्टि, दिशाओं में जलन(दिग्दाह), भूकम्प, तामसकीलकादि केतुओं का दर्शन, ग्रहयुद्ध, निर्घाटत (शब्द), रूधिरादि विकारयुत वृष्टि, परिध, इन्द्रधनुष, राहु, चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण का दर्शन हो तो ये लक्षण गर्भ के नाशक होते है।[१] ऋतुओं के स्वभाव के विपरित असामान्य लक्षण दिखाई दे तो गर्भ की हानि होती है।[२] शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति एवं मघा इन नक्षत्रों में बढ़े हुए मेघगर्भ जितने दिन त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष एवं भौम) से हत हो उतने दिन तक वर्षा नहीं होती है।[३]

यदि गर्भकालिक नक्षत्र पापग्रह से युक्त हो तो उपल, वज्र और मछली से युक्त वृष्टि होती है, यदि गर्भकालिक नक्षत्र में चन्द्र या रवि स्थित होकर शुभग्रह से युक्त हों या दृष्ट हों तो गर्भ अत्यधिक वर्षाप्रदायक होता है।[४]

---

१. वृ. सं. गर्भलक्षणा. २५–२६

२. तत्रैव २७

३. तत्रैव २९

४. तत्रैव ३३

यदि गर्भ के समय में निमित्त (प्राय: ग्रहों के उदयास्तकाल में, ग्रहसमागम में, राशिसंक्रमण के समय, पक्ष क्षय होने पर, अमान्त में, आर्द्रा में सूर्य के प्रवेशकाल में वर्षा होना निमित्त वर्षा है) से रहित अतिवृष्टि हो तो गर्भ का नाश होता है तथा पच्चीस पल या उससे अधिक वृष्टि हो तो गर्भस्राव हो जाता है।[१] पुष्ट गर्भ ग्रहोपघात आदि कारणों से जलप्रद न हो तो आत्मीय गर्भ (द्वितीय गर्भ ग्रहण) काल में उपलमिश्रित वर्षा करता है।[२]

गर्भधारण–

आचार्य वराहमिहिर के अनुसार ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी से चार दिन तक गर्भधारण के दिन होते हैं। इन दिनों में सुखस्पर्श, शुभ दिशा (उत्तर, पूर्व या ईशान) से उत्पन्न वायु, निर्मल मेघयुक्त आकाश आदि लक्षण शुभ होते हैं।[३] यदि ज्येष्ठ शुक्लपक्ष में स्वाती, विशाखा, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रों में वृष्टि होती है तो क्रम से श्रावण, भाद्रपद, आश्विन एवं कार्तिक मासों में अवृष्टि होती है।[४] यदि इन चारों गर्भधारण के दिनों में आकाश के लक्षण समान हो तो शुभ और असमान हों तो क्रमानुसार भयप्रदायक होते है।[५]

वशिष्ठमुनि के मतानुसार यदि गर्भधारण के दिन विद्युत्, जलकण, धूलि से युत वायु, मेघाछन्न रविचन्द्र और उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा विद्युत् युत हों तो सब धान्यों की वृद्धि होती है। धुलिवृष्टि, जल, बालकों की सून्दर चेष्टायें, पक्षीयों के मधुर शब्द, धुलि या जल में पक्षियों की क्रीड़ा हो तथा स्निग्ध, सघन और प्रदक्षिण क्रम से (पूर्व से दक्षिण, दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर एवं उत्तर से पूर्व में) गमन करने वाला मेघ यदि गर्भधारण के दिन में

---

१. वृ. सं. गर्भलक्षणा. ३४
२. वृ. सं. गर्भलक्षणा ३५
३. बृ. सं., गर्भधारणा. १
४. बृ. सं. गर्भधारणा० २
५. तत्रैव ३

हो तो शुभ एवं सभी धान्यों की वृद्धि करने वाला होता है।[1]

मेघगर्भधारण विषय में 'डाक' नामक उपनाम से प्रसिद्ध किसी आचार्य की मैथीली भाषा में निम्न उक्ति दर्शनीय है[2]—

पूसक अन्हरिया जतदिन मेघ, साओन सुदि ततदिन जल देह।
माघसूदि जतदिन में जान, साओन वदि तत दिन वर्षा मान।।
माघवदि में मेघ देखाय, भादव सुदि तत वर्षा आय।
फाल्गुन सुदि जे बादर देख, भादव वदि मे डाकक लेख।।
फाल्गुन वदि मे मेघ देखाय, आसिन सुदि तत वर्षा जान।
चैत सुदि जे मेघ लाग, आसिन वदि कातिक सुदि मे भाग।।
जेठ सुदि अष्टमी से देख, चारिदिन मन्द सायुक लेख।
गगन सुन्दर घन देखल जाय, मेघ गर्भ कहहु डाक बुझाय।।

उपर्युक्त उक्ति आचाार्य वराहमिहिर के कथन से तुल्यता रखती है। यदि यह कहा जाय कि सामान्य ग्रामीण कृषक वर्ग को समझाने हेतु उनकी भाषा में संस्कृत का रूपान्तर किया गया है, तो गलत नहीं होगा। अस्तु इससे ज्ञात होता है कि गाँवों में आज भी शास्त्रीय पद्धति से वर्षानुमान की प्रविधि प्रचलित है।

पौषमास में मूलनक्षत्र से प्रारम्भ कर भरणीनक्षत्र तक चन्द्रचार से यदि गर्भलक्षणानुसार मेघगर्भधारण होता है तो वह मेघ आर्द्रा से विशाखा तक के सूर्य में बरसता रहता है।[3] क्योंकि पौषमास में मूलनक्षत्र में चन्द्र प्राय: अमावस्या को आता है और आर्द्रानक्षत्र में सूर्य प्राय: आषाढ़ मास में तथा विशाखा में प्राय: कार्तिक मास में जाता है। अत: कहा जा सकता है कि पौष शुक्ल प्रतिपदा से दशमी पर्यन्त यदि अच्छे प्रकार से मेघगर्भधारण हो तो

---

१. वृ. सं. गर्भलक्षणा. ४–८
२. वायुवृष्टिविज्ञानम्—संगोष्ण पत्रिका का. हि. वि. वि. पृ. १८
३. कादम्बिनी द्वादशमासिकाध्याय श्लोक ४१

वर्षाऋतु (श्रावण, भाद्रपद, आश्विन व कार्तिक) में अच्छी वृष्टि होती है परन्तु इस गर्भ का चैत्र में पतन नहीं होना चाहिए।[१]

माघमास में मूलनक्षत्र से भरणीनक्षत्र पर्यन्त (चन्द्रचारवश) गर्भ सम्भव लक्षण, जैसे बिजली गर्जना, पूर्व या उत्तर की वायु प्रवाह का होना और बादलों से आकाश का आच्छन्दित होना दिखाई दे तो सूर्य के आर्द्रा से विशाखा तक रहने पर अच्छी वर्षा होती है।[२]

चैत्रमास में रेवती नक्षत्र पर सूर्य के रहते हुए १३ दिवसों तक जहाँ–जहाँ पवन, बादल एवं बिजली की चमक जैसे गर्भसम्भव लक्षण हों तो वहाँ पर गर्भ अच्छा समझना चाहिए।[३]

वैशाख में गर्जना, बरसना, वायु का चलना, बादलों का होना तथा पचरंगी आकाश का होना, बिजलियों का चमकना श्रेष्ठ गर्भसम्भव लक्षण है।[४] वैशाख शुक्ला दशमी और प्रतिपदा को यदि वर्षा हो तो वर्षाकाल सूख जाता है और यदि वर्षा न हो तो वर्षाऋतु में खूब मेघ बरसते हैं।[५] कई ज्योतिषियों का मत है कि वैशाख शुक्ला प्रतिपदा और पंचमी को बादल न होने से वर्षाऋतु में वर्षा नहीं होती है।[६]

ज्येष्ठ मास में शुक्ल पक्ष की अष्टमी, नवमी, दशमी व एकादशी ये ४ दिन गर्भ धारण दिवस कहलाते हैं। इन दिनों में कोमल, शरीर को सुख देने वाली, शीतल, उत्तर, ईशान या पूर्व की हवा चले तथा आसमान में चिकने बादल छायें रहें तो आगमी वर्षा ऋतु में वर्षा बहुत होती है। ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्ष अष्टमी, नवमी, दशमी व एकादशी तिथियों में यदि बच्चे जल या धूल में खेले, पक्षियों की मधुर आवाजें सुनाई दे, सूर्य व चन्द्रमाँ के चारों ओर

१. कादम्बिनी द्वादशमासिकाध्याय श्लोक ४२
२. तत्रैव ८८
३. तत्रौव १५३
४. तत्रैव २१६
५. तत्रैव २१७
६. तत्रैव २१८

सुन्दर परिवेश हो तो भी सब फसलों की वृद्धि करने वाली वर्षा होती है। यदि इन दिनों में बादल काले हों तथा घनें हों अर्थात् पूर्व के हों और दक्षिण की ओर बढ़ते दिखें या दक्षिण में हों तो पश्चिम में, उत्तर में हों तो पूर्व की ओर बढते चलें तो उत्तम वर्षा होती है। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा को जब चन्द्रमा पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में हो तो मेघ गर्भ धारण करते है। गर्भाधान के पश्चात् तीन महीनों तक गर्भ की पक्वक्रिया होती है और तीन महीने वर्षा के होते हैं। कार्तिक, पौष, चैत्र, वैशाख, श्रावण, आश्विन मास में सौम अर्थात् शुभ गर्भ होता है और अपने निर्धारित समय में वर्षा करता है। अर्थात् उक्त महीनें में यदि मेघ गर्भ धारण करें तो अच्छी वर्षा होती है। यदि पुष्य, हस्त, अभिजित्, अश्विनी इन नक्षत्रों में गर्भधारण हो तो शुभ है। आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल इन नक्षत्रों में मेघ का गर्भधारण हो तो उत्तम जलवृष्टि होती है। वैशाख में गर्भध ारण करने पर कार्तिक मास में वर्षा होती है इस प्रकार के मेघ हिमागम के साथ मन्द वृष्टि करते है। स्वाती, अनुराधा, श्रवण और शतभिषा इन नक्षत्रों में मेघगर्भ धारण करें तो अधिक वर्षा होती है। पूर्व, उत्तर और ईशान कोण में जो मेघ गर्भ धारण करते हैं वो वर्षा अच्छी करते है। वायव्य कोण और पश्चिम में जो मेघ गर्भ धारण करते हैं वे मध्यम वर्षा करते हैं। मार्गशीर्ष का गर्भ ज्येष्ठा या मूल में पौष का गर्भ पूर्वाषाढ़ा में, माघ में उत्पन्न गर्भ श्रावण में, फाल्गुन में उत्पन्न गर्भ धनिष्ठा नक्षत्र में, चैत्र में उत्पन्न गर्भ अश्विनी नक्षत्र में जलवृष्टि करते हैं। भाद्रपद प्रतिपदा को प्रातः काल पश्चिम की हवा चले और यह हवा पूरे दिन चलती रहे तो खूब वर्षा होती है। उपर्युक्त पश्चिमीय हवा आश्विन के अतिरिक्त कार्तिक में भी वर्षा करती है। भाद्रपद कृष्णा पंचमी शनिवार या मंगलवार को हो तथा इस दिन पूरब की हवा चले तो साधारण वर्षा होती है।[१]

प्रसव काल–

आचार्य वराहमिहिर के अनुसार जिस नक्षत्र पर चन्द्र के रहते हुए गर्भ

---

१. वृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्याय, भद्रवाहुसंहिता मेघाध्याय

की स्थिति होती है। उससे १९५ वें दिन में उसका प्रसव होता है।[१] पं. मधुसूदन ओझा जी के मत से भी जिस नक्षत्र पर चन्द्रमा के रहते हुए गर्भस्थिति हुई हो, उसी नक्षत्र पर आठवीं बार चन्द्रमा के आने से अर्थात् १९५ वें दिन में, उस दिन की गर्भस्थिति का जल बरस जाता है।[२] सूर्य दक्षिण–गोल में ही हो, किन्तु उत्तरायण हो चुका हो ऐसे समय में जिस नक्षत्र पर वायु, बादल आदि प्रकार से गर्भस्थिति हो जाय तो उसी नक्षत्र पर चन्द्र के आठवीं बार आने पर वर्षा होती है।[३] यदि गर्भ शुक्ल पक्ष में हो तो कृष्ण पक्ष में, कृष्ण–पक्ष में हो तो शुक्ल पक्ष में, दिन में हो तो रात्रि में, रात्रि में तो तो दिन में, पूर्व सन्ध्या में हो तो पश्चिम सन्ध्या में और पश्चिम सन्ध्या में हो तो पूर्व सन्ध्या में प्रसव होता है।[४] जिस पक्ष में गर्भस्थिति हो, उससे चौदहवें पक्ष में अर्थात् गर्भस्थिति से साढे छ:महिने के अन्त के दिन में वर्षा होती है।[५] मार्गशीर्ष शुक्ल और पौष शुक्ल में स्थित गर्भ मन्द वृष्टि देने वाला होता है, गर्भस्थित्यनुसार प्रसव काल निम्न प्रकार से जानना चाहिए–[६]

गर्भ मास व पक्ष (अमान्त)	प्रसव काल (वृष्टि) (अमान्त)
पौष कृष्ण	श्रावण शुक्ल
माघ शुक्ल	श्रावण कृष्ण
माघ कृष्ण	भाद्रपद शुक्ल
फाल्गुन शुक्ल	भाद्रपद कृष्ण
फाल्गुन कृष्ण	आश्विन शुक्ल
चैत्र शुक्ल	आश्विन कृष्ण
चैत्र कृष्ण	कार्तिक शुक्ल

१. बृ. सं. गर्भलक्षणा: श्लो० ७

२. कादम्बिनी गर्भाध्याय श्लो० २८

३. तत्रैव २४

४. बृ. सं. गर्भलक्षणा० श्लो० ८

५. कादम्बिनी गर्भध्याय श्लो. ३०–३१

६. बृ. सं. गर्भलक्षणा० ९–१२

यदि गर्भ काल में मेघ पूर्व दिशा में हो तो प्रसव काल में पश्चिम दिशा में पश्चिम दिशा में हो तो पूर्व दिशा में, दक्षिण दिशा में हो तो उत्तर में, उत्तर दिशा में हो तो दक्षिण दिशा में, आग्नेय कोण में हो तो वायव्य कोण में, वायव्य कोण में हो तो आग्नेय कोण में, ईशान कोण में हो तो नैर्ऋत्य दिशा में, नैर्ऋत्य दिशा में हो तो प्रसव काल में ईशान कोण में मेघ होता है।[१] मार्गशीर्ष मास में आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, स्वाति एवं शतभिषा इन नक्षत्रों में से किसी एक में गर्भ रहे तो प्रसव समय से ८ दिन तक, पौष मास में उपयुक्तनक्षत्रों में से किसी एक में गर्भस्थिति होने पर प्रसव समय से ६ दिन, माघ मास में १६ दिन, फाल्गुन मास में २४ दिन, चैत्र में २० दिन और वैशाख मास में ३ दिन तक वृष्टि होती है।[२] यदि आषाढ़ कृष्ण चतुर्थी के दिन पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में मेघ वृष्टि करे तो उस वर्ष अच्छी वर्षा होती है। यदि वृष्टि नहीं करे तो अवृष्टि होती है।[३]

प्रवर्षण काल

जिस दिन मेघ गर्भधारण करता है उस दिन से लगभग छः मास पन्द्रह दिनों के बाद उसका प्रसवकाल होता है। यदि मार्गशीर्ष मास में गर्भधारण काल होगा तो वृष्टिकाल श्रावणमास होगा अर्थात् गर्भपुष्टि होने में न्यूनतम छः मास पन्द्रह दिन लगेंगे ही। वराहमिहिर के अनुसार गर्भधारण काल से गर्भ पुष्टिकाल चन्द्र नक्षत्र से १९५ दिनों के बाद आता है[४]– शुक्लपक्ष में धारण किया गर्भ छः मास पन्द्रह दिनों के बाद कृष्ण पक्ष में प्रसव (वृष्टि) करता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष में धृतगर्भ शुक्लपक्ष में प्रसवित होता है।[५] गर्भधारण काल से गर्भप्रसवकाल ठीक विपरीत होता है। शुक्लपक्ष के गर्भ का कृष्ण पक्ष में तथा

---

१. बृ. सं. गर्भलक्षण० १३

२. बृ. सं. गर्भलक्षण० ३०

३. बृ. सं. आषाढ़ीलोगाध्याय १४

४. बृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्यायः श्लोकः ७।

५. बृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्यायः भट्टोत्पलीयटीकायाम्।

कृष्ण पक्ष के गर्भ का शुक्ल पक्ष में प्रसव होता है। इसी प्रकार दिन का गर्भ रात्रि में तथा रात्रि का गर्भ दिन में प्रसवित होता है।[१] मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष में प्राप्त गर्भ मेघ अल्प वृष्टि कारक होते हैं। माघशुक्ल पक्ष में गर्भधारण करनेवाले मेघ श्रावण कृष्णपक्ष में वर्षा करते है। माघकृष्ण पक्ष में गर्भधारण करनेवाले मेघ भाद्रपद शुक्ल पक्ष में वर्षा करते हैं–इसी प्रकार क्रमशः फाल्गुन शुक्ल पक्ष का गर्भ भाद्रपदकृष्णपक्ष में, फाल्गुन कृष्ण पक्ष का गर्भ आश्विन शुक्ल पक्ष में, चैत्र शुक्ल पक्ष का गर्भ आश्विन कृष्ण पक्ष में तथा चैत्र कृष्ण पक्ष का गर्भ कार्तिक शुक्ल पक्ष में प्रसवकाल को प्राप्त होता है।[२] इस मत को पराशर भी मानते हैं–**"अथ माघेन श्रावणं फाल्गुनेन भाद्रपदं चैत्रेणाश्वयुजं वैशाखेन तु कार्तिकं शुक्लेन कृष्णं कृष्णेन शुक्लं दिवसेन रात्रि रात्र्या दिवसं गर्भाः प्रवर्षन्ति इति।"**[३]

प्रवर्षण लक्षण–

ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा पर जब पूर्वाषाढ नक्षत्र (चन्द्र नक्षत्र) हो, उस दिन प्रथम वर्षण का निरीक्षण करना चाहिये, पूर्वाषाढ से आगे के सभी नक्षत्रों में वर्षा हो सकती है। अर्थात् पूर्वाषाढ आदि जब नक्षत्रों में वर्षा हो तो, वृष्टि न होने पर अशुभ है,[४] पूर्वाषाढ नक्षत्र से शुरु करके प्रतिदिन आषाढ कृष्ण में वर्षा निरीक्षण प्रारम्भ करें। जिस नक्षत्र में इतनी वर्षा हो कि पृथ्वी की धूलदब जाय अथवा घास की नोंको पर पानी की बूँदें झिलमिलाने लगें, उसी नक्षत्र को प्रथमवर्षा का नक्षत्र समझें।[५]

आचार्य वरामिहिर के मतानुसार प्रवर्षण का लक्षण जानने हेतु ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के बीत जाने पर पूर्वाषाढादि नक्षत्रों में वृष्टि का निरीक्षण करना

१. बृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्यायः श्लोकः ८ भट्टोत्पलीयटीकायाम्।

२. बृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्यायः श्लोकः १०।

३. तत्रैव टीकायाम्

४. बृहत्संहिता प्रवर्षणाध्यायः ९

५. बृहत्संहिता प्रवर्षणाध्यायः ३

चाहिए। यदि वृष्टि हो तो शुभ और अवृष्टि हो तो अशुभ जानना चाहिए।[1] कश्यपादि मुनियों का मत है कि प्रवर्षण काल (ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के अनन्तर पूर्वाषाढ़ादि सत्ताईस नक्षत्र) में किसी एक प्रदेश में भी वृष्टि हो तो वर्षाकाल में सुन्दर वृष्टि होती है। देवलादि का मत है कि यदि प्रवर्षण–काल में कम से कम १० योजन तक वृष्टि हो तो वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होती है। गर्ग, वसिष्ठ और पराशरादि का मत है कि प्रवर्षण काल में १२ योजन तक वृष्टि होने से वर्षाकाल में उत्तम वृष्टि होती है।[2] प्रवर्षण काल में पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्रों में से जिस किसी नक्षत्र में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में उसी नक्षत्र में पुन: वर्षा होती है। यदि प्रवर्षण काल में पूर्वाषाढा आदि सब नक्षत्रों में वृष्टि न हो तो प्रसवकाल में अनावृष्टि होती है।[3] हस्त, पूर्वाषाढा, मृगसिरा, चित्रा, रेवती या धनिष्ठा नक्षत्र में (यदि नक्षत्र निरूपद्रव हो तो) यदि प्रवर्षण काल में वृष्टि हो तो प्रसव काल में सोलह द्रोण वृष्टि होती है। इसी प्रकार निरूपद्रव शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वाति में ४ द्रोण, कृतिका में १० द्रोण, श्रवण, मघा, अनुराधा, भरणी, एवं मूल में १४ द्रोण, पूर्व फाल्गुनी में २५ द्रोण, पुनर्वसु में २० द्रोण, विशाखा व उत्तराषाढ़ा में २० द्रोण, आश्लेषा में १३ द्रोण, उत्तरभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी व रोहिणी में २५ द्रोण, पूर्वभाद्रपद और पुष्य में १५ द्रोण, अश्विनी में १२ द्रोण तथा आर्द्रा में यदि प्रवर्षणकाल में वृष्टि हो तो प्रसवकाल में १५ द्रोण वृष्टि होती है।[4] वृष्टि जल के प्रमाण का मापन एक हाथ तुल्य व्यास वाले और एक हाथ गहरे वर्तुलाकार कुण्ड से करना चाहिए। जलपूर्ण इस कुण्ड में पचास पल (१ आढक) तुल्य जल होता है। चार आढक का एक द्रोण होता है।

---

१. बृ. सं. प्रवर्षणा ०१

२. तत्रैव ४

३. तत्रैव ५.

४. बृ. सं. प्रवर्षणा ०/६–९

वर्षा की मात्रा[१]

ग्रीष्म ऋतु में शुक्लपक्ष प्रतिपदा को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में पश्चिम दिशा से बादल उठकर वर्षा करें तो ६४ आढक वर्षा होती है। उत्तराषाढ़ नक्षत्र में जब वर्षा होगी तब १२ द्रोण में जलवर्षा होती है। घनिष्ठा नक्षत्र में वर्षा होने से ५७ आढक में वर्षा होती है। पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में मेघजल बरसाते हैं और तब ६४ आढक वर्षा होती है। यदि वर्षा ऋतु की प्रथम वर्षा उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में हो तो ९० आढक वर्षा होती है। रेवती नक्षत्र में वर्षा हो तो ६४ आढक, अश्विनी हो तो ४९ आढक, भरणी में हो तो पूरे वर्ष में मात्र १९ आढक, कृत्तिका में हो तो ५१ आढक, रोहणी में हो तो ९१ आढक, मृगशिरा में हो तो ९१ आढक, आर्द्रा में हो तो ३२ आढक, पुनर्वसु हो तो ९१ आढक, पुष्प में हो तो ४२ आढक, अश्लेषा में हो तो ६४ आढक, मघा में हो तो १६ द्रोण, पूर्वाफाल्गुनी में हो तो १६ द्रोण, उत्तराफाल्गुनी में हो तो ६७ आढक, हस्त नक्षत्र में हो तो ८५ आढक, चित्रा में हो तो ३२ आढक, स्वाती में हो तो ३२ आढक, विशाखा में हो तो १६ द्रोण, अनुराधा में हो तो १६ द्रोण, ज्येष्ठा में हो तो १८ आढक, मूल नक्षत्र में हो तो एक खारी प्रमाण से वर्षा होती है। भद्रबाहु के अनुसार वर्षा के योग निम्नवत् कहे गये हैं–

ध्यातव्य है कि सूर्य, शनि, केतु, मंगल या त्रिविध उत्पातों (दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम) से यदि नक्षत्र पीड़ित हो तो अमंगल एवं वृष्टि का अभाव होता है। यदि उपद्रव रहित बुध, गुरु या शुक्र से युत नक्षत्र हो तो कल्याणकारक वृष्टि होती है।[२] जिन नक्षत्रों में जैसी वर्षा हो फिर उन्हीं नक्षत्रों पर सूर्य के आने से वैसी ही वर्षा होती है। यदि पूर्वाषाढ़ा एवं उत्तराषाढ़ा में वर्षा न हो तो अनावृष्टि समझनी चाहिए।[३] कितनी दूर पर वर्षा या बादल हैं, यह ज्ञान करने हेतु निम्न रीति है। साधारण रीति से गर्जना एक विपल में ३०४

---

१. तत्रैव २

२. भद्रबाहुसंहिता १०/३–५२

३. तत्रैव १०

हाथ दूर तक जाती है। बिजली चमकने पर जितने विपल के बाद गर्जना सुनाई देवें तो एक विपल के हिसाब से उतने ही हाथ की दूरी पर वर्षा समझनी चाहिए।[१]

विद्युत् वशाद् वृष्टियोग[२]

रक्त–अरक्त, हरित–अहरित और नील–अनील बादलों में यदि स्निग्ध बिजली चमकती है तो जल बरसता है। श्वेत रंग की बिजली ऊपर गिरे तो वृष्टि होती है। श्वेत रंग की बिजली यदि वृक्ष के ऊपर या गृहों के बीच में गिरे तो तेज हवा के साथ वृष्टि होती है। यदि श्वेत रंग की बिजली चन्द्रमण्डल से निकलकर श्वेत मेघ युक्त सूर्यमण्डल में प्रवृष्ट हो तो अधिक वर्षा होने की सूचना देती है।[३] यदि बिजली, बिजली से ताड़ित होकर एक दूसरे में संयाती (मिलती) हुई दिखे तो उचित रूप में वर्षा होती है। नील, ताम्र, गौर और श्वेत बादलों से बिजली का संचार हो और वह भारी या थोड़ी गर्जना युक्त हो तो सुवृष्टि होती है। यदि बिजली आकाश के मध्यमार्ग से गमन करे तो मध्यम वर्षा, यदि जघन्य मार्ग से गमन करे तो अत्यन्त वर्षा एवं उत्तम मार्ग से उत्तम वर्षा की सूचना मिलती है। जब रात्री में घने बादल छाये हुए हों एवं उस समय पूर्व दिशा में श्वेत रंग या पीत रंग की बिजली कड़के तो निश्चय ही वर्षा होती है। यह वर्षा का संकेत दूसरे दिन के लिए है। यदि स्निग्ध बिजली मध्यरात्री में पश्चिम दिशा की तरफ कड़के तो दूसरे दिन तेज धूप के पश्चात् वर्षा होती है। पश्चिम दिशा से निकल विभिन्न वर्ण की बिजली चारों ओर घूमती हुई चमके तो अगले तीन दिनों के वर्षा होने का संकेत देती है। उत्तर दिशा में यदि बिजली चमके तो नियमित वर्षा होती है। उत्तर दिशा की तरफ जोर–जोर से बिजली कड़के तथा आकाश मेघों से चारों तरफ घिरा हो तो प्रातः काल घनघोर वर्षा होती है।

---

१. कादम्बिनी द्वितीयाध्याय /३२२

२. तत्रैव ३२३/३२४

३. भद्रबाहुसंहिता ५/१४–४०, ६/३–७

हरे व पीले रंग के बादल आकाश में हो तथा उत्तर दिशा में रह—रहकर अनेक बार बिजली चमकती हो तो विशेषरूप से वर्षा योग बनता है। वायव्य कोण में कड़ाके के साथ यदि बिजली चमके तो अल्प वर्षा होती है। ईशान कोण में बिजली तिरछी चमकती हुई यदि पूर्व दिशा की ओर गमन करे तो वर्षा होती है। दक्षिण दिशा में यदि बिजली की चकाचौंध के मध्य श्वेत रंग की बिजली चमके तो जानें कि ७ दिन लगातार वर्षा होगी।

यदि दक्षिण दिशा में गोलारूप में बिजली चमके तो ग्यारह दिनों तक लगातार अखण्ड वर्षा होती है। दक्षिण दिशा से पूर्वोत्तर की ओर गमन करते हुए यदि बिजली चमके तो लगातार वर्षा होती है। यदि दक्षिण दिशा से पूर्वोत्तर गमन करती हुई बिजली चमके व उत्तर में केवल प्रकाश मात्र जाये तो तीन दिन वर्षा होती है। माघ—फाल्गुन में यदि नीले व पीले रंग की बिजली चमके व आकाश में श्वेत रंग दिखाई पड़े तो ओलों के साथ वर्षा होती है। यदि चन्द्रमाँ के बिम्ब के चारों ओर परिवेष होने पर उस परिवेष के निकट ही बिजली चमकते हुए प्रकाशयान दिखाई पड़े तो आगामी आषाढ़ में अच्छी वर्षा होती है। यदि होली की रात्री में दक्षिण दिशा में बिजली चमके तो आगामी वर्ष में साधारण स्तर पर वर्षा होगी। श्रावण कृष्ण पक्ष चतुर्दशी को दिन में बिजली चमके तो उत्तम वर्षा तथा इसी दिन "रात्री" को बिजली चमके तो साधारण वर्षा होती है। भाद्रपद कृष्ण सप्तमी व एकादशी को गर्जना के साथ यदि स्निग्ध बिजली चमके तो समायानुकूल वर्षा होती है। उत्तर व पूर्व दिशा के बादल हमेशा उत्तम वर्षा करते हैं। यदि आकाश में बादल श्वेत, कृष्ण पीले व ताम्र वर्ण के हों तो अच्छी वर्षा होती है। यदि आकाशस्थ बादल शुक्ल वर्ण, विधुत् समान विचित्र हों व कबूतरों के समान रंगवाले हों तो तत्काल वर्षा होती है। यदि शुभ चिह्नों, शकुनों से युक्त बादल हो तो वर्षा होती है।

मेघाच्छादित आकाश से वृष्टि ज्ञान[१]

ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र हो और इस दिन उत्तर

१. भद्रबाहुसंहिता ६,७ अध्याय

दिशा की ओर से मेघ एकत्र होकर आकाश को आच्छादित करें तो आषाढ़ से आश्विन तक अच्छी वर्षा होती है। ज्येष्ठ शुक्ल पंचमी को गुरुवार, शुक्रवार या मंगलवार हो पूर्व या दक्षिण दिशा की ओर से बादलों का उमड़ना प्रारम्भ हो तो निश्चित रूप से वर्षा होती है। ज्येष्ठ शुक्ला षष्ठी को मघा नक्षत्र व बुधवार का योग हो तथा पूर्व या उत्तर से मेघ उठ रहे हों तो श्रावण व भाद्रपद में अच्छी वर्षा होती है। यदि ज्येष्ठ शुक्ल षष्ठी को रविवार हो व इस दिन पुष्य नक्षत्र भी हो इसी दिन आकाश मेघों से आच्छादित हो तो आगामी वर्ष में वृष्टि अच्छी होती है। ज्येष्ठ शुक्ल सप्तमी शनिवार को अश्लेषा नक्षत्र हो तथा इस दिन आकाश में श्वेत रंग के बादल छाये हुए हों तो वर्षा उत्तम होती है। ज्येष्ठ शुक्ल नवमी शनिवार को यदि अश्लेषा, विशाखा अथवा अनुराधा हो तथा आकाश में बादल छाये हुए हो तों साधारण वर्षा की सूचना प्राप्त होती है। ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशी को बुधवार हो व इस दिन पश्चिम में सौम्य व सुन्दर बादल छाये हुए हों तो आगामी वर्ष में वर्षा अच्छी होती है। ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी के दिन गुरुवार हो व पूर्व दिशा की ओर से बादल उमड़ते हों तो उत्तम वर्षा की सूचना देते हैं। ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष चतुर्दशी की रात्रि को यदि वर्षा हो और आकाश मण्डलाकार रूप में मेघाच्छन हो तो आगामी वर्ष में अच्छी वर्षा की सूचना देते हैं। आषाढ कृष्ण द्वितीया को पर्वत या समुद्र के आकार के बादल उमड़ते हुए आकाश में एकत्रित हों तो आगामी श्रावण व भाद्रपद में वेर्षा अच्छी होती है। आषाढ कृष्ण द्वितीया को यदि प्रातः काल आकाश निरभ्र (स्वच्छ) हो और सन्ध्या समय में रंगविरगें वर्ण के बादल पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए देखे जाते हों तो सात दिनों के उपरान्त वर्षा होती है एवं श्रावण मास में खुब वर्षा होने की भी सूचना देते हैं। आषाढ़ कृष्ण तृतीया को प्रातः काल में ही यदि आकाश मेघों से अच्छादित हो जाय तो दो महिने में अच्छी वर्षा होती है। आषाढ़ कृष्ण तृतीय को यदि मंगलवार हो व प्रातःकाल में आकाश में मेघ छा जायें तो विशेष वर्षा की सूचना मिलती है।

यदि उक्त तिथिवार में आकाश में पूरे दिन मेघ स्थित रहें तो भाद्रपद में अवश्य वर्षा होती है। यदि सन्ध्या के समय उत्तर दिशा में मेघ आते हुए

दिखलाई पड़ते हों तो खूब वर्षा एवं पूर्व दिशा से मेघ आते हुए दिखलाई पड़े तो आठ दिनों तक घनघोर वर्षा होती है।

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष प्रतिपदा की प्रात: कालीन संध्या यदि श्वेत वर्ण की हो तो आषाढ़ में श्रेष्ठ वर्षा होती है। ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष प्रतिपदा की प्रात: कालीन संध्या यदि पीत वर्ण की हो तों आषाढ़ में उचित समय में वर्षा होती है। ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष प्रतिपदा की प्रात: कालीन संध्या यदि विचित्र वर्ण की हो तो आगामी वर्षा ऋतु में खूब अच्छी वर्षा होती है। ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष प्रतिपदा की सायंकालीन सन्ध्या श्वेत या लाल रंग की हो तो सात दिनों के उपरान्त वर्षा होती है। ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष प्रतिपदा की सायंकालीन सन्ध्या को यदि मिश्रित वर्ण हो तो वर्षा ऋतु में अच्छी वर्षा होती है। ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष द्वितीया को प्रात:कालीन सन्ध्या यदि श्वेत वर्ण की हो तो वर्षा ऋतु में वर्षा अच्छी होती है। ज्येष्ठ कृष्ण षष्ठी को अश्लेषा नक्षत्र हो और सायंकालीन सन्ध्या रक्त वर्ण व भास्वर रूप युक्त हों तो आगामी वर्ष में अच्छी वर्षा की सूचना मिलती है। ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी को भी प्रात: सन्ध्या निरभ्र हो और निर्मल हो तो आषाढ कृष्ण पक्ष में वर्षा अच्छी होती है। यदि काजल के समान काले व गहरे बादल पश्चिम दिशा में दिखलाई पड़े व ये मेघ चिकने तथा मन्द गति वाले हों तो भारी जल वृष्टि होती है। पीले पुष्प सदृश स्निग्ध मेघ पश्चिम में स्थित हो तो तत्काल वृष्टि कराते हैं।

लालवर्ण व स्निग्ध तथा मन्द गति वाले मेघ पश्चिम में दिखाई पड़े तो अच्छी वृष्टि होती है। श्वेत वर्ण के स्निग्ध और मन्दगति वाले मेघ पश्चिम में दिखलाई पड़े तो अच्छी वर्षा करते हैं। यदि शुभ–मेघ जलाशय रूप में दिखलाई पड़े तो अच्छी वर्षा होती है। यदि स्निग्ध सौम्य मृदुल शब्द वाले मन्दगति वाले और उत्तम मुहूर्त्त वाले मेघ दिखलाई पड़े तो सर्वत्र वर्षा होती है। सुगन्ध–केशर और कस्तूरी के समान गन्ध वाले, मनोहर गर्जन करने वाले, स्वादुरस वाले व मीठे जल वाले मेघ समुचित जल वर्षा करते है। यदि संध्याकाल में आकाश स्निग्ध वर्ण का हो तो ऐसी सन्ध्या वर्षा देने वाली होती

है। शुभनक्षत्रों वाली सन्ध्या वर्षा कारक होती है। प्रतिसूर्य का आगमन हो वहाँ पर इन्द्रधनुष रजोयुक्त सन्ध्या में दिखलाई पड़े तो तत्काल वर्षा होती है। सन्ध्या समय में सूर्य उदय या अस्त के समय यदि एकरश्मि वाला दिखलाई देता है तो तत्काल वर्षा होती हैं। यदि सन्ध्या समय में सूर्य तीन या पाँच मण्डल से घिरा हुआ दिखाई पड़े तो अत्यधिक वर्षा होती है। सभी दिशाओं में यदि झलझलाहट युक्त प्रकाशमान सन्ध्या दिखाई पड़े तो भारी वर्षा होती है।

यदि सन्ध्या समय में दण्ड तडित् मत्स्य, मण्डल, परिवेष, इन्द्रधनुष, ऐरावत और सूर्य की किरणें स्निग्ध हों तो वर्षा होती है। यदि सूर्यरश्मियाँ श्वेतरंग की होकर चिकनी सरल तथा अखण्डित हों तो वर्षा होती है। यदि आकाश में किनारेदार नीले मेघ सूर्य को ढकने ही वाले हों एवं ये नीले मेघ नीचे की ओर मुख किये हुए हों तो अत्यधिक वर्षा होती है। यदि शुक्ल वर्ण और शुक्ल किनारे वाले मेघ सन्ध्या समय में सूर्य को आच्छादित करें तो वर्षा होने का योग समझना चाहिये।

आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार मेघ का आधार

हवा की अथाह राशि जब बड़े पैमाने पर किसी कारण से ऊपर उठती है, तो वायु का तापमान हवा के उठने के साथ घटता जाता है और वायु ठंडी होती जाती है। इससे इसमें उपस्थित जलवाष्प किसी ऊँचाई पर पहुँच कर संघनित होकर जलकणों में बदल जाता है जो भूतल से काफी ऊँचाई लगभग ५-६ किलोमीटर पर वायु में लटके रहते हैं। इन्हें ही मेघ कहा जाता है। वास्तव में मेघ मध्यमोक्षमण्डल के आसपास हवा में मौजूद जल की छोटी-छोटी बूँदों अथवा हिमकणों का अपार समूह है। इन महीन जलकणों को ही ऊँचाई पर स्थित होने के कारण मेघ कहते हैं[१] रमेश चन्द्र बनर्जी एवं दयाशंकर उपाध्याय के मतानुसार[२] वायुमण्डल में जलकणों या हिमकणों का

१. जलवायु विज्ञान – एल.एल. गुप्ता, पृ. २२०

२. मौसम विज्ञान – आर.सी. बनर्जी एवं डी.एस. उपाध्याय, पृ० ७९

चाक्षुष दृश्यमान रूप ही बादल कहलाता है। मेघ कण जलवाष्पों के संघनन द्वारा उत्पन्न होते हैं।

वायु का कर्षण प्रतिरोध इन मेघ कणों को नीचे गिरने से रोकता है। ये कंण हवा में तैरते रहते हैं तथा विभिन्न प्रक्रमों के अन्तर्गत विकसित होते रहते हैं। कोई मेघकण जब पर्याप्त आकार ग्रहण कर लेता है, तो अपने भार के कारण वर्षा की बूँदों के रूप में गिरने को बाध्य हो जाता है तो यह जिस वेग से नीचे की ओर गिरता है वह उसका अन्तिम वेग कहलाता है। इस अवस्था में त्वरण शून्य हो जाता है। अन्तिम वेग का मान मेघ कणों के आकार के साथ बदलता जाता है। बड़े कण, छोटे कणों की अपेक्षा तीव्र गति से गिरते हैं।[१]

रुद्धोष्म प्रक्रिया के अन्तर्गत ऊपर उठती हुई हवा फैलकर अपने आयतन में वृद्धि करती जाती है, इससे प्रति इकाई ऊष्मा घटती है। अत: इसके तापमान में भी ह्रास होता है। हवा का इस प्रकार का ताप परिवर्तन जिसका सम्बन्ध हवा के ऊपर उठने और फैलने से है, रुद्धोष्म ताप परिवर्तन कहलाता है। मेघ मुख्यत: हवा के रुद्धोष्म ताप परिवर्तन द्वारा उसके तापमान के ओसांक से नीचे गिरने से बनता है। ठंडा होने की प्रक्रिया हल्की, गर्म एवं आर्द्र हवा के ऊपर उठने की परिस्थिति में सबसे अधिक प्रभावी होती है। ऊपर जाकर हवा फैलती है, उसके आयतन में वृद्धि होती है जिससे उसका तापमान गिरता जाता है, अत: गिरता हुआ तापमान ओसांक तक पंहुँच जाता है। इसके पश्चात् हवा के और ऊपर उठने और तापमान में और अधिक गिरावट आने से हवा में संघनन प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है जिससे मेघों का निर्माण होता है।[२]

वस्तुत: मेघों के निर्माण के लिए किसी न किसी क्रियाविधि से हवा की अपार राशि का ऊपर उठना अति आवश्यक है। हवा की अपार मात्रा

१. मौसम विज्ञान – आर.सी. बनर्जी एवं डी.एस. उपाध्याय, पृ० ७९
२. जलवायु विज्ञान–एस.एल.गुप्ता पृ. २२०–२२१

निम्नलिखित विधियों से ऊपर उठती है–

१. किसी पर्वत से टकराकर हवा का ऊपर उठना।

२. संवहन धाराओं द्वारा हवा का ऊपर उठना।

३. हवाओं का किसी निम्नदाब क्षेत्र पर अभिसरण।

४. उष्ण हवा का चक्रवातों के केन्द्र तथा वाताग्रों पर ठंडी हवा के ऊपर उठना।

मेघों का वर्गीकरण–

सर्वप्रथम १८०३ ई० में शीतलन तथा संघनन प्रक्रमों के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से ल्यूक होवर्ड ने मेघों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया।[१] उसने मेघों की आकृति और रंग रुप को भी अपने वर्गीकरण में उचित स्थान प्रदान किया। इसके पश्चात् अनेक अन्तर्राष्ट्रीय समितियों ने मेघों के नए–नए नाम रखकर अनेक वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं।

वास्तव में मेघों का निर्माण, उनमें वृद्धि अथवा उनका ह्रास वायुमण्डल में सम्पन्न होने वाली एक निरन्तर प्रक्रिया है। अपनी निजी विशेषता के आधार पर अनेक प्रकार के मेघों का आकाश में उपस्थित होना सम्भव है। अत: उनके वर्गीकरण के लिए कुछ प्रमुख आधार निम्न हैं।[२]

१. भूमितल से मेघ के आधार तथा शीर्ष की ऊँचाई।

२. मेघ का ऊर्ध्वाधर विस्तार

३. मेघकणों का रूप अर्थात् वाष्पकण, जलकण व हिमकण से बने मेघ।

---

१. जलवायु विज्ञान एस.एल. गुप्ता, पृष्ठ २२२

२. जलवायु विज्ञान एस.एल. गुप्ता पृ० २२३

भूमितल से मेघों के आधार तल की ऊँचाई के आधार पर मेघों को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है[1]—

मेघवर्ग	उष्णकटिबन्ध में	शीतोष्ण कटिबन्ध में	शीतकटिबन्ध में
निम्न मेघ	भूमितल से २ कि०मी०	भूमितल से २ कि०मी०	भूमितल से २ कि०मी०
मध्यम मेघ	२ से ८ कि०मि०	२ से ७ कि०मि०	२ से ४ कि०मि०
उच्च मेघ	८ से १६ कि०मि०	३ से १२ कि०मि०	३ से ८ कि०मि०

उच्च मेघों की ऊपरी सीमा प्रत्येक कटिबन्ध में क्षोभ सीमा के आसपास होती है। उपर्युक्त तीनों प्रकार के मेघों का मेघ वंशों के आधार पर पुनः उप विभाजन किया जाता है। विश्वमौसम संघ द्वारा १९५६ ई. में मेघ एटलस के नाम से प्रकाशित मेघों का वर्गीकरण निम्न प्रकार है[2]—

मेघ	उपविभाजन	संक्षिप्त नाम
उच्च मेघ	१. पक्षाभ मेघ	Ci
	२. पक्षाभ स्तरी मेघ	Cs
	२. पक्षाभ कपासी मेघ	Cc
मध्यम मेघ	१. मध्यस्तरी मेघ	As
	२. मध्य कपासी मेघ	Ac
निम्न मेघ	१. स्तरी मेघ	S+
१. निम्नस्तरी मेघ	२. स्तरी कपासी मेघ	Sc
	३. कपासी मेघ	Cu
२. ऊर्ध्वाविस्तारी मेघ	४. कपासी वर्षी अथवा वज्रपाती मेघ	Cb

---

१. जलवायु विज्ञान एस.एल. गुप्ता पृ. २२३

२. वहीं

अन्तर्राष्ट्रीय ऋतु विज्ञान परिषद ने मेघों को १० वंशों में विभक्त किया है[1]—

१. उच्च मेघ (धरातल से औसत ऊँचाई ५ से १३ कि०मी०)

(i) पक्षाम मेघ

(ii) पक्षाम स्तरी मेघ

(iii) पक्षाभ कपासी मेघ

२. मध्यमेघ (धरातल से औसत ऊँचाई २ से ७ कि०मी०)

(iv) स्तरी मध्य मेघ

(v) कपासी मध्य मेघ

३. निम्न मेघ (धरातल से औसत ऊँचाई ० से २ कि०मी०)

(vi) स्तरी कपासी मेघ

(vii) स्तरी मेघ

(viii) वर्षास्तरी मेघ

४. ऊर्ध्वाधर विकास वाले मेघ (आधार से शीर्ष तक की ऊँचाई १८ कि०मी० अथवा अधिक)

(ix) कपासी मेघ

(x) कपासी वर्षा मेघ

मेघ के भेद, लक्षण व गुण —

१. पक्षाभ मेघ

यह श्वेत तंतुओं अथवा संकीर्ण बैंड के धब्बों जैसी आकृति का मेघ है। भूमितल से देखने पर यह रेशम के रेशों की भांति दिखाई देते हैं। ये मेघ मुख्यत: हिमकणों से निर्मित होते हैं, अत: इनका रंग सफेद होता है।

---

१. जलवायु विज्ञान — डी. एस. लालपृ० २१७

इनकी तह काफी पतली होती है जिससे सूर्य की किरणों को पृथ्वी की सतह तक आने में कोई बाधा नहीं पहुँचती, अनुकुल परिस्थितियों में पक्षाभ मेघ स्तरी पक्षाभ अथवा पक्षाभ कपासी मेघों में बदल सकते हैं। इनसे कोई वर्षा नहीं होती है।[1] ये मेघ वायुमण्डल में सबसे अधिक ऊँचाई पर पाये जाते हैं। ये अत्यधिक कोमल तथा सफेद रेशम की भाँति होते हैं। जब ये मेघ पृथक्-पृथक् तथा आकाश में अनियमित क्रम में फैले हाते हैं तो इनसे स्वच्छ मौसम की पूर्व सूचना मिलती है किन्तु जब ये नियमित क्रम में पक्षाभ स्तरी अथवा स्तरी मध्य मेघों के साथ दिखाई देते हैं तो इनसे मौसम में गड़बड़ी होने की सम्भावना व्यक्त होती है।[2]

२. पक्षाभ स्तरी मेघ

यह काफी श्वेत्, पारदर्शी तथा पतली परत का मेघ है जो आकाश का अधिकांश भाग घेरे हुए होता है तथा विस्तृत क्षैतिज गुंठिका की आकृति ग्रहण करता है। इन मेघों के द्वारा सूर्य तथा चन्द्र किरणों का आवर्तन होने से प्रभामण्डल की रचना होती है। पक्षाभ स्तरी मेघों के आच्छन्न होने पर आकाश भी थोड़ा-थोड़ा दिखाई देता है। इन मेघों का आकाश में दिखाई देना आने वाले तूफान की पूर्व सूचना है। ये मेघ भी मुख्यत: हिमकणों या बहुत शीतल जलकणों से निर्मित होते हैं। वृद्धि करके पक्षाभ स्तरी मेघ मध्यस्तरी मेघों में बदल जाते हैं।[3]

३. पक्षाभ कपासी मेघ

ये मेघ सदैव पंक्तियों अथवा समूहों में होते हैं। इनकी छोटी-छोटी गोलाकार राशियाँ अथवा छोटे श्वेत् पत्रक पाए जाते हैं। ये प्राय: छायाहीन होते हैं।[4] पतले श्वेत् धब्बों या तहों के ये मेघसमूह, रेखाओं अथवा उर्मिकाओं

---

१. जलवायु विज्ञान एस.एल.गुप्ता पृ. २२४-२२५
२. जलवायु विज्ञान डी०एस०लाल पृ० २१७
३. जलवायु विज्ञान एस०एल०गुप्ता पृ० २२६
४. जलवायु विज्ञान डी०एस०लाल० पृ. २१८

के रूप में व्यवस्थित होते हैं, जो मेघ चादर के तरंगनुमा आकृति ग्रहण करने से बनते हैं। छोटी-छोटी उर्मिकायें (लहरें) एक दूसरे के प्राय: समांतर स्थित होती है। ये सूर्य किरणों के लिए कोई बाधा उपस्थित नहीं करते हैं। अत: इनकी छाया भूमितल पर नहीं पड़ती।[1]

४. मध्य स्तरी मेघ

मध्य स्तरी मेघ २ से ७ कि०मी० ऊँचाई पर स्थिति होता है। इसका रंग भूरा अथवा नीली आभा वाला होता है। यह एक चादर की तर के रूप में आकाश में रहता है। इसका स्वरूप सामान्यत: रेशेदार होता है। आकाश में इसका विस्तार सैकड़ों वर्ग कि०मी० में होता है। इसका ऊर्ध्वाधर विस्तार भी कुछ सौ मीटर तक हो सकता है। अनेक स्थलों पर इसकी परत पतली होती है। यह सूर्य की किरणों को भूतल तक आने में कम बाधा डालता है। पर सामान्यत: मोटाई हो जाने पर यह सूर्य किरणों को जमीन तक नहीं आने देता है। इन मेघों में प्रभामण्डल की घटना देखने को नहीं मिलती। इन मेघों से मूसलाधार वर्षा हो सकती है। जब इनका रंग गहरा भूरा हो जाता है तो ये वर्षा करने लगते हैं। सम्भवत: इन्हीं मेघों को देखकर कवि घाघ ने कहा है—**भूरा बादल बरखा लावे, करया बादल डरवावे** जब इस मेघ की तहें घनत्व के कारण और नीचे उतर आती हैं और सूर्य की किरणों को भूमि पर आने से पूर्णतया रोक देती है तो इन्हें वर्षा स्तरी मेघ के नाम से जाना जाता है।[2]

५. मध्य कपासी मेघ

ये मेघ भूरे या श्वेताभ अथवा श्वेत् और भूरे रंगों के होते हैं। इनकी परतें, शीट या टुकड़े होते हैं, ये पंक्तिबद्ध या लहरों के रूप में पाए जाते हैं। ये मेघ छायादार होते हैं। वायुमण्डल के जिस भाग में ये मेघ उत्पन्न होते हैं, उसमें वायु की लम्बवत् धाराओं के कारण इनका विकास ऊपर की ओर

---

१. जलवायु विज्ञान एस.एल.गुप्ता पृ. २२६

२. वहीं पृ. २२६

होता है। कभी-कभी संवहन तरंगों अथवा किसी पर्वत पर आरोहण करने वाली वायु धाराओं की लहरों में यत्र-तत्र एकांकी कपासी मध्य मेघ उत्पन्न हो जाते हैं। केवल वायु इतने ऊपर तक पहुँच जाए कि उसका तापमान ओसांक से नीचे हो जाय। पर्वत शिखरों पर उत्पन्न ऐसे मेघ 'पताका मेघ' कहे जाते हैं।[१] मध्य कपासी मेघ गोलाकार मेघराशियों अथवा रोल मेघों से मिलकर बना होता है जो आंशिक रूप से रेशेदार हो सकता है। मध्य कपासी मेघों के गोले उतने नियमित नहीं होते जितने पक्षाभ कपासी मेघों के दिखाई देते हैं। मुख्यत: ये मेघ जलकणों से निर्मित होते हैं। अनुकूल परिस्थिति में इनका विकास कपासी अथवा स्तरी कपासी मेघ में हो सकता है।[२]

६. स्तरी मेघ

यह निम्न मेघ है जो भूमिगत से ६०० मीटर की ऊँचाई तक स्थित होते हैं। ये मेघ एक समतह के रूप में काफी विस्तार में फैले होते हैं और आकाश में एक बिछी हुई चादर के रूप में दिखाई देते हैं। इनका रंग भूरा होता है। यही मेघ भूमितल के निकट कुहरे का रूप लेता है और ऊँचाई पर हो तो स्तरी मेघ का। अत: ऊँचे स्थलों पर यह मेघ कुहरा सा दिखाई देता है। इसका ऊर्ध्वाधर विस्तार ५० से ३०० मीटर तक हो सकता है। परिस्थिति के अनुकूल होने पर स्तरी मेघ, कपासी या मध्यस्तरी मेघ में बदल सकते हैं। इन मेघों की पतली परत किरीट उत्पन्न करती है।[३]

७. स्तरी कपासी मेघ

गोलाकार राशियों से निर्मित मेघों की निचली एवं भूरी परतें इस वर्ग में रखी जाती हैं। ये समूहों, पंक्तियों अथवा लहरों में दिखाई पड़ते हैं। ये पर्वत शिखर अथवा वायुयान से देखने पर कपासी मध्य मेघ की तरह दिखाई पड़ते

---

१. जलवायु विज्ञान डी.एस.लाल पृ. २१८

२. जलवायु विज्ञान एस.एल. गुप्ता पृ. २२७

३. वहीं पृ. २२७

हैं।[1] भूरे रंग का यह बादल अविच्छिन्न रूप से पूरे आकाश को घेरे रखता है। इसकी मोटाई १०० से १०००मीटर तक होती है। ये कहीं कहीं नियमित तथा अन्य स्थलों पर अनियमित आकृतियाँ धारण करते हैं। इनसे होकर सूर्य की किरणें भूमि तक नहीं आ पाती हैं। यह मेघ निचाई पर स्थित होने के कारण बड़ी जलबूँदों से बना होता है जो शीघ्र ही मेघ पवन प्रभाव से विमुक्त होकर वर्षा के रूप में भूमि पर गिरती हैं। वृद्धि होने पर ये विशाल कपासी मेघों तथा विघटन होने पर मध्यस्तरी मेघों में बदल जाते हैं।[2]

८. वर्षा स्तरी मेघ

यह निम्न मेघ है जिसका रंग गहरा भूरा तथा जिसका आधार अविच्छिन्न होता है। इससे लगातार जलवृष्टि अथवा हिमवृष्टि होती है। कभी-कभी इससे होने वाली वर्षा धरातल तक पहुँचने के पूर्व वाष्प बन कर वायुमण्डल में विलीन हो जाती है। शीतोष्ण कटिबन्धीय चक्रवात के उष्णवाताग्र पर मोटी परत वाले वर्षास्तरी मेघ निर्मित होते हैं।[3]

९. कपासी मेघ

इस प्रकार के मेघ आकाश में धुनी हुई रुई (कपासी) के ढेर की भांति दृष्टिगोचर होते हैं। इनका ऊर्ध्वाधर विकास बहुत अधिक होता है। इनके खण्ड आकाश में गुम्बदाकार रूप में दिखाई देते हैं, जिनके शीर्षभाग फूलगोभी जैसे होते हैं। इनके आधार काले रंग वाले तथा क्षैतिज होते हैं किन्तु इनके वे भाग जो सूर्य से प्रकाशित होते हैं, चमकीले होते हैं। ये सघन एवं स्पष्ट रूप रेखा वाले होते हैं। कभी-कभी ये ऊबड़-खाबड़ भी दिखाई पड़ते हैं। इनके दो प्रकार होते हैं।

(१) स्वच्छ मौसम के सूचक श्वेत् रंग के छोटे-छोटे मेघखण्ड तथा (२) अधिक ऊँचे मेघ, जो कपासी वर्षी अथवा झंझावातीय मेघों में विकसित

---

१. जलवायु विज्ञान डी.एस.लाल पृ. २१८

२. जलवायु विज्ञान एस.एल.गुप्ता पृ. २२७-२२८

३. जलवायु विज्ञान डी.एस.लाल पृ. २१८

हो जाते हैं।[1] इस मेघ के आधार की ऊँचाई भूमितल से ३०० से १६०० मीटर तक हो सकती है। यह पूरे आकाश को नहीं घेरता अपितु आकाश के किसी ओर विकसित होता है, इसका शीर्ष ६–७ कि०मी० की ऊँचाई तक पहुँचता है। इन्हें सामान्यत: स्वच्छ कपासी मेघ कहते हैं। इनका निचला भाग जलकणों तथा ऊपरी भाग अतिशीतल जलकणों से बना होता है। अनुकूल परिस्थिति में कपासी मेघ अपना विकास करके कपासी वर्षी अथवा स्तरी कपासी मेघ में बदल जाते हैं। विघटन के साथ ये मेघ मध्य स्तरी कपासी मेघ में बदल जाते हैं।[2]

१०. कपासी वर्षी मेघ

यह अत्यधिक घना और ऊर्ध्वाधर विस्तार वाला मेघ है। कभी–कभी यह मेघ क्षोभसीमा के आसपास पहुँच जाता है। इसका आकार बहुत विशाल अर्थात् पर्वतों के समान होता है। यह मेघ निम्न अक्षांशों में १४–१५ कि.मी. तथा मध्य अक्षांशों में १० कि.मी. की ऊँचाई तक पहुँच जाता है। कभी–कभी इन मेघों का विस्तार और अधिक ऊँचाई पर पहुँचकर जेटधाराओं के प्रभाव में आ जाता है। ऐसी स्थिति में इनका शीर्ष दिशाओं में बिखरकर निहाई (Anvil) की आकृति ग्रहण कर लेता है। कपासी वर्षी मेघ के आधार के नीचे भी खण्डित मेघों के अनेक टुकड़े पवन के साथ आकाश में मंडराते रहते हैं। इन मेघों का ऊपरी भाग ऊपर उठता हुआ श्वेत् रंग का जबकि निचला भाग भूरा और कहीं–कहीं काला होता है।

वज्रपात, हिमपात तथा टारनेडो जैसी मौसमी घटनाएँ इन्हीं मेघों से जुड़ी हुई हैं। अनुकूल परिस्थिति में ये मेघ कपासी मेघ में परिणत हो जाते हैं। सामान्यत: इनका विकास तेजी से ऊपर उठती हुई संवहन धाराओं के शीर्ष पर होता है। इनसे मूसलाधार वर्षा होती है। वर्षा के तीव्र झोंके आते हैं।

---

१. जलवायु विज्ञान, डी.एस.लाल, पृ. २१८

२. जलवायु विज्ञान, एस.एल. गुप्ता, पृ. २२८–२२९

बिजली चमकती है। मेघ जोर का शब्दनाद करते हैं। कभी–कभी ओले भी गिरने लगते हैं।[१]

मेघ आवरण के भेद व लक्षण[२] –

आकाश में मेघों की मात्रा को ऑक्टा (Okta) में प्रदर्शित किया जाता है जो शून्य से ८ तक होती है। यदि पूरे आकाश में कहीं भी कोई मेघ न हो तो मेघ आवरण शून्य ऑक्टा होता है। यदि आकाश में मेघ का टुकड़ा जरा सा भी दिखाई दे जाए तो मेघ आवरण एक ऑक्टा होता है। यदि आकाश का चौथाई भाग प्रेक्षक को मेघों से भरा दिखाई दे तो मेघ आवरण दो ऑक्टा होता है। आधे से कम व चौथाई भाग से अधिक आकाश मेघाच्छन्न होने पर तीन ऑक्टा मेघ आवरण होता है। आधा आकाश मेघों से घिरा होने पर चार ऑक्टा मेघ आवरण होता है। यदि आधे आकाश से अधिक एवं आकाश के तीन चौथाई भाग से कम मेघों से भरा आकाश हो तो मेघ आवरण पाँच ऑक्टा होता है। यदि आकाश का ३/४ भाग मेघों से घिरा हुआ हो तो मेघ आवरण छह ऑक्टा होता है। यदि मेघों से भरे आकाश में थोड़ा भी नीला आकाश दिखता है तो मेघ आवरण सात ऑक्टा होता है। इसी प्रकार जब सम्पूर्ण आकाश मेघों से भरा दिखाई दे और मेघों से होकर नीला आकाश न दिखाई दे तो मेघ आवरण आठ ऑक्टा होता है। इसे मेघाच्छन्न आकाश कहते हैं।

वस्तुतः मेघ आवरण की मात्रा का निर्धारण मौसम प्रेक्षक अपनी समझ से ही करता है, किसी मेघमापी यंत्र के द्वारा नहीं। मौसम मानचित्रों में मेघों की मात्रा एक छोटे वृत्त (o) द्वारा दिखाते हैं।

मेघों से मौसम की पूर्वसूचना[३] –

मेघों से मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी करने में पर्याप्त सहायता

---

१. जलवायु विज्ञान एल.एल.गुप्ता पृ. २२९

२. वहीं पृ. २३०

३. जलवायु विज्ञान–डी.एस.लाल पृ. २१९

मिलती है। शीतोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में जब उष्ण वाताग्र किसी केन्द्र के निकट आता है तो सर्वप्रथम पक्षाभ स्तरी मेघ सम्पूर्ण आकाश को घेर लेते हैं तथा क्रमशः धरातल के निकट आकर और अधिक मोटे होकर स्तरी मध्य मेघ में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे मेघों से वृष्टि होना सुनिश्चित होता है। उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में भी मेघों का यही क्रम होता है। ग्रीष्मऋतु में शीतोष्ण तथा उष्ण कटिबन्धिय प्रदेशों में आकाश में यत्र तत्र बिखरे हुए स्थूल पक्षाभ मेघों से मौसम साफ होने का संकेत मिलता है। उमस से भरे हुए दिनों मे जब कपासी मेघ तीव्रगति से कपासी वर्षी मेघों में विकसित होते हैं, तो झंझावातों के आगमन की सम्भावना पायी जाती है। शीतोष्ण कटिबन्धी में उत्तरी-पश्चिमी आकाश में जब कपासी वर्षी मेघों के शीर्ष भाग एक पंक्ति में दिखाई देती है तो शीत वाताग्र अथवा उससे सम्बन्धित झंझावात के आगमन की सम्भावना बनती है। इसके विपरीत उच्च कपासी मेघों से उच्चाकाश में स्थायी वायु की परत अथवा निर्बल वाताग्र का आभास होता है।

आकाश जब मेघाच्छादित रहता है, तो दैनिक तापान्तर बहुत कम पाया जाता है। रात्रिकाल में मेघाच्छादन रहने पर पार्थिव विकिरण के द्वारा तापमान अधिक नीचे नहीं गिरने पाता है। इसके विपरीत रात्रि में आकाश स्वच्छ रहने पर पार्थिव विकिरण के द्वारा अधिक शीतलन होने के कारण अधिक मात्रा में ओस या पाला पड़ने की सम्भावना रहती है। प्रातःकाल आकाश में स्तरी कपासी मेघ तथा हवा के झोंके इस बात का संकेत देते हैं कि दिन में आकाश मेघाच्छन्न रहेगा।

प्रवर्षण काल[१]–

मेघ विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में दिखाई देते हैं परन्तु मेघों का अधिकतम विकास विषुवद्वृत्तीय तथा मध्य अक्षांशों में दृष्टिगोचर होता है। विषुवत्वृत्तीय क्षेत्रों में कपासी वर्षी मेघों का आधिक्य रहता है। जबकि मध्य तथा उच्च अक्षांशों में अधिकांश रूप से स्तरी प्रकार के मेघ होते हैं। विषुवद्वृत्तीय क्षेत्रों

१. जलवायु विज्ञान एस.एल.गुप्ता पृ. २३०–२३१

में पवन अभिसरण स्थलों पर ऊपर उठती हुई संवहन धाराओं के ऊपर कपासी वर्षी मेघों का निर्माण होता है जिनसे तीव्र मूसलाधार वर्षा होती है। वर्षा मुख्यतया दोपहर बाद होती है और सायंकाल मेघ फिर से वाष्पीकृत होकर विलीन हो जाते हैं। फलत: रात को विषुवद्वृत्तीय प्रदेशों का आकाश स्वच्छ व मेघविहीन रहता है। इसके विपरीत मध्य तथा उच्च अक्षांशों में स्तरी स्वरूप के मेघ सम्पूर्ण आकाश को घेर लेते हैं। इन मेघों से धीरे-धीरे हल्की वर्षा होती है। कई दिनों तक आकाश मेघों से भरा रहता है।

भारतवर्ष में सम्पूर्ण वर्ष मेघाछन्न आकाश वाला क्षेत्र केवल अंडमान द्वीपसमूह है। शेष भारत में बरसात के मौसम में मेघों की बहुलता रहती है। जुलाई एवं अगस्त महीने प्राय: समस्त भारत में आकाश मेघों से घिरा रहता है। जून मास में मेघ दक्षिणी तथा उत्तर-पूर्वी भारत में केन्द्रित रहते हैं और दक्षिण पश्चिमी मानसून की वृद्धि और विकास के साथ उत्तर तथा उत्तर-पश्चिमी भारत की ओर अग्रसर होते हैं। वर्षा ऋतु में आकाश निम्न वर्षा स्तरी मेघों से भरा रहता है, कभी-कभी मध्य स्तरी तथा मध्य कपासी मेघ आकाश में दृष्टिगोचर होते हैं जो वर्षा ऋतु में ही वर्षा विहीन मौसमी अंतराल में आते हैं। दक्षिणी और उत्तरपूर्वी भारत में ६ से ८ महीने तक मेघ आकाश में रहते हैं। उत्तरी भारत (पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, हिमाचल, उत्तराखण्ड, जम्मू-कश्मीर आदि) में बरसात के २-३ महीने ही मेघ आकाश में दिखाई देते हैं। सितम्बर के प्रथम सप्ताह से दक्षिणी पश्चिमी मानसून के निवर्तन के साथ ही उत्तर पश्चिमी भारत से मेघ भी लुप्त होने लगते हैं। अक्टूबर में आकाश में बहुत कम मेघ उत्तरी भारत में दिखाई देते हैं।

सर्दियों के मौसम में मेघों का प्राय: अभाव रहता है परन्तु कभी-कभी उत्तर भारत में नवम्बर से मार्च तक मूसलाधार तथा फारस की खाड़ी से शीतोष्ण चक्रवात आ जाते हैं, जिनके साथ कपासी वर्षी या स्तरी कपासी मेघ आते हैं जो सम्पूर्ण आकाश को घेर लेते हैं। रात के समय बिजली कड़कती है और जोर का नाद होता है। इस स्थिति में कभी-कभी तीव्र वर्षा भी होती है।

तृतीय अध्याय

वायु के आधर

प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार वायु का आधार

वर्षा और वायु का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। वर्षा के लिए वायु में पर्याप्त मात्रा में जलवाष्प कणों की उपस्थिति अनिवार्य है। इसी प्रकार समुचित वायु का होना भी आवश्यक हैं क्योंकि वायु में पर्याप्त जल वाष्प के साथ उपयुक्त वायु के न होने पर मेघों की उत्पत्ति एवं वृष्टि नहीं हो सकती है। मेघ निर्माण हेतु जल वाष्प युक्त हवा को ऊपर की ओर उठाने वाली सुन्दर एवं संतुलित ऊर्ध्व वायु आवश्यक होती है। ऊर्ध्व वायु जलवाष्परूप मेघ को देश–देशान्तर भ्रमण कराते हुए जब उसके भार को बहन करने में अक्षम हो जाती है तब शीतल जलवाष्प मेघ द्रवीभूत होकर बरसने लगता है। अत: मरुत सूक्त में वर्णित है कि वर्षाकाल में अपनी किरणों से आहत जल के द्वारा सूर्य वायु को ही तृप्त करता है।[१] वस्तुत: मेघोत्पत्तिकाल से लेकर वृष्टिकाल तक वायु प्रत्येक क्षण मेघ के साथ रहता है। अत: वायु की अनुकूलता मेघों की पुष्टि के लिए आवश्यक है। यदि मेघगर्भकाल में तेज और रूखी हवा चलती है तो मेघगर्भका नाश सम्भावित है। हमेशा अनुकूल वायु कल्याणकारी होती है। अत: वायु का सुदृढ़ आधार वृष्टि के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

वायु के लक्षण:–

पूर्व की वायु बादल और वर्षा लाती है। पश्चिम की हवा वर्षा नष्ट

---

१. आदित्य एवं तर्पयिता येषां ते कथप्रिय: (मरूत:)। मरूतो हि वर्षासु रश्म्याहृतैरूदकैरादित्येन तर्प्यन्ते। –ऋ. वे. सं. मरुतसूक्त सायणभाष्य। उद्धत–वायुवृष्टिविज्ञानम्, संगोष्ठी पत्रिका, का.हि.वि.वि.,पृ. ३८

करती है। उत्तर की हवा वर्षा पैदा करती है और दक्षिण की हवा केवल वायु संचारण करती है, वृष्टि नहीं करती है।[1] पूर्वी हवा जिसे ग्रामीण जन सामान्यतया पुरवैया भी कहते है। वर्षा के लिए सबसे शुभ मानी जाती है। घाघभड्डरी का भी कथन है कि–**जो पै पवन से आवै, उपजे अन्न मेघ झरि लावै।**[2]

१. वायु घारण के दिन से वृष्टि विचार:–

वराह मिहिर का कथन है कि ज्येष्ठमास में शुक्लपक्ष की अष्टमी, नवमी, दशमी और एकादशी ये ४ दिन वायुधारण दिवस कहलाते हैं। इन दिनों में प्राय: प्रसव (वृष्टि) नहीं होता है, अपितु हवाएं चलती हैं। उपर्युक्त दिवसों में कोमल, शरीर को सुखदायी, शीतल, उत्तर, ईशान या पूर्व की हवा चले तथा आसमान में स्निग्ध बादल छाए रहें तो यह अग्रिम वर्षा के लिए शुभ होता है। इस प्रकार इन वायु धारणदिवसों में वायु की परीक्षा द्वारा आगामी वर्षा का विचार करना चाहिए।[3] उपर्युक्त चारों धारणा दिवस एक जैसे ही मौसम वाले हो तो कल्याण कारक (वृष्टि प्रदायक) होते हैं। यदि इनमें अलग तरह की आकाशीय स्थिति (सूखा, वर्षा, धूप, छॉव आदि) रहे तो दुर्भिक्षादि फल होते हैं।[4] वशिष्ठ मुनि के मतानुसार उक्त धारण दिवसों में बिजली का कड़कना, पानी की बूंदों सहित धूलयुक्त हवा (आंधी) चलना, सूर्य व चन्द्र का बादलों से ढ़का होना, ये शुभ लक्षण हैं। शुभ दिशाओं (पूर्व, उत्तर व ईशान) में बिजली का कड़कना, सब प्रकार के धान्यों की प्रचुरता का संसूचक है। इसी प्रकार धूल भरी हवाएँ एवं उसमें पानी की बूँदें मिली रहें तो आगे अच्छी वर्षा होती है। बच्चे जल या धूल में खेलें, पक्षियों की मधुर आवाज सुनाई दे, सूर्य

---

१. पूर्वोऽभ्रजननो वायुरितरोऽभ्रविनाशन:।
उत्तरो वृष्टिजनको वषत्येव च दक्षिण:–कादम्बिनी ३/५

२. घाघ व भड्डरी पृ. १०३

३. बृहत्संहिता गर्भधारणाध्याय १

४. तत्रैव श्लोक ३

व चन्द्र के चारों ओर सुन्दर परिवेश हो तो शुभ वर्षा होती है। इन दिनों में आकाश में काले एवं घने बादल प्रदक्षिण गति से (अर्थात् पूर्व के बादल दक्षिण की ओर, दक्षिण के बादल पश्चिम की ओर, पश्चिम से बादल उत्तर की ओर, तथा उत्तर के बादल पूर्व की ओर बढ़ते चलें) चल रहे हो तो उत्तम वृष्टि होती है।[१]

२. मेघगर्भ दिवसों में वायु परीक्षण–

सिद्धसेन आदि आचार्यों के मत से कार्तिक पूर्णिमा के बीत जाने पर मार्गशीर्ष कृष्ण में मेघ गर्भदिवस होते हैं।[२] परन्तु गर्ग पराशरादि ऋषियों के मतानुसार वराहमिहिर का कथन कि मार्गशीर्ष शुक्ल में जब प्रतिपदा से आगे चन्द्रमा पूर्वाषाढा नक्षत्र में आता है तब से प्रारम्भ करके मेघगर्भ लक्षण का विचार करना चाहिए।[३] मेघ गर्भ धारण के समय की मध्यम व कोमल गति युक्त हवा, शरीर को सुख देने वाली हवा, उत्तरी, ईशानी या पूर्वी हवा गर्भ की पुष्टि को संकेतित करती है।[४]

३. मासानुसार वायुपरीक्षण से शुभगर्भलक्षण–

माघ मास में तेज हवाएं, सूर्य व चन्द्र की रोशनी गर्द, कोहरे, हिम आदि से दबी रहे, चन्द्र धुंधला हो, सूर्योदयास्त के समय सूर्य के निकट बादल रहें तो ये भी भावी वर्षा ऋतु में उत्तम वर्षा की सूचना देते है।[५] फाल्गुन में रूखी हवाएँ चलें। तेज हवा बहे। बादल छाने लगें। सूर्य व चन्द्र परिवेश युक्त रहे। सूर्य ताम्र वर्ण या कपिल वर्ण का दिखे तो शुभ होता है।[६]

---

१. बृ. सं. गर्भधारणाध्याय ४–८
२. बृ. सं. गर्भधारणाध्याय ५
३. तत्रैव श्लोक ६
४. तत्रैव श्लोक १४
५. तत्रैव श्लोक २०
६. तत्रैव २१

४. वायु शकुन से वृष्टि विचारः–

पानी का स्वाद बदलना, गाय नेत्र के समान मटमैला आकाश, स्वच्छ दिशाएं, नमक में विकृति, आकाश का रंग काकाण्ड के समान हो, हवा बिल्कुल न चले, मछलियां पानी से बाहर निकलकर सूखे में चलने का प्रयत्न करें व मेढंक रह रह कर आवाज करते हो तो शीघ्र वर्षा होती है।[१] रात में बादल गरजें, दिन में बिजली चमके व बिजली की स्थिति लम्बवत् हो। पूर्वी हवा ठंडी चले तो शीघ्र ही वर्षा होती है।[२]

५. सन्ध्या समय में वायु परीक्षण–

सन्ध्या काल में पेड़ों, दरवाजों व गृहों को हिलाती हुई हवा चले, धूल व मिट्टी के कणों को लेकर साथ–साथ उड़े, यह प्रबल भयंकर तेज हवा जब पक्षियों को आकाश से नीचे उतरने के लिए मजबूर करे तथा वायु शरीर को बिल्कुल भी अच्छी न लगे तो यह अशुभ फलप्रद है।[३] इसके विपरीत सन्ध्या काल में मन्द–मन्द चलने वाली हवा शुभ होती है।[४]

वायु के भेद–

वायु के तीन प्रभेद हैं भावक, स्थापक एवं ज्ञापक। इनमें पहिली वायु जिससे बादल आदि पैदा होते है, दूसरी वायु जिससे आकाश में बादल स्थित रहते हैं एवं तीसरी वायु जिससे आगे आने वाली वृष्टि का पहले से ही ज्ञान हो जाता है। इनमें से भावक नामक पवन तत्काल या कालान्तर में भी वृष्टि करने में सक्षम होता है।[५]

१. **भावक वायु–** सूर्य, सोम और मंगल आदि ग्रहों की ज्योतियों और

---

१. बृ.सं. सघोवर्षनाध्याय ५
२. तत्रैव श्लोक ६
३. बृ. सं. सन्ध्यालक्षणाध्याय ६
४. तत्रैव ७
५. कादाम्बिनी ३/६–७

नक्षत्रों के साथ मेल होने पर गर्भ और प्रसवकाल में उत्पादक नामक पवन होता है।[१] प्रचण्ड भावक वायु से ओले, बर्फ या जल की बर्षा ४०० कोस के अन्दर होती है।[२]

२. **स्थापक वायु**– आर्त्तव या ऋतु संबंधी जो नियत वायु है वह स्थापक वायु कहलाती है, यह आकाश में गर्भ की स्थापना करती है, किन्तु कभी–कभी समुद्र से उठे हुए जल के दोष के कारण यह नहीं भी स्थित होती है।[३]

३. **ज्ञापक वायु**– मासिक गर्भ के धारणकाल संबंधी जो वायु है वहीं ज्ञापक वायु कहलाती है।[४]

वायु की दिशा–

१. **उत्पादक वायु दिशा**– पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर की प्रचण्ड वायु से क्रमश: दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, और पूर्व दिशा में वर्षा होती है। पूर्व अथवा उत्तर की हवा से शीघ्र ही वृष्टि होती है। दक्षिण की वायु से वृष्टि आने में विलम्ब होता है।[५] दिशाओं के अनुसार वायु द्वारा वृष्ट्यादि फल निम्न प्रकार के है[६] –

---

१. वहीं श्लोक ८

२. वहीं श्लोक ११

३. वहीं श्लोक ९

४. वहीं श्लोक १०

५. कादाम्बिनी श्लोक १२–१३

६. वहीं श्लोक १२–१७

	वायु दिशा	वृष्टिफल	विशेषता
१.	पूर्व	शीघ्रवृष्टि	दक्षिण दिशा में वृष्टि
२.	ईशान	सुवृष्टि	सदा शुभ
३.	उत्तर	शीघ्रवृष्टि	पूर्व दिशा में वृष्टि
४.	वायव्य	हवा के साथ वर्षा	मच्छर आदि छोटे–जीव उत्पन्न होते हैं।
५.	पश्चिम	विलम्ब से वर्षा	उत्तर दिशा में वृष्टि
६.	नैर्ऋत्य	गर्मी, अवृष्टि	रोग, दुर्भिक्ष, युद्ध, भय
७.	दक्षिण	वृष्टिनाश/अल्पवृष्टि	पश्चिम दिशा में वर्षण
८.	आग्नेय	वृष्टिनाश	अशुभ, युद्धाग्नि भय

नैर्ऋत्य, दक्षिण व आग्नेय दिशा की वायु–गर्जना और बिजली युक्त बड़े–बड़े बादलों को भी उड़ा ले जाती है। अर्थात् वृष्टि की सम्भावना नगण्य रहती है।[1] जिस दिन उत्तर की हवा को रोककर पूर्व की हवा चले, उस दिन से आगे ५ दिन तक वृष्टि होती है। पूर्व दिशा की हवा को रोककर दक्षिण दिशा की हवा चले तो ३ दिन तक वृष्टि होती रहती है। पश्चिम की हवा को रोककर नैर्ऋत्यकोण की हवा चले तो इसमें वायु अधिक चलती है और वर्षा कम होती है।[2] यदि ठहर–ठहर कर सभी दिशाओं से वायु चले तो कभी–कभी अत्यन्त अल्पवृष्टि की आशा रखनी चाहिए परन्तु यदि सूर्य चन्द्र का कुण्डल न हो (परिवेष रहित), इन्द्रधनुष न हो और सभी दिशाओं की वायु चले तो वह वायु दूर देशों में उठी मेघछटा को भी वहाँ ले आती है।[3]

---

१. कादम्बिनी ३/१८

२. वहीं श्लोक १९–२०

३. कादम्बिनी श्लोक २१–२२

२. **स्थापक वायु दिशा**—स्थापक वायु ऋतु सम्बन्धी हवा को कहते हैं, ऋतु के अनुसार वायु दिशा का फल निम्न प्रकार से है[६]—

	ऋतुनाम	वायुदिशा	फल
१.	हेमन्त	दक्षिण	शुभ
२.	शिशिर	नैर्ऋत्य	शुभ
३.	वसन्त	पश्चिम	शुभ
		उत्तर	फल पुष्प नष्ट
४.	शरद्	पश्चिम	शुभ
		पूर्व	फल पुष्प नष्ट

पश्चिमी वायु से आषाढ़ और आश्विन में उत्तर की वायु से श्रावण में और पूर्व की वायु से भाद्रपद में अवश्य वर्षा होती है।[१] आषाढ़ में यदि वायव्यकोण की हवा हो, कभी उत्तर की भी हो और, पुनः श्रावण में ईशानकोण की हवा हो जाए तो भाद्रपद में वर्षा नहीं होगी।[२]

आषाढ़ में दक्षिण की हवा, श्रावण में पूर्व की और भाद्रपद में उत्तर की हवा हो तो वर्षा नहीं होती है।[३] श्रावण में अग्निकोण की हवा और भाद्रपद में नैर्ऋत्यकोण की हवा चले तो वर्षा नहीं होती, यदि होती है तो बिजली या गर्जना रहित होती है।[४] श्रावण में अग्निकोण की हवा चले और भाद्रपद में नैर्ऋत्यकोण की हवा चले तो बिजली और गर्जना से रहित मेघ पृथ्वी पर झूक करके वर्षा करते है।[५] इसी प्रकार यदि श्रावण में पश्चिम की हवा, भाद्रपद में

१. वहीं श्लोक २३—२४
२. कादम्बिनी ३/२५
३. वहीं श्लोक २६
४. वहीं श्लोक २८
५. कादाम्बिनी श्लोक ३१
६. वहीं श्लोक ३२

नैर्ऋत्य की और आश्विन में पूर्व की हवा चले तो वर्षा नहीं होती, यदि हो तो बिजली और गर्जना से रहित होती है।[१] भाद्रपद में पश्चिम की हवा चलने से वर्षा नहीं होती, यदि होती है तो कई दिनों तक घटाटोप होकर होती है।[२] भाद्रपद में सब दिशा और विदिशाओं से हवा चले तो घटाटोप के सहित भी मेघ का नाश हो जाता है।[३]

३. ज्ञापक वायु दिशा – मासिक गर्भ के धारणकाल सम्बन्धी वायु ज्ञापक होती है। कृषि पाराशर के अनुसार पौष की प्रतिदिन की वायु परीक्षा १२ मासों में होने वाली वृष्टि या अनावृष्टि कर देती है। पौष मास के ३० तिथियों को १२ भागों में विभक्त करने से (२.५ तिथि से एक मास की) वृष्टि का पूर्वानुमान करना चाहिए। उत्तर या पश्चिम दिशा की हवा वृष्टि एवं पूर्व तथा दक्षिण की हवा अवृष्टि की सूचक है। हवा न चलने पर वृष्टि की हानि होती है एवं अव्यवस्थित वायुप्रवाह होने पर वृष्टि भी अव्यवस्थित होती है।[४] आषाढ़ पूर्णिमा को पूर्व दिशा से वायु के बहने पर सुवृष्टि होती है। दक्षिण–पूर्व (आग्नेय) से वायु चलने पर अन्न का नाश, दक्षिण की वायु होने पर मन्दवृष्टि, नैर्ऋत्यकोण (दक्षिण–पश्चिम) की वायु से अन्न नाश, पश्चिम की वायु से वृष्टि, उत्तर–पश्चिम (वायव्य) की वायु से वायुकोप, उत्तर एवं उत्तर–पूर्व (ईशान) की वायु से निश्चिय ही पृथ्वी अन्न से परिपूरित होती है।[५]

वराहमिहिराचार्य के अनुसार चन्द्र के साथ रोहिणी, स्वाति अथवा उत्तराषाढ़ा नक्षत्रों के संयोग के समय एवं आषाढ़ पूर्णिमा को वायुप्रवाह की दिशा के अनुसार निम्न प्रकार का फल होता है–[६]

---

१. वहीं श्लोक ३३

२. वहीं श्लोक ३४

३. वहीं श्लोक ३५

४. कृषि पराशर वृष्टिखण्ड २१–२२

५. तत्रैव ५१

६. बृ. सं. आषाढ़ी योगा १३

वायुदिशा	फल
१. पूर्व	फसलवृद्धि
२. आग्नेय	अग्निभय
३. दक्षिण	अल्पवर्षा
४. नैर्ऋत्य	मध्यमवर्षा
५. पश्चिम	उत्तमवर्षा
६. वायव्य	पवन युक्त प्रचुर वर्षा
७. उत्तर	उत्तम वर्षा एवं पुष्टि
८. ईशान	शुभवर्षा

उपर्युक्त फल से कुछ मिलता–जुलता फल घाघ–भड्डुरी की कहावतों में भी मिलता है। उनके अनुसार आषाढ़ी पूर्णिमा की संध्या को वायुपरीक्षण करने पर वायु प्रवाह से वर्ष की वर्षा का पूर्वानुमान करते हुए निम्न फल समझना चाहिए–[1]

---

१. आषाढ़ी पूनों को सांझ, वायु देखिए नभ के मांझ।।
नैर्ऋत्य भई बूँद ना परै। राज परजा भूखौं मरै।।
अगिन कोन जो बहै समीरा। पडै काल दुःख सहै सरीरा।।
उत्तर से जल फूहौं परै। भूस साँप दोनों अवतरैं।।
पश्चिम समै नीक जायो। आगे परै तुषार प्रमान्यो।।
जो कहुँ बहै इसाना कोना। उपजै विस्वा दो दो दोना।।
जो कहुँ हवा अकासै जाय। परै न बूँद काल परिजाय।।
दक्खिन पश्चिम आधौ समयौ। भड्डुर जोसी ऐसौ भन्यौ।।
–घाघ और भड्डरी पृ. १०४ पद्य १६७

	वायुदिशा	फल
१.	नैर्ऋत्य	दुर्भिक्ष
२.	आग्नेय	शरीर कष्ट, दु:ख
३.	उत्तर	कभी साधारण व कभी तेज वर्षा और साँप, चूहों की अधिकता
४.	पश्चिम	उत्तम समय पर वर्षा, पाला या हिम
५.	ईशान	अल्प अन्नोत्पत्ति
६.	नैर्ऋत्य	आधी फसल

मेघमाला नामक ग्रन्थ में भी आषाढ़ पूर्णिमा वायु परीक्षण का निम्न प्रकार से फल वर्णित है[1]—

	वायु प्रवाह दिशा	फल
१.	पूर्व	सर्वधान्य, आरोग्य
२.	आग्नेय	अस्थिशेष पृथ्वी (अकाल)
३.	दक्षिण	जलाभाव, अवृष्टि
४.	नैर्ऋत्य	दुर्भिक्ष
५.	पश्चिम	सर्वधान्य, वृष्टि
६.	वायव्य	नेवला, शलभ, मूषक भय परन्तु धन, धान्य
७.	उत्तर	सुभिक्ष
८.	सभी दिशा	अग्निदाह, महँगाई

१. मेघमाला उद्‍धृत प्राच्य भारतीयम् ऋतुविज्ञानम् पृ. २२१

वायु गति– सूर्य ताप से वाष्परूप जल वायु के द्वारा ऊँचे आकाश में ले जाया जाता है, वहाँ शीतल होकर जलवाष्प पुनः जलबिन्दुओं में परिवर्तित होकर वृष्टिरूप में पृथ्वी पर बरसता है। इस प्रक्रिया में वायु की गतिशीलता का कारण वायुमण्डल में ताप की विषमता ही है। वायुमण्डल में विद्यमान ताप का मुख्य कारण सूर्य है। आकाशमण्डल में सूर्य की गति का सुनिश्चित क्रम है। साथ ही सूर्य का भूमण्डल के साथ सम्पर्क का भी सुनिश्चित क्रम चलता है। अतः सूर्यताप से प्रेरित वायुगति का भी कोई न कोई सुनिश्चित क्रम अवश्य है। इसी वायु गति के सुनिश्चित क्रम का पर्यवेक्षण एवं अध्ययन कर प्राचीन आचार्यों ने मेघों द्वारा वृष्टि के क्रम को व्यवस्थित रूप से जानकर भावी वृष्टि एवं ऋतु परिवर्तन का ज्ञान उपलब्ध फल को ग्रन्थों में प्रस्तुत किया है।

वायु में तीव्र, मध्यम एवं मन्द गतियाँ सामान्यतया लक्षित होती है। वराहमिहिर के अनुसार–गर्भ स्थिति काल में आह्लाद जनक (प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली), अपने संचरण से स्पर्श होने पर सुख देने वाली और उत्तर, ईशान एवं पूर्व की ओर से प्रवाहित वायु गर्भ पुष्टि कारक होती है।[१] इसी प्रकार माघ मास में प्रबल वायु, फाल्गुन में रूक्ष और तीव्र वायु, चैत्र एवं वैशाख में सुन्दर मध्यम वायु मेघगर्भ के लिए शुभदायी होता है।[२] गर्भ धारण के दिवसों अर्थात् ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी से चार दिन तक अपने स्पर्श से सुख देने वाली व उत्तर, ईशान या पूर्व दिशा में उत्पन्न वायु शुभ होती हैं।[३] वसिष्ठ के मतानुसार गर्भधारण दिनों में धूलि युक्त वायु धान्य वृद्धि कारक होती है।[४] कालविशेष या पर्व विशेष पर वायु गति आश्रित कुछ पर्यवेक्षण के पूर्वानुमान आचार्यों ने निम्न प्रकार कहे हैं–

---

१. बृ. सं. गर्भलक्षणा २४

२. वहीं २०–२२

३. बृ. सं. गर्भधारणा. १

४. तत्रैव श्लो. ४

१. पौष मास में वायुगति परीक्षण व फल—कृषि पाराशर[1] के अनुसार बुद्धिमान पुरुष ढाई दिनों के परिमाण से पौषादि के क्रम से प्रत्येक महिने की वृष्टि या अवृष्टि की गणना वायु के प्रवाहानुसार करें। वायु गति का फल निम्न प्रकार जानना चाहिए—

	वायुगति दिशा	फल
१.	उत्तर	वृष्टि
२.	पश्चिम	वृष्टि
३.	दक्षिण	अवृष्टि
४.	पूर्व	अवृष्टि
५.	निर्वात	वृष्टि हानि
६.	अव्यवस्थित वायुप्रवाह	अव्यवस्थित वृष्टि

इसी प्रसङ्ग में घाघ की उक्तियाँ भी विचारणीय हैं।[2]

२. **फाल्गुन में वायुगति परीक्षण व फल**— होलिका दहन के समय भारतीय कृषक होलिका ज्वाला की दिशा को देखकर भावी वृष्टि का पूर्वानुमान करते हैं। यथा भड्डरी की उक्तियों के अनुसार वायुगति फल[3]—

---

१. कृषि पराशर वृष्टिखण्ड २१—२२

२. माघ पूस जो दखिना चलै। तो सावन के लच्छन भले।।
पानी बरसे आधे पूस। आधा गेहुँ आधा भूस।।
जब बरसेगा उत्तरा। नाज न खावै कुत्तरा।।
पूस में दूना माघ सवाई। फागुन बरसे घर से जाई।।
—घाघ भड्डरी की कहावतें पृ. ३४—३५

३. घाघ और भड्डरी पृ. १००—१०१ पद्य १६१

वायुगति दिशा	फल
१. पश्चिम	वृष्टि
२. पूर्व	कुछ वृष्टि, कुछ सूखा
३. दक्षिण	वृष्टिनाश
४. उत्तर	सुवृष्टि
५. सर्वदिशा	अशुभ

३. चैत्र में वायुगति परीक्षण व फल— चैत्र मास में वायुगति परीक्षण का फल निम्न प्रकार से होगा[१]—

मास तिथि	वायु गति	फल
१. चैत्र शु. द्वितीया	पूर्व	भाद्रपद में वर्षा
२. चैत्र शु. तृतीया	दक्षिण	आश्विन में वर्षा
३. चैत्र शु. चतुर्थी	उत्तर	कार्तिक चतुर्थी को वर्षा
४. चैत्र शु. पञ्चमी	पूर्व एवं उत्तर	वृष्टि
५. चैत्र शु. तृतीया	पूर्व एवं उत्तर	वृष्टि

फाल्गुन कृष्ण पक्ष (सम्प्रति उत्तरभारतीय चैत्र कृष्ण पक्ष) की द्वितीय तिथि को चौतरफी हवा के चलने से भाद्रपद में अच्छी वर्षा होती है।[२] इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की तृतीया तिथि को पूर्व व उत्तर की वायु से वर्षा होती है।[३]

१. कादम्बिनी २/१६७–१७७
२. तत्रैव १४१
३. तत्रैव १४३

४. वैशाख में वायुगति परीक्षण का फल–

चैत्र कृष्ण (सम्प्रति वैशाख कृष्ण) द्वितीया को चारों तरफ हवा चले तो भाद्रपद में अधिक वृष्टि होती है।[१] इसी प्रकार वैशाख कृष्ण तृतीया को यदि पूर्वी या उत्तरी हवा चले तो वर्षा काल में खूब जल बरसता है।[२] वैशाख कृष्ण की द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी एवं पञ्चमी को यदि वृष्टि के सहित पूर्वी हवा चले तो वर्षाकाल में वर्षा नहीं होती है।[३] वैशाख कृष्ण पक्ष में यदि बादल न हो तो दक्षिण की हवा मेघ बरसाने वाली होती है।[४] वैशाख शुक्ल तृतीया अर्थात् अक्षय तृतीया के आखिरी दो प्रहर में दो–दो घड़ी का विभाग करके क्रम से उनमें आषाढ़ से चार माहिनों की कल्पना करके निम्न प्रकार वृष्टि फल जानना चाहिए[५]–

काल विभाग	वायुगति	फल
१. प्रथम दो घड़ी	पूर्व	आषाढ में अच्छी वर्षा
२. दूसरी दो घड़ी	उत्तर	श्रावण में अच्छी वर्षा
३. तीसरी दो घड़ी	पश्चिम	भाद्रपद में अच्छी वर्षा
४. आखिरी दो घड़ी	दक्षिण	आश्विन में अच्छी वर्षा

अक्षय तृतीया को यदि पूर्व व उत्तर की हवा चले तो वृष्टि होती है जबकि दक्षिण व नैर्ऋत्य की हवा से वृष्टि की रूकावट होती है।[६] कई विद्वानों का मत है कि पश्चिम की हवा से भी खूब वृष्टि होती है। आकाश में बादलों

---

१. तत्रैव १९९

२. तत्रैव २००

३. तत्रैव २०२

४. तत्रैव २०६

५. कादम्बिनी २३९–२४०

६. कादम्बिनी २/२४४

की चाल देखकर वायु की गति पहचाननी चाहिए।[१] अक्षय तृतीया के एक महीने के बाद प्रचण्ड हवा के चलने से भाद्रपद में मेघ खूब गर्जना करते हैं।[२]

५. **ज्येष्ठ मास में वायु गति परीक्षण व फल–** ज्येष्ठ शुक्ल में अष्टमी से चार तिथियाँ वायु धारण दिवस कहलाती हैं। इनमें मृदु, स्निग्ध और बादलों को रोकने वाली वायु का होना श्रेष्ठ है।[३] इन वायु धारण दिवसों में पूर्वीवायु सुभिक्षकर, दक्षिणी वायु क्षेमकर, नैर्ऋत्य कोणीय वायु दुःखप्रद, पश्चिमी वायु धान्यवृद्धिकर, वायव्य कोणीय वायु हवा की अधिकता, उत्तरी वायु शुभद एवं ईशान कोणीय वायु सर्वसम्पदाप्रद होती है।[४]

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी से चतुर्दशी पर्यन्त वायुगति के पर्यवेक्षण से भी वृष्टि ज्ञान सम्भावित है। ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी से चार दिन तक यदि उत्तर की हवा चलती रहे तो वर्षाऋतु के चारों महीनों में अच्छी वृष्टि होती है।[५] यदि उन दिनों में विपरीत हवा चले या बादल विपरीत जाएं तो उस महिने के उस नक्षत्र में वृष्टि नहीं होती है।[६] यदि उक्त दिवसों में प्रारम्भ के समय यदि पश्चिम की हवा चले तो अनावृष्टि और दुर्भिक्ष का भय होता है।[७] उपर्युक्त चारों दिवसों में चारों दिशाओं की हवा उत्तरोत्तर यदि अधिक हो तो वर्षा ऋतु के चारों महीनों में अच्छी वर्षा होती है और यदि चारों दिशाओं की वायु विपरीत क्रम से चलकर एक दिशा की हवा अन्य दिशा की हवा को दबावे तो वर्षा ऋतु में वृष्टि न होकर शीतकाल में वृष्टि होती है।[८] यदि इन दिनों में वायव्य, पश्चिम व नैर्ऋत्य में वायु चले तो श्रावण व कार्तिक में वृष्टि न होकर भाद्रपद और

१. कादम्बिनी २४५

२. तत्रैव २४७

३. बृ. सं. वायुधारणा. १

४. मेघमाला उद्धृत प्रा. भा. ऋतु वि. पृ. ३५

५. कादम्बिनी २/२९५

६. तत्रैव २९६

७. तत्रैव २९७

८. तत्रैव २९८–२९९

आश्विन में उत्तम वृष्टि होती है।[1] पूर्व, ईशान और अग्निकोण में यदि वायु चले तो भाद्रपद व आश्विन में वृष्टि न होकर श्रावण, कार्तिक में अच्छी वर्षा होती है।[2]

मासान्त रोहिणी– रोहिणी नक्षत्र पर से सूर्य के चले जाने के बाद अर्थात् जिस दिन रोहिणी नक्षत्र पर सूर्य आवे, उससे १३ दिन के बाद जब रोहिणी नक्षत्र पर चन्द्रमा आवे, उस दिन के चार विभाग करके उनमें क्रमश: श्रावणादि चार मासों की कल्पना कर वायु परीक्षण करना चाहिए। जिस विभाग के मास में अच्छी वायु चले उसमें अच्छी वर्षा समझनी चाहिए।[3] उपर्युक्त दिन वायु गति की दिशा से निम्न प्रकार वृष्टि फल समझना चाहिए[4]–

वायु प्रवाह दिशा	फल
१. पूर्व	वर्षा
२. आग्नेय	गर्मी या अग्निभय
३ दक्षिण	धान्यनाश
४. नैर्ऋत्य	दुर्भिक्ष
५. पश्चिम	सुवृष्टि
६. वायव्य	वायु सहित वृष्टि
७. उत्तर	सुवृष्टि
८. ईशान	स्वास्थ्य लाभ

१. कादम्बनी ३००
२. तत्रैव ३०१
३. तत्रैव ३४६
४. तत्रैव ३४७

उपर्युक्त दिन मध्याह्नकाल से पहिले (पूर्वाह्नकाल में) वायु चलने से श्रावण व भाद्रपद में वृष्टि होती है और मध्याह्न में चलने से भाद्रपद व आश्विन में तथा मध्याह्न के बाद (अपराह्न में) वायु चलने से आश्विन व कार्तिक में वृष्टि होती है। यदि दिन भर अच्छी वायु चलती रहे तो सब महीनों में अच्छी वर्षा समझनी चाहिए और यदि अशुभ वायु चले तो सर्वथा विपरीत फल मिलता है। यदि शुभ व अशुभ दोनों ही वायु चले तो इसमें जो बलवान् हो उसी का फल समझना चाहिए।[१]

६. **आषाढ़ मास में वायु गति परीक्षण एवं फल**—कृषि पाराशर के अनुसार आषाढ़ मास की पूर्णिमा को वायु गति परीक्षण के बाद निम्न प्रकार से शुभाशुभ फल जानना चाहिए।[२]—

वायु प्रवाह दिशा	फल
१. पूर्व	सुवृष्टि
२. आग्नेय	अन्न नाश
३. दक्षिण	मन्द वृष्टि
४. नैर्ऋत्य	अन्न हानि
५. पश्चिम	वृष्टि
६. वायव्य	वायुप्रकोप
७. उत्तर	अन्नपूर्णा पृथ्वी
८. ईशान	अन्नपूर्णा पृथ्वी

१. कादम्बिनी २/३४८—३५०
२. कृषि पाराशर वृष्टि खण्ड श्लोक ५०

बृहत्संहिता के वातचक्राध्याय में आषाढ़ पूर्णिमा को वायुगति के परीक्षण के आधार पर वृष्टि का पूर्वानुमान विस्तृत रूप से वर्णित हैं। जिसका शुभाशुभ पूर्वानुमान निम्न प्रकार से है[१]–

वायुगति दिशा	फल
१. पूर्वी वायु	उत्तम धान्य व वृष्टि
२. आग्नेय	वृष्टि अभाव व अग्निभय
३. दक्षिण	अल्प वृष्टि
४. नैर्ऋत्य	अन्न–जल का अभाव
५. पश्चिम	धान्य वृद्धि, युद्ध भय
६. वायव्य	वृष्टि
७. उत्तर	प्रचुर वृष्टि
८. ईशान	वृष्टि एवं धान्य वृद्धि

आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा, द्वादशी और पूर्णिमा को तेज हवा चलने से उस वर्ष मेघ का अभाव समझना चाहिए।[२] आषाढ़ शुक्ल तृतीया को पूर्व की हवा चले और पूर्व से ही बादल भी आते हों तो भाद्रपद में अधिक वर्षा होती है।[३] आषाढ़ शुक्ल चतुर्थी को दक्षिण की हवा चलने और पूर्व की तरफ बादल जाते हों तो आश्विन में अच्छी वर्षा होती है।[४] आषाढ़ शुक्ल पञ्चमी को उत्तर की हवा चले और बड़े ऊँचे–ऊँचे बादल दिखाई दें तो कार्तिक में वृष्टि होती है।[५]

---

१. बृहत्संहिता वातचक्राध्याय १–८
२. कादम्बिनी २/३६०
३. तत्रैव ३६५
४. तत्रैव ३६६
५. तत्रैव ३६९

रोहिणी आदि नक्षत्र योगों के समय वायु परीक्षण व फल–

वृष्टि विचार की दृष्टि से संहिताग्रन्थों में रोहिणी चन्द्र समागम (रोहिणी योग), स्वातिचन्द्र समागम (स्वाति योग) एवं उत्तराषाढा चन्द्र समागम (आषाढी योग)–इन तीनों योगों के समय शकुनादि विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

रोहिणी योग विचारः–

आषाढ़ कृष्ण पक्ष में जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र से योग करता है, उस समय शुभाशुभ परिस्थितियों को शास्त्रों से जानकर कुशल ज्योतिषी संसार का शुभाशुभ कथन करता है।[१] रोहिणी चन्द्र योग के समय हवा की दिशा, बहाव तथा उसके मृदु, तीव्रता आदि से वायु परीक्षा करनी चाहिए। एतदर्थ सर्वप्रथम समतल भूमि पर एक बड़ा वृत्त खींच कर उसमें दिशाओं व विदिशाओं की सूचक रेखाऐं बना कर फिर १२ हाथ ऊँचे बांस पर, चार हाथ लम्बी पताका बाँध कर बांस को वृत्त के केन्द्र में गाड़कर सीधे ९०° पर खड़ा करें। पताका के फहराने की दिशा के अनुसार वायु का बहाव जानना चाहिए।[२]

वायु परीक्षणः–

रोहिणी चन्द्र समागम के समय प्रहर को पक्ष समझें। प्रहर के भागों से दिनों को समझना चाहिए। अर्थात् १ प्रहर (३ घंटे) में १५ दिन हैं तो प्रहर का १५ वाँ हिस्सा= ३ घंटा/१५= १८० मिनट/१५= १२ मिनट एक दिन का प्रतीक होगा। प्रदक्षिण क्रम से (पूर्व से दक्षिण की ओर) चलने वाली वायु सदा सुखदायक होती है। लेकिन इससे अपसव्य चलने वाली हवा सदैव अशुभ होती है। जिस हवा में अधिकता हो अर्थात् दो प्रकार की हवा बहे तो जो अधिक हो उसी से पूर्वानुमान का निर्णय करना चाहिए।[३]

---

१. बृ. सं. रोहिणी योगाध्याय ४

२. तत्रैव ९

३. तत्रार्द्धमासाः प्रहरैर्विकल्पा वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशैः।
सव्येन गच्छन् शुभदः सदैव यस्मिन् प्रतिष्ठा बलवान् स वायुः।। –तत्रैव १०

उपर्युक्त का आशय यह है कि रोहिणी चन्द्र समागम के दिन सूर्योदय से लेकर एक प्रहर (३ घंटे) तक शुभ वायु चले तो श्रावण कृष्ण पक्ष में शुभ वर्षा होती है। इसी प्रकार द्वितीय प्रहर से श्रावण शुक्ल पक्ष, तीसरे प्रहर से भाद्रपद कृष्ण पक्ष, चौथे प्रहर से भाद्रपद शुक्ल पक्ष, रात्रि के प्रथम प्रहर से आश्विन कृष्ण पक्ष रात्रि के द्वितीय प्रहर से आश्विन शुक्ल पक्ष, तृतीय प्रहर से कार्तिक कृष्ण पक्ष एवं चौथे प्रहर से कार्तिक शुक्ल पक्ष में वर्षा जाननी चाहिए। यदि पूरे प्रहर तक शुभ हवा चले तो पूरे पक्ष में तथा कम समय चले तो आनुपातिक विधि से प्रति १२ मिनट पर एक दिन करके समझना चाहिए। यदि अशुभ हवा चले तो उन पक्षों में वर्षा का अभाव जानना चाहिए। विशेषकर[१] कुछ पुस्तकों में **''तेनात्र मासाः प्रहरैर्विकल्प्याः''** यह पाठान्तर मिलता है। गर्ग, ऋषिपुत्र आदि के प्रमाणों एवं भटोत्पल के मत से भी यही विकल्प उचित दिखता है। इसके अनुसार १ प्रहर को १ मास मानकर पूर्वोक्त रोहिणी चन्द्र समागम दिवस को चार भागों में बाँटकर प्रथम प्रहर से सावन, द्वितीय प्रहर से भाद्रपद, तृतीय प्रहर से आश्विन एवं चतुर्थ प्रहर से कार्तिक मास समझकर वायु परीक्षण के आधार पर वृष्टि कथन करना चाहिए। तब रात के प्रहरों में वायु परीक्षा नहीं होती है। इस प्रकार रोहिणी चन्द्र संयोग के समय सुन्दर वायु एवं प्रदक्षिण क्रम से चलती हवा वृष्टि के लिए शुभप्रद होती है।[२]

स्वातीयोग विचारः—

आषाढ़ शुक्ल में जब चन्द्रमा स्वाति नक्षत्र से संयोग करता है, तो उसे स्वातियोग कहते है। रोहिणी व चन्द्र समागम बादल, वायु आदि का जैसा फल होता है वैसा ही फल स्वातियोग में भी जानना चाहिए।[३] यदि माघ कृष्ण सप्तमी को स्वाति नक्षत्र से चन्द्र समागम करे। उस समय वर्फ गिरे, हवा तेज

---

१. बृ. सं. रोहिणीयोग श्लोक १०

२. बृ. सं. रोहिणी योगाध्याय ११

३. बृ. सं. स्वातियोगाध्याय १

चले, हवा चलने की आवाज हो, पानी भरे हुए बादल गरजें व आकाश में खुब बिजली चमके, मेघ घटाएँ छाई रहें व सूर्य, चन्द्र व नक्षत्र तारें न दिखें तो सबको प्रसन्न करने वाली वर्षा होती है।[१]

आषाढ़ी योगविचारः—

आषाढ़ शुक्ल पक्ष में उत्तराषाढा नक्षत्र से चन्द्र का संयोग, आषाढ़ी योग कहलाता है। रोहिणी योग में बादल, वायु आदि का जैसा फल होता है वैसा ही फल आषाढ़ी योग में भी जानना चाहिए।[२] उपयुक्त तीनों योगों(रोहिणी, स्वाति एवं आषाढ़ी) का फल समान ही माना जाता है, लेकिन तीनों प्रकार से एक जैसा ही फल मिले, तो वही फल सब स्थानों के लिए प्रमाणित हो जाएगा। लेकिन तीनों योगों में फल अलग– अलग मिले तो रोहिणी योग से प्राप्त होने वाला फल ही सर्व प्रधान समझा जायेगा। रोहिणी फल को शेष दो योगफल बाधित नहीं कर सकते हैं।[३]

६. श्रावणादि मासों में वायु गति परिक्षण व फल—

श्रावणादि मासों में वायुगति का परिक्षण कर वृष्टि अनुमान सामान्य कृषक की भाषा में भड्डरी की लोकोक्तियों में दृष्टिगोचर होता है। यथा[४]—

सावन पछिवा भादौं पुरवा, आसिन बहै इसान।
कातिक कन्ता सींक न डोलै, गाजै सबै किसान।।

अर्थात् श्रावण में पश्चिमी हवा, भाद्रपद में पूर्वी हवा, आश्विन में ईशान कोणीय हवा तथा कार्तिक में वायुकोणीय हवा का अभाव प्रशस्त वर्षा को उत्पन्न करती है।

---

१. बृ. सं. स्वातियोगाध्याय ५
२. तत्रैव १
३. बृ. सं. आषाढ़ी योग–१२
४. घाघ और भड्डरी पृ. १०४ पद्य १६७

इस प्रकार वायुगति परिक्षण के आधार पर वर्णित वृष्टिफल किसानों के लिए जीवनदायी है। बिना व्ययसाध्य उपकरणों के वायु की गति को देखकर वृष्टि का पूर्वानुमान वस्तुतः हमारे प्रचीनाचार्यों का सत्य प्रयास है। आधुनिक विज्ञान में भी वृष्टि के अनुमान के लिए वायुदाव आदि का निरीक्षण किया जाता है अत एव कहा जा सकता है कि वायु एवं वृष्टि के अनन्य सम्बन्ध को ध्यान में रखकर ही वृष्टि की भविष्यवाणी की जा सकती है।

आधुनिक दृष्टि में वायु का आधार

वायु एवं वायुमण्डल

वायु अथवा हवा को आंग्लभाषा में AIR कहा जाता है जबकि पवन को WIND वस्तुतः वायु एवं पवन में थोड़ा सा अन्तर है। स्थिर हवा को 'वायु' कहा जाता है जबकि बढ़ती हुई हवा को 'पवन' कहना समुचित है। वायु अनेक गैसों का सम्मिश्रण है, वायु के मण्डल या आवरण को वायुमण्डल कहा जाता है।

पृथ्वी की उत्पत्ति लगभग ४६०करोड़ वर्ष पहले हुई, इसके बाद धीरे-धीरे वायुमंडल की उत्पत्ति हुई जिसमें ज्वालामुखी उद्गारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पृथ्वी के ऊपर स्थित वायु का आवरण घेरा या मण्डल रूप में है इसलिए वायु के आवरण को वायुमण्डल कहा जाता है वस्तुतः वायु अनेक गैसों धूलिकणों तथा जलवाष्प का मिश्रण है। वायुमण्डल पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण उससे संलग्न है। वायु दिखाई नहीं देती, पर अनुभव की जाती है। जलवायु वैज्ञानिकों ने वायुमण्डल की ऊँचाई १००० कि०मी० स्वीकार की है यद्यपि इसके ऊपर भी वायु विरल अवस्था में उपस्थित है। पृथ्वी की सतह पर सम्पूर्ण वायुमण्डल का ५६०० खरब टन से कुछ अधिक भार पड़ता है। लेकिन वायुमण्डल में ऊँचाई के साथ पड़ने वाले भार की मात्रा कम होती जाती है। भूतल से ३२ कि.मी. तक की ऊँचाई के बीच वाले वायुमंडलीय भाग का भार वायुमण्डल के कुल भार (५६०० खरब

टन) का ९९% है। इस ऊँचाई के ऊपर वायुमण्डलीय भार का १% भार ही विद्यमान है। वायु का केन्द्रीकरण वायुमण्डल की निचली परत अर्थात् क्षोभमण्डल में अत्यधिक है। भार के कारण वायु दबाव डालती है। वायु अवरोधन का काम भी करती है। अत: वायुमण्डल की उपस्थिति पृथ्वी को अति गर्म या अति ठंडा होने से रोकती है।[१]

वायु विभिन्न प्रकार की गैसों का मिश्रण है। समुद्र तल पर शुद्ध और शुष्क वायु में मुख्यत: ९ प्रकार की गैसें पायी जाती है—ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, आर्गन, कार्बनडाइऑक्साइड, हाइड्रोजन, नियॉन, हेलियम, क्रिप्टोन तथा जेनान। इनमें नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन प्रमुख है। ये आयतन की दृष्टि से सम्मिलित रूप से सम्पूर्ण वायुमण्डल के ९८ प्रतिशत भाग का निर्माण करती है।[२] वायुमण्डल में गेसों के अतिरिक्त जलवाष्प तथा धूलकण भी भारी मात्रा में पाये जाते हैं। इनका मौसम अथवा जलवायु की दृष्टि से बड़ा महत्व है। इनकी निम्न विशेषताएं हैं —

१. गैस —

धरातल से २५ कि.मी. की ऊँचाई तक शुष्क वायु का संघटन निम्न प्रकार से होता है[३]—

क्र.	गैस	प्रतीक	आयतन प्रतिशत	भार प्रतिशत
१	नाइट्रोजन	N_2	७८.०८८	७५.५२७
२	ऑक्सीजन	O_2	२०.९४९	२३.१४३
३	आर्गन	A	०.९३	१.२८२
४	कार्बनडाय आक्साइड	CO_2	०.०३	—

१. जलवायु विज्ञान, एस.एल.गुप्ता पृ. २६

२. जलवायु विज्ञानडी.एस.लाल. पृ. १५

३. वहीं पृ. १५—१६

५	नियान	Ne	०.००१८	–
६	हेलियम	He	०.०००५	–
७	ओजोन	O_3	०.००००६	–
८	हाइड्रोजन	H	०.००००५	–

उपर्युक्त गैसों में ऑक्सीजन प्राणधारक गैस (वायु) है। यह अन्य रासायनिक तत्वों के साथ सुगमता से मिलकर अनेक योगिकों का निर्माण करती है। प्रज्वलन हेतु भी यह गैस अनिवार्य है। नाइट्रोजन का मुख्य कार्य आक्सीजन को तनु (Dilute) करके प्रज्वलन का नियमन करना है। यह अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न प्रकार के ऑक्सीकरण में सहायता पहुँचाता है। कार्बनडाय आक्साइड पृथ्वी से होने वाले दीर्घतरंग विकिरण को आंशिक रूप से सोखकर उसे गर्म रखती है। ओजोन एक अक्रिय गैस है जो सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणों को आंशिक रूप से सोख लेती है।

२. जलवाष्प[१]

धरातल के निकट की वायु में सदा और सर्वत्र जलवाष्प न्यूनाधिक मात्रा में पाया जाता है।

आर्द्रता तथा तापक्रम के अनुसार जलवाष्प की मात्रा में परिवर्तन होता रहता है। ध्रुवीय क्षेत्रों के शुष्क वायुमण्डल में जलवाष्प की मात्रा बहुत कम होती है तथा इसके विपरीत भूमध्यरेखीय प्रदेशों के उष्णार्द्र वायुमण्डल में आयतन की दृष्टि से जलवाष्प अधिकांशत: वायुमण्डल की निचली परतों तक सीमित रहता है। ज्यों ज्यों ऊँचाई बढ़ती है इसकी मात्रा कम होती जाती है। वायुमण्डल के सम्पूर्ण जलवाष्प का ९० प्रतिशत भाग ८ कि.मी. ऊँचाई तक सीमित है। इसके ऊपर जलवाष्प की मात्रा बिल्कुल कम हो जाती है।

---

१. जलवायु विज्ञान–डी.एस.लाल. पृ. १६–१७

जलवाष्प सौर विकिरण तथा पार्थिक विकिरण को अंशत: सोख लेती है। यह सौरविकिरण के लिए अधिक पारदर्शक होने के कारण धरातल के तापक्रम को सम करने में सहायक होती है। घनीभूत आर्द्रता के विविध स्रोतों, बादल, वर्षा, कुहरा आदि का मूलस्रोत जलवाष्प ही है।

वस्तुत: अंग्रेजी भाषा का शब्द 'Atmosphere' ग्रीक भाषा के atmos शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है 'वाष्प', इस प्रकार वायुमण्डल को 'वाष्प प्रदेश' भी कहा जा सकता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि धरातल से प्रति सेकेण्ड १.६ करोड़ टन जलवाष्प वायुमण्डल को प्राप्त होता है। यदि वायुमण्डल की सम्पूर्ण आर्द्रता घनीभूत होकर वर्षा के रूप में धरातल पर गिर जाए तो समस्त भूतल पर १ इंच के बराबर वर्षा होगी।

किसी निश्चित तापक्रम पर किसी निश्चित वायुराशि में जब जलवाष्प की मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि वायु और अधिक जलवाष्प ग्रहण नहीं कर सकती तो उसे संतृप्त वायु कहते हैं। वायु के तापमान में वृद्धि के साथ उसकी जलवाष्प ग्रहण करने की क्षमता में भी वृद्धि होती है। संतृप्त वायु में जलवाष्प की मात्रा निम्न प्रकार होती है–

क्र.	वायु का तापमान अंश फार्नहाइट	जलवाष्प ग्रेन प्रति घनफुट
१	–३०	०.१०
२	–२०	०.१७
३	–१०	०.२९
४	०	०.४८
५	१०	०.७८
६	२०	१.२४

७	३०	१.९४
८	४०	२.८६
९	५०	४.११
१०	६०	५.८०
११	७०	८.०७
१२	८०	११.०६
१३	९०	१४.९५
१४	१००	१९.९७
१५	११०	२६.३४

३. धूलकण[१] –

वायुमण्डल में गैस अथवा जलवाष्प के अतिरिक्त जितने भी ठोस पदार्थ कण रूप में उपस्थित रहते हैं, उन सभी को 'धूलकण' कहा जाता है। ये ठोस कण पुष्पपराग, दावाग्नि के धूम से निकले महीन कण, मरुप्रदेश की वायु द्वारा उड़ाये गए रेलकण आदि कुछ भी हो सकते हैं। ये असंख्य धूलकण वायुमण्डल की निचली परतों में वायु में तैरते रहते हैं। जलवायु की दृष्टि से ये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। वायुमण्डल को पार करके आने वाले सौरविकिरण का कुछ भाग इन कणों के द्वारा सोख लिया जाता है। इनके द्वारा सूर्य विकिरण का परावर्तन तथा प्रकीर्णन भी होता है। इन्हीं के द्वारा उषाकाल एवं गोधूलि की तीव्रता तथा उनकी अवधि निर्धारित होती है। वायुमण्डलीय गैसों तथा धूलकणों के द्वारा जो 'वरणात्मक प्रकीर्णन' (Selective Scattering) होता है उसी से आकाश नीले रंग का तथा सूर्योदय वा सूर्यास्त के समय क्षितिज के आसपास का आकाश लाल रंग का दिखाई देता है।

१. जलवायु विज्ञान डी.एस.लाल पृ. १७

वायुमण्डल में घनीभवन क्रिया के लिए जलग्राही नाभिकों का होना आवश्यक है। कुछ विशेष प्रकार के धूलकण ऐसे नाभिकों का काम करते हैं जिन पर जलवाष्प का घनीभवन होता है। ध्यातव्य है कि औद्योगिक नगरियों एवं शुष्क प्रदेशों में आर्द्र प्रदेशों की अपेक्षा वायु में धूलिकणों की संख्या अधिक होती है।

वायुमण्डल की संरचना

वायुमण्डल पृथ्वी की सतह से १००० कि.मी. की ऊँचाई के मध्य स्थित वायु का आवरण है जो विभिन्न गैसों, धूलकणों वा जलवाष्प अवयवों का मिश्रण है। ऊँचाई के साथ इन अवयवों की मात्रा में कमी आती जाती है और इन्हीं की क्रिया प्रतिक्रिया के फलस्वरूप मौसमी तथा जलवायु सम्बन्धी घटनाओं की उत्पत्ति होती है। वायुमंडल की विभिन्न ऊँचाईयों पर तापमान, वायुदाब और वायुण्डल लगभग अनेक संकेन्द्री परतों अथवा सस्तरों में विभक्त है। तापमान में भिन्नता के आधार पर वायुमंडल को निम्नलिखित पाँच प्रमुख परतों अथवा मंडलों में बाँटा गया है।[1]

१. क्षोभमण्डल

२. स्थिरमण्डल

३. मध्यमण्डल

४. आयनमण्डल

५. बहिर्मण्डल

प्राचीन भारतीय पुराणों एवं सिद्धान्त ज्योतिषी ग्रन्थों में सात प्रकार के वायु या पवन कहे गये हैं, जो निम्न हैं[2] –

---

१. जलवायु विज्ञान एस.एल.गुप्ता पृ. ३१

२. सि० शिरोमणि गोलाध्याय मध्यगति वासना श्लोक १–३

भूवायु, आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, सुवह और परावह, इनमें पृथ्वी से १२ योजन पर्यन्त तक भूवायु की स्थिति मानी गयी है जहाँ मेघ, विद्युत् इत्यादि विद्यमान रहते हैं। आवह पृथ्वी के वाह्य वायुमण्डल में माना गया है जबकि आकाश गंगा जो भपञ्जर ग्रहसहित (नक्षत्र कक्षा एवं नवग्रह युक्त) है को प्रवह वायु से चालित माना गया है। अन्य वायु को भी इनसे ऊपर-ऊपर माना गया है।

आधुनिक वैज्ञानिक उपर्युक्त वायुविभाजन क्रम को नहीं मानते अपितु पूर्वोक्त क्षोभमण्डलादि विभाजन क्रम को मानते हैं जहाँ वायु की विद्यमानता है। अन्तरिक्ष को वायुरहित माना गया है। आधुनिक वायुविभाजन का वर्गीकरण निम्न प्रकार से है–

१. **क्षोभमण्डल[१] –**

यह वायुमण्डल की सबसे निचली और पतली परत है जो पृथ्वी की सतह से विषुवत् रेखा पर लगभग १६ कि.मी., ध्रुवों पर लगभग ८ कि.मी. तथा मध्य अक्षांशों में लगभग १२ कि.मी. की ऊँचाई तक स्थित है। क्षोभमण्डल की ऊपरी सीमा को क्षोभसीमा या ट्रोपोपाज कहते हैं। क्षोभसीमा का भिन्न-भिन्न अक्षांशों में विभिन्न ऊँचाइयों पर स्थित होने का कारण तापमान, वायुगतियाँ तथा वायुविक्षोभ है। वायुमण्डल में निचली तहों का तापमान जितना अधिक होगा, क्षोभसीमा भी उतनी ही अधिक ऊँचाई पर स्थित होगी। क्षोभसीमा मौसम तथा जलवायु परिवर्तनों की अंतिम सीमा है। क्षोभमण्डल में प्रति १६५ मी. की ऊँचाई के साथ तापमान एक डिग्री सेल्सियस कम होता जाता है। क्षोभसीमा के पास तापमान सबसे कम होता है जो मध्य अक्षांशों में शून्य डिग्री से० से ५० डिग्री सेल्सियस नीचे है। यह भाग आवश्यक रूप से अस्थिर है जिसमें संवहनी तथा वायु मिश्रण प्रक्रियाओं का बाहुल्य है इसके ऊपर संवहनी धाराओं का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

---

१. जलवायु विज्ञान– एस.एल. गुप्ता पृ. ३३

जलवायु विज्ञान की दृष्टि से क्षोभमण्डल का भारी महत्व है। यहाँ न केवल ताप ऊँचाई के साथ घटता है अपितु हवा का घनत्व और वायुदाब भी ऊँचाई के साथ कम होता जाता है। साथ ही सूक्ष्म धूलकण तथा जलवाष्प भी केन्द्रीभूत होते हैं। जलवाष्प ही सूक्ष्म आर्द्रताग्राही धूलकणों पर संघनित होकर मेघ, कुहरे, वर्षा आदि का रूप ग्रहण करता है। वायुमंडलीय विक्षोभ, तडित झंझा, आंधी, तूफान, मेघों की गर्जन तथा प्रचण्ड पवन भी इसी मण्डल की उपज है। वायुमण्डल की लगभग ७५% मात्रा इसी मण्डल में सीमित है। तापमान, वायुप्रवाह, मेघों की उपस्थिति तथा अभिवहन के आधार पर क्षोभमण्डल को चार विशिष्ट परतों में बाँटा जा सकता है–

१. धरातली परत–

पृथ्वी की सतह से २ मी० की ऊँचाई तक इस परत की सीमा मानी जाती है इसकी जलवायु की दशाएं, मृदा, भवनों तथा वनस्पतियों की भिन्नता के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान में कुछ ही दूरी पर बदल जाती है। यह पृथ्वी की सतह तथा इस परत के ऊपर स्थित वायुमण्डल के मध्य ऊष्मा, आर्द्रता तथा वायु के आदान प्रदान को निर्धारित करता है।

२. निम्न घर्षण परत–

यह २ मी० से १००मी० की ऊँचाई के मध्य स्थित है। यहाँ मेघों का प्राय: अभाव रहता है, परन्तु कुहरा देखने को मिलता है।

३. ऊपरी परत –

यह १०० मी० से २००० मी० की ऊँचाई के मध्य स्थित है। सायं के समय यह परत संवहन धाराओं के प्रभाव में आ जाती है, इस परत पर वर्षा मेघों का जमघट रहता है।

४. अभिवहन परत –

यह ऊपरी घर्षण परत के ऊपर स्थित है। इसमें संवहन धाराओं की

अपेक्षा वायु की क्षैतिज गति अधिक होती है। आकाश में दिखाई देने वाले स्तरी मेघ इसी परत में रहते हैं।

२. स्थिरमण्डल[१] –

क्षोभसीमा के ऊपर ५० कि.मी. की ऊँचाई के मध्य स्थित वायुमण्डलीय भाग को स्थिर मण्डल कहते हैं। इसकी ऊपरी सीमा को स्थिरसीमा या स्टार्टोपोज कहते हैं। यह परत ५० से ५५ कि.मी. की ऊँचाई के मध्य स्थित है। स्थिरमण्डल के २ भाग किए जा सकते हैं– १. समताप मण्डल २. ओजोन मण्डल

१. समताप मण्डल

क्षोभसीमा के ऊपर लगभग ३० कि.मी. की ऊँचाई तक वायु का तापमान घटने के बजाय समान रहता है अत: इसे समतापमण्डल कहते हैं।

२. ओजोन मण्डल

३० कि.मी. के बाद वायु का तापमान फिर से बढ़ने लगता है। इसका कारण यहाँ ओजोन गैसों की अधिकता है। १५ से ४५ कि.मी. के मध्य वाले वायुमण्डल में आक्सीजन के अणु सूर्य की पराबैंगनी किरणों के द्वारा प्रकाशिक नियोजन करके ओजोन में बदल जाते हैं। यह क्रिया निरंतर चलती रहती है। अत: १५ से ४५ कि.मी. ऊँचाई के मध्य स्थित वायुमण्डलीय भाग को ओजोनमण्डल भी कहते हैं। ओजोनमंडल में ओजोन की मात्रा विषुवत रेखा से ६०° अक्षांश तक बढ़ती जाती हैं और फिर ध्रुवों की ओर घटनी आरम्भ हो जाती है। ऋतुओं के अनुसार भी ओजोन की मात्रा में भिन्नता देखने को मिलती है। बसन्त ऋतु के आरम्भ में हर अक्षांश पर ओजोन की मात्रा अधिकतम एवं पतझड़ के अन्त में न्यूनतम होती है।

स्थिरमण्डल में प्राय: धूलकणों, जलवाष्प एवं संवहनी धाराओं का

---

१. जलवायु विज्ञान, एस.एल. गुप्ता, पृ.३५

अभाव दिखाई देता है। इसलिए प्रचंड पवन, वाताग्र, चक्रवात, वर्षा, आंधी, तूफान आदि मौसमी घटनाओं से मुक्त होने के कारण यह मौसम विज्ञान की दृष्टिकोण से महत्वहीन है। केवल वायुयानों की उड़ानों के लिए यह आदर्शमण्डल है। कुल वायु का २४% भाग इसी परत में मौजूद है। शेष १% भाग इसके ऊपर की परतों में निहित हैं।

स्थिरमण्डल की एक विशेषता यह है कि यहाँ अक्षांशीय तापमान वितरण क्षोभमण्डल से पूर्णतया भिन्न है। यहाँ का तापमान हमेशा शून्य डिग्री से काफी कम रहता है। विषुवत् रेखा के ऊपर स्थिरमंडल में तापमान शून्य से ८० डिग्री सेल्सियस नीचे तथा मध्य अक्षांशों में शून्य से ६० डिग्री सेल्सियस नीचे रहता है।

३. मध्यमण्डल[१] –

स्थिर सीमा के ऊपर ८० कि.मी. की ऊँचाई तक स्थित वायुमण्डल को मध्यमण्डल कहते हैं। इसकी ऊपरी सीमा को मध्य सीमा कहते हैं जो ८० से ८५ कि.मी. की ऊँचाई में स्थित ५ कि.मी. की मोटी परत है। इस मण्डल में तापमान ऊँचाई के साथ निरन्तर घटता जाता है और मध्यसीमा के आसपास शून्य से ८०-९० डिग्री सेल्सियस नीचे रहता है। इस मंडल की तह सूर्य किरणों की प्रक्रिया से रेडियो तरंगों को सोख लेती है। मध्यमण्डल की ऊपरी सीमा के आस पास कई बार कुछ चमकीले मेघ दिखाई देते हैं जो अंतरिक्ष से तीव्र गति के साथ आने वाली उल्काओं के टूट फूट कर धूलकणों में बदल जाने से बनते हैं। इन धूलकणों के चारों ओर बर्फ की रवे जमकर मेघों का रूप ले लेती है जिन्हें निशादीप्त मेघ कहते हैं।

कुछ जलवायु वैज्ञानिकों के अनुसार ३२ कि.मी. से ८० कि०मी. ऊँचाई के मध्य स्थित वायुमण्डल को रसायनमण्डल कहते हैं क्योंकि यहाँ सूर्य की पराबैंगनी किरणों की रासायनिक प्रक्रिया के कारण ऑक्सीजन से

---

१. जलवायु विज्ञान एस.एल गुप्ता, पृ. ३७–३८

ओजोन की उत्पत्ति होती है। वैसे तो स्थिरमण्डल में २२ कि.मी. के आसपास ओजोन का केन्द्रीकरण सबसे अधिक होता है, परन्तु इसके निर्माण की क्रिया १५ से ८० कि.मी. के मध्य ऑक्सीजन के प्रकाशिक नियोजन के फलस्वरूप चलती रहती है। अत: रसायनमण्डल में स्थिरमण्डल की ऊपरी परत और समस्त मध्यमण्डल शामिल है।

४. आयनमण्डल[१] –

वायुमण्डल में ८० से ६०० कि.मी. की ऊँचाई के मध्य आयनमण्डल स्थित है। यहाँ समस्त वायुमण्डल सूर्य की पराबैंगनी किरणों की प्रक्रिया से आयनीकृत और विद्युत चार्ज रहता है। इससे यहाँ स्वतंत्र इलैक्ट्रोन की उत्पत्ति होती रहती है। वैसे तो ६०० कि.मी. के ऊपर भी आयनीकरण की प्रक्रिया का बोध होता है परन्तु इस सीमा के ऊपर वायुमण्डल इतना विरल हो जाता है कि स्वतंत्र इलैक्ट्रोन का मिलना भी सीमित हो जाता है। इलैक्ट्रोन की अधिकता के आधार पर आयनमंडल को E तथा F परत में बाँटा गया है। E परत १०० कि.मी. की ऊँचाई के आस-पास है जबकि F परत २५०-३५० कि.मी. की ऊँचाई के मध्य स्थित है। आयनमंडल में ऊँचाई के साथ तापमान में वृद्धि होती जाती है और E परत का तापमान १७०° से २५०° सेल्सियस तक हो जाता है। इसलिए आयनमण्डल को तापमंडल भी कहते हैं। E परत पृथ्वी में प्रेषित मीडियम रेडियो तरंगों तथा F परत लघु रेडियो तरंगों को परावर्तित कर देती हैं जिन्हें विश्व के रेडियो-सेट्स एक साथ एक ही समय पकड़ लेते हैं।

आयनमंडल ध्रुवीय प्रकाशों (Auroras) के लिए उत्तरदायी है। यह प्रकाश आयनमंडल में भूतल से १०० कि.मी. की ऊँचाई पर रात्रि के समय साफ दिखाई देता है। उत्तरी गोलार्द्ध में इस प्रकाश को उत्तरी ध्रुवीय ज्योति अथवा सुमेट ज्योति (Auroras Borealis) कहते हैं एवं दक्षिण

---

१. जलवायु विज्ञान– एस.एल. गुप्ता, पृ. ३८

गोलार्द्ध में दक्षिण ध्रुवीय ज्योति अथवा कुमेर ज्योति (Auroras Australis) कहते हैं। यह ज्योति लाल, हरे तथा सफेद चापों के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

५. **बहिर्मण्डल**[१] –

६०० कि.मी. से १००० कि.मी. के मध्य ऊँचाई वाले वायुमण्डलीय भाग को बहिर्मण्डल या बाह्यमण्डल कहते हैं। वायु के कुछ कण जो आयनीकृत होने से बच जाते हैं, वे विसरित होकर आयनमंडल से यहाँ आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त यहां आयनीकृत ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, हीलियम, नाइट्रोजन व ऑक्सीजन के उदासीन अणु पाए जाते हैं। यहाँ पर नाइट्रोजन अणुओं पर कास्मिक किरणों की प्रक्रिया से हीलियम गैस का निर्माण होता है। पृथ्वी से दूर हो जाने के कारण इस मण्डल में गुरुत्वाकर्षण क्षीणप्राय: हो जाता है जिससे सभी प्रकार के अणु शून्य में खोते रहते हैं। एक सीमा ऐसी आती है जहाँ गुरुत्वाकर्षण समाप्त सा हो जाता है। यही हमारे वायुमण्डल की अन्तिम सीमा है। इस सीमा के ऊपर वायुतत्त्व समाप्त हो जाते हैं और अणुओं का चुम्बकीय तत्त्व ही शेष रह जाता है। १००० से २००० कि. मी. की ऊँचाई तक न्यूट्रान तथा २००० कि.मी. के उपर प्रोट्रान तथा इलेक्ट्रान ही उपलब्ध होते हैं। इस भाग को चुम्बक मण्डल भी कहते हैं और इसका ऊपरी सिरा अन्तर्ग्रहीय प्रभाव क्षेत्र में जाकर समाप्त हो जाता है। चुम्बकमंडल की ऊपरी सीमा को चुम्बक सीमा कहते हैं।

कुछ जलवायु वैज्ञानिक वायुमण्डल के निचले भाग (पृथ्वी की सतह से ६० कि.मी. की ऊँचाई तक); जिसमें वायु विक्षोभ, वायु की ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज गतियाँ तथा आंधी, तूफान, आदि आते रहते हैं और वायु के विभिन्न घटकों का आदान प्रदान होता है, को विक्षुब्धमण्डल कहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ वैज्ञानिक वायुमण्डल को दो समस्तरों– सममण्डल एवं विषममण्डल में

---

१. जलवायु विज्ञान– एस.एल. गुप्ता, पृ. ३८–३९

बाँटते हैं। इन दोनों मंडलों की मध्यवर्ती सीमा को समसीमा का नाम दिया गया है। इन दोनों मण्डलों की विशेताओं में महान अंतर है। लेकिन वायुमण्डल का यह स्तरीकरण जलवायु वैज्ञानिकों में लोकप्रिय न होने के कारण विशेष चर्चा का विषय नहीं माना जाता है। कुछ वैज्ञानिक वायुमण्डल की निम्न ५ प्रमुख परतों को मानते हैं[१] –

वायु दिशा –

जब किसी कारणवश हवा चलने या बहने लगती है तो इसे पवन (WIND) कहते हैं। पवन का नामकरण, हवा जिस दिशा में चलती है, उस दिशा के नाम पर होता है। यदि हवा पूर्व से पश्चिम चल रही है तो इसे पूर्वी या पुरवा (पुरवाई) पवन कहते हैं।[२] यदि हवा पश्चिम से पूरव की ओर बढ़ती है तो उसे पश्चिमी या पछुआ पवन कहते हैं। इस प्रकार पवन के नामकरण का आधार वह दिशा है, जिस ओर वायु प्रवाहित हो रही है।[३]

पवन की दिशा ज्ञापक यंत्र को पवनदिक् सूचक यन्त्र (विन्डवेन) कहते हैं। पवन की दिशा निर्धारित करने में दिक्सूचक यंत्र पर अंकित चार, आठ, सोलह अथवा बत्तीस दिग्बिन्दुओं की सहायता ली जा सकती है किन्तु सामान्यतया पवन की आठ दिशाएं ही मानी जाती है– पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, दक्षिण–पूर्व, दक्षिण–पश्चिम, उत्तर–पूर्व एवं उत्तर–पश्चिम। कभी–कभी वायु की दिशा में ०° से ३६०° अंशांकित मापक पर बने अंशों में व्यक्त किया जाता है। जब पवन की दिशा क्रमश: घड़ी की सुई की दिशा के अनुरूप बदलती है तो इसे ''पवन दक्षिणावर्तन'' कहते हैं, इसके विपरीत, जब पवन दिशा में घड़ी की सुई के विपरीत परिवर्तन होता है तो उसे ''पवन वामावर्तन''

---

१. क्षोभमण्डल २. समताप मण्डल ३. ओजोन मण्डल ४. आयन मण्डल ५. बहिर्मण्डल। परन्तु यह विभाजन भी पूर्वोक्त विभाजन के ही समतुल्य है।

२. जलवायु विज्ञान, डी.एस.लाल पृ. १८

३. जलवायु विज्ञान, डी.एस. लाल, पृ. ११४–११५

कहते हैं[१]।

चक्रवातों के विभिन्न भागों में वायु की दिशा में जो क्रमिक परिवर्तन होते हैं, उन्हें प्राय: उपर्युक्त नामों से सम्बन्धित किया जाता है। पवन की दिशा परिवर्तन का किसी स्थान के मौसम पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। भूमण्डलीय वायुमण्डल की दिशानुरूप कुछ प्रमुख स्थायी हवाएं निम्न हैं[२] –

१. व्यापारिक हवाएं

ये हवाएं ३०° उत्तर तथा दक्षिण कटिबन्धीय प्रदेशों में पूर्व से चलती हैं प्राचीन काल में समुद्र में पालदार जहाजों के चलाने में ये हवाएं सहायक होती थी, जिससे इन्हें "व्यापारिक हवा" की संज्ञा दी गयी। ये महासागरों में सन्मार्गी, अधिक सक्रिय तथा समान गति की होती हैं परन्तु स्थलों में इनकी गति मन्द होती है और मार्ग परिवर्तन भी शीघ्र होते रहते हैं। ये जाड़े की ऋतु में निरन्तर प्रवाहित होती हैं परन्तु गर्मियों में मानसून हवाएं इन्हें शक्तिहीन एवं छिन्न भिन्न कर देती हैं। कर्क और मकर रेखा के समीप ये हवाएं शुष्क मौसम की परिचायक हैं परन्तु विषुवतीय सम्मिलन प्रदेश में इन हवाओं से भयङ्कर तूफान हरीकेन, तड़ित–झंझावत और चक्रवात आते हैं। मौसम के साथ–साथ इन हवाओं का मार्ग भी उत्तर तथा दक्षिण तक प्रसारित होता रहता है।

२. विषुवत रेखीय पश्चिमी हवाएं –

ग्रीष्मकाल में महाद्वीपीय प्रदेशों में उत्तर व दक्षिण से आने वाली व्यापारिक हवाओं के मध्य में एक ऐसा प्रदेश है जहाँ पश्चिमी हवाएं चलती हैं। अफ्रीका और दक्षिणी पूर्वी एशिया में, गर्मी के मौसम में, जब विषुवत् रेखीय निम्नभार कई टुकड़ों में विभक्त होकर मध्य एशिया तथा उत्तरी अमेरिका में केन्द्रित हो जाता है, तब ये हवाएं जल से स्थल की ओर चलती है। विषुवत् रेखा को पार करने के पश्चात् व्यापारिक हवाएं स्वयं पश्चिमी हवाएं बन जाती

---

१. जलवायु विज्ञान, डी.एस. लाल, पृ. ११४–११५

२. जलवायु विज्ञान के मूलतत्व– ए.के.तिवारी एवं बी.एल.शर्मा पृ. १२३–१२७

हैं, तब इन्हें मानसून हवाएं कहते हैं।

३. उपोष्णीय प्रदेशों की हवाएं –

भूमध्य रेखा पर अत्यधिक गर्मी के कारण वायु, संवाहनिक धाराओं के रूप में धरातल से ऊपर की ओर उठती है और पुनः २५° से लेकर ३५° अक्षांश रेखा के मध्य पेटी में ठण्डी होकर नीचे उतरने लगती हैं। परिणामस्वरूप उपोष्णीय प्रदेशों में उच्च वायु भार कोशिकाएं प्रति चक्रवातीय रूप से निर्मित हो जाती हैं जो पूर्व और पश्चिम दिशा में प्रसारित रहती है। वास्तव में ये उच्च वायुभार केन्द्र अत्यधिक ऊँचाई में बहने वाली जेट वायुधाराओं की अनुदैर्घ्य तरंगों से सम्बन्धित हैं। समुद्रों में इस वायुभार क्रम का विषुवतरेखा मुखी भाग व्यापारिक हवाओं को तथा ध्रुवमुखी भाग पछुआ हवाओं को जन्म देता है। यह एक ऐसे वायुभार पर्वत आवर्त का निर्माण करता है। जिससे ध्रुव की ओर उष्ण कटिबन्धीय पूर्वी हवाएं चलती हैं। इस उच्च वायुभार पेटी को अश्व अक्षांश तथा शान्त कटिबन्ध कहते हैं।

४. पछुआ हवाएं –

फैरल के नियमानुसार उपोष्ण उच्च वायुभार कोशिकाओं से ध्रुवों की ओर प्रसारित हवाएं उत्तरी गोलार्द्ध में अपने दाहिनी ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने बायीं ओर मुड़ जाती हैं। औसत रूप से ये हवाएं ३०° और ३५° अक्षांश रेखाओं से ६०° और ६५° अक्षांशों के मध्य प्रवाहित होती हैं। व्यापारिक हवाओं की अपेक्षा, ये हवाएं गति और दिशा में अधिक परिवर्तनशील होती हैं क्योंकि इनके मार्ग में अनेक उच्चभार या निम्नभार कोशिकाएं आती हैं। ये चक्रवात और प्रतिचक्रवात पछुआ हवाओं की सामान्य पश्चिममुखी हवाओं को कभी-कभी पूर्वमुखी भी कर देते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में स्थलखण्डों की अधिकता, धरातलीय असमानता तथा अत्यधिक मौसमी परिवर्तन इन हवाओं की नियमितता को नष्ट कर देते हैं। इस गोलार्द्ध में पछुआ हवाएं केवल जाड़ों में ही सक्रिय रहती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में जलखण्ड की

अधिकता एवं स्थलीय अवरोध के कम होने के कारण ये हवाएं अधिक नियमित, तीव्र एवं स्थायी रूप से चलती हैं। अत: दक्षिणी गोलार्द्ध में ये हवाएं सालभर प्रचण्ड वेग से चलती है।

पछुआ हवाओं की सबसे बड़ी विशेषता उनकी परिवर्तनशीलता तथा मौसम के दौर हैं। गर्म प्रदेशों से ठंडे प्रदेशों की ओर चलने के कारण इनमें नमी अधिक होती है, जिससे इनमें वर्षा करने की क्षमता भी अधिक हो जाती है। पछुआ हवाएं सूर्यताप के साथ उत्तर और दक्षिणी की ओर स्थानान्तरित होती रहती हैं।

५. ध्रवीय हवाएं –

ध्रुवीय उच्च वायुदाब प्रदेश से उपध्रुवीय निम्न वायुदाब प्रदेश की ओर प्रवाहित होने वाली वायुराशियों को ध्रुवीय हवाएं कहते हैं। पृथ्वी की परिभ्रमण शक्ति का सबसे अधिक प्रभाव ध्रुवों पर ही पड़ता है जिससे इन हवाओं की दिशा प्राय: पूर्व से पश्चिम की ओर रहती है। ये ध्रुवों से ६०° और ६५° अक्षांशों की ओर चलती हैं। सूर्यताप के उत्तर और दक्षिण स्थानान्तरण से ये हवाएं भी उत्तर तथा दक्षिण की ओर खिसकती हैं। इनमें मौसम के साथ अक्षांशीय परिवर्तन कम आता है।

ध्रुवीय हवाएं बहुत ठंडी तथा प्रचण्ड गति से चलती हैं जिन्हें उत्तरी गोलार्द्ध में नारइस्टर कहते हैं। यह एक प्रतिचक्रवात का आदर्श नमूना होता है, जिसके केन्द्र में उच्च वायुभार मंद हवाएं और शुष्क शीतल मौसम होता है, परन्तु इनके पार्श्ववर्ती भागों में अनेक चक्रवात निरन्तर वायुविक्षोभ का निर्माण करते हैं।

वायु गति[१] – मौसम के विभिन्न घटकों में पवनों का सर्वाधिक महत्व है। धरातल के लगभग समानान्तर प्रवाहित होने वाली वायु को पवन

---

१. जलवायु विज्ञान डी. एस. लाल. पृ. १०७

(WIND) कहा जाता है। यह तापमान एवं दृष्टि आदि अनेक तत्वों पर प्रभावकारी नियन्त्रण रखता है। तीव्रगति से प्रवाहित होने वाली वायु ही ऊष्मा तथा आर्द्रता को पृथ्वी तल के एक भाग से दूसरे भाग में स्थानान्तरित करती है। तूफान, मेघ, वृष्टि आदि घटकों की उत्पत्ति में पवन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सर्वाधिक प्रभावशाली कारक माना गया है, किन्तु यह भी सत्य है कि पवन भी मौसम के अन्य तत्वों द्वारा नियंत्रित होता है। वायु अधिक दाब से निम्न दाब वाले क्षेत्र की ओर प्रवाहित होता है। पवन की दिशा और वेग, दोनों ही वायुदाब प्रवणता पर निर्भर होते हैं। वस्तुत: वायु संचार का मूलकारण धरातल के विभिन्न भागों में उपस्थित तापान्तर है जो वायुदाब में अन्तर उत्पन्न करता है।

वायुमण्डल में ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज दो प्रकार की गतियां पायी जाती हैं। जब वायु धरातल से ऊपर की ओर तथा ऊपर से नीचे की ओर गतिशील होती है, तब हमें उसका अनुभव नहीं होता और उसे हम वायुतरंग कहते हैं। मौसम के विभिन्न घटकों मेघ, वृष्टि, झंझा आदि की उत्पत्ति में इन वायु तरंगों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह वायु की ऊर्ध्वाधर गति है। पृथ्वी तल के समानान्तर गतिशील वायु (अर्थात पवन) क्षैतिज गतिवाली होती है। वायुमण्डल के सम्पूर्ण क्षैतिज प्रवाह की तुलना में उसकी ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज दोनों गतियों का ज्ञान अपेक्षित है, फिर भी धरातलीय पवनों के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता है। इसके निम्न दो कारण हैं– (i) पवनों के द्वारा निम्न अक्षांशों और उच्च अक्षांशों के बीच ऊष्मा का स्थानान्तरण होता है, जिससे अक्षांशीय ताप सन्तुलन बना रहता है, और (ii) पवनों के द्वारा ही महासागरों से महाद्वीपों के दूरस्थ आन्तरिक क्षेत्रों तक आर्द्रता पहुँचायी जाती है, जिससे वृष्टि होती है।

पवन की गति को प्रभावित करने वाले कारक हवा को स्थिर अवस्था से गतिशील होने के लिए बल की आवश्यकता होती है, हवा को गति देने में जो बल काम करते हैं; वे अनेक प्रकार के हैं। पवन की गति को प्रभावित

करने वाले अनेक कारकों में से निम्न चार को प्रमुख माना जाता है—[१]

(१) वायुदाब प्रवणता

(२) पृथ्वी का आवर्तन

(३) घर्षण का प्रभाव

(४) पवन का अपकेन्द्री बल

१. वायुदाब प्रवणता

वायु में क्षैतिज गति उत्पन्न होने का एक मात्र कारण वायुदाब का अन्तर अथवा वायुदाब प्रवणता है।[२] वायुदाब का अभिप्राय किसी स्थान पर समस्त ऊँचाई वाले वायुस्तम्भ का कुल भार है। वायुदाब यंत्र दो प्रकार के होते हैं– उच्चदाब तथा निम्नदाब। पृथ्वी के धरातल पर दोनों ही वायुदाब विद्यमान हैं। वायु भी उच्चदाब (ऊँचाई) से निम्नदाब (निचाई) की ओर गतिशील होती है। वायुमंडल में उच्चदाब एवं निम्नदाब के मध्य एक ढाल स्थित होता है जिसे दाब प्रवणता वास्तव में वायु को गतिशील होने के लिए अनुकूल ढाल प्रदान करती है। साथ ही इस ढाल की तीव्रता वायु के वेग का निर्धारण भी करती है। इसे दाबप्रवणता जनित बल कहते हैं। ऐसे पवन को, जो दाब प्रवणता द्वारा उत्पन्न बल के फलस्वरूप संचालित होता है, अनुप्रवण पवन (Gradient Wind) कहते हैं।[३] पवन प्रवाह की दिशा प्रकट करने वाली रेखा समदाब रेखाओं के साथ समकोण बनाती है। समान्यतया वायुदाब में जितना अधिक अन्तर होता है, पवन का वेग भी उतना ही अधिक होता है। वायुदाब प्रवणता जब प्रपाती होती है तब पवन का वेग तीव्र और प्रवणता मन्द होने पर वेग भी कम हो जाता है, समभार रेखाओं के बीच की दूरी कम होने पर वायुदाब

---

१. जलवायु विज्ञान –डी.एस.लाल, पृ. १०७

२. वहीं पृ. १०८

३. जलवायु विज्ञान, एल.एल.गुप्ता, पृ. ११०–१११

प्रवणता तीव्र तथा दूरी अधिक होने पर पवणता मन्द होती है।[1]

२. पृथ्वी का आवर्तन[2]

यदि वायुदाव प्रवणता के द्वारा ही पवन की दिशा निर्धारित होती तो सर्वदा और सर्वत्र पवन की दिशा समदाव रेखाओं से ९०° के कोण पर होती। पवन सदैव समभार रेखाओं के आर पार उच्चदाव से निम्न दाब की ओर सीधे चलता है परन्तु धरातल पर प्रवाहित पवन अनिवार्य रूप से इस नियम का पालन नहीं करता है। वास्तव में पृथ्वी के आवर्तन के कारण उत्पन्न विक्षेपक बल जिसे कोरियालिस बल भी कहते हैं, पवन की दिशा को मोड़ देता है। इसी कारण से उत्तरी गोलार्द्ध में पवन अपने पथ के दायीं ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध में वायीं ओर मुड़ जाता है।

(क) विक्षेपक (कोरियालिस) बल

पृथ्वी की दैनिक गति द्वारा उत्पन्न विक्षेपक बल धरातल पर प्रत्येक गतिमान वस्तु को प्रभावित करता है। जब वायुदाब प्रवणता बल के कारण कोई वायुकण गतिमान होता है तब उसमें एक सीधी रेखा में चलते रहने की सामान्य प्रवृत्ति विद्यमान रहती है किन्तु पृथ्वी के आवर्तन के कारण अक्षांश एवं देशान्तर रेखाएं अपनी स्थिति बदल देती है, जिससे पवन की दिशा में परिवर्तन हो जाता है। विक्षेपक बल निम्न का समानुपाती होता है–

(i) गतिमान वस्तु का वेग

(ii) गतिमान वस्तु की संहति

(iii) अक्षांश की ज्या

विक्षेपक बल अक्षांश ज्या पर निर्भर होने के कारण विषुवत् रेखा पर शून्य और ध्रुवों पर अधिकतम होता है। यह बल गतिमान वस्तु से समकोण

---

१. जलवायु विज्ञान, डी.एस.लाल, पृ. १०८

२. वही पृ. १०८–१११

पर कार्य करती है जिससे उस बल का प्रभाव उसकी दिशा पर पड़ता है, न कि उसके वेग पर यह बल प्रत्येक दिशा में समान होता है। वस्तुतः विक्षेपक बल वास्तविक बल न होकर आभासी बल है, जो पृथ्वी के आवर्तन तथा उसके धरातल पर गतिशील वायु के कारण उत्पन्न होता है।

(ख) भू-विक्षेपी पवन (Geostrophic Wind)

'ज्योस्ट्रॉफिक' शब्द ग्रीक भाषा का है जिसका अर्थ होता है 'पृथ्वी द्वारा मोड़ा गया'। जब वायुदाब प्रवणता बल एवं विक्षेपक बल में संतुलन हो जाता है, तब पवन प्रवाह समदाब रेखाओं के समानान्तर होता है। इस प्रकार समदाब रेखाओं के समानान्तर गतिशील पवन को भू विक्षेपी पवन कहते हैं। भू विक्षेपी पवन अपने आदर्श रूप में वायुमण्डल के ऊपरी भागों में ही पाया जाता है, क्योंकि यहाँ घर्षण का प्रभाव नगण्य होता है तथा समदाब रेखाएं सीधी होती हैं, धरातल के निकट घर्षण बल के हस्तक्षेप के कारण भूविक्षेपी पवन का विकास नहीं हो पाता। भूविक्षेपी पवन की गति पर वायुदाब प्रवणता, अक्षांश एवं वायु के घनत्व का प्रभाव पड़ता है। यह पवन वायुदाब प्रवणता का समानुपाती होता है। समदाब रेखाएं जितनी संघन होती है, उतना अधिक पवन का वेग होता है। यह पवन अक्षांश के ज्या का विलोमानुपाती होता है। इस पवन का वेग वायु के घनत्व का भी विलोमानुपाती होता है। अतः ध्रुवों की अपेक्षा निम्न अक्षांशों तथा धरातल से अधिक ऊँचाई पर भू विक्षेपी का वेग अधिक होता है।

३. घर्षण का प्रभाव[१] –

घर्षण बल की उत्पत्ति धरातल और उसके ऊपर चलने वाली वायु के संघर्ष से होती है। यह बल पवन प्रवाह की दिशा के विपरीत कार्य करता है। यह वायु के वेग के वर्ग का समानुपाती होता है। पृथ्वीतल पर अथवा उसके निकट उच्चावचन तथा अन्य बाधाओं के कारण पवन प्रवाह में प्रतिरोध

---

१. जलवायु विज्ञान– डी.एस.लाल, पृ. १११–११२

उत्पन्न होता है, जिससे उसमें अनियमितता आ जाती है। यही कारण है कि हमें वायु के झोंको तथा पवनविराम का अनुभव होता है। जल की अपेक्षा स्थलीय धरातल के अधिक खुरदरा होने के कारण उस पर घर्षण बल अधिक होता है। घर्षण विहीन विक्षेपक बल और प्रवणता बल में संतुलन के कारण पवन की दिशा सदैव समदाब रेखाओं के समानान्तर होती है।

स्थानीय पवनों पर कोरियालिस बल का प्रभाव न पड़ने से प्रवणता बल एवं घर्षण बल में पूर्ण संतुलन स्थापित हो जाता है जिससे पवन सीधे उच्च दाब से निम्न दाब की ओर चलने लगता है। ऐसे पवनों को जेफ्रीज ने एन्टीट्रिप्टिक पवन की संज्ञा प्रदान की है। इनका क्षैतिज विस्तार सीमित तथा गहराई कम होती है। साथ ही ये पवन अल्पकालिक भी होते हैं। धरातल से ज्यों ज्यों ऊपर जाते हैं, घर्षण बल कम होता जाता है जिससे वायु वेग में वृद्धि हो जाती है तथा पवन की दिशा भी समदाब रेखाओं के समानान्तर हो जाती है। धरातल से लगभग १००० मी. तक की ऊँचाई वाले भाग को घर्षण स्तर कहा जाता है। इसके ऊपर वायुमण्डल में घर्षण बल का प्रभाव नगण्य हो जाता है।

४. पवन का अपकेन्द्र बल[१] –

पवन गति को प्रभावित करने वाला अन्य महत्वपूर्ण कारक स्वयं पवन का अपकेन्द्र बल है। जब पवन का मार्ग वक्र अथवा वृत्ताकार होता है, तब इस प्रकार के बल की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार का बल विभिन्न प्रकार के पवनों के वृत्ताकार पथ के केन्द्र से बाहर की ओर लगता है। जब कोई कण समान गति से वृत्ताकार मार्ग में चक्कर लगाता है, जब उस पर मार्ग के केन्द्र अथवा आवर्तन के अक्ष की दिशा में एक बल कार्य करता है जिसे अभिकेन्द्र बल कहते हैं। इसी बल के कारण वह कण वृत्ताकार मार्ग पर चलता है। उत्तरी गोलार्द्ध में विक्षेप के कारण अपने पथ के दायीं ओर मुड़ जाता है, जिसमें

---

१. जलवायु विज्ञान, डी.एस.लाल., पृ. ११२–११४

अपकेन्द्र बल के कारण और भी वृद्धि हो जाती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इस प्रकार का विक्षेप पथ के दायीं ओर होता है।

प्रवणता पवन

जब वृत्ताकार मार्ग से चलने वाले पवन में वायुदाब प्रवणता बल, विक्षेपक बल एवं घर्षण बल में संतुलन स्थापित हो जाता है तो उसे प्रवणता पवन कहते हैं, ये पवन वायुमण्डल के ऊपरी भाग में समदाब रेखाओं के समानान्तर चलते हैं किन्तु धरातल पर घर्षण के कारण ये निम्नदाब की ओर मुड़कर उन्हें न्यूनकोण पर काटते हैं। धरातल पर अथवा उसके सन्निकट घर्षण के कारण पवन का वेग कम हो जाता है जिसके फलस्वरूप विक्षेपक बल कम हो जाता है। चक्रवात अथवा प्रतिचक्रवात में चलने वाली ऐसी हवाओं को चक्रगतिक पवन कहते हैं। उपर्युक्त कारणों से ही उत्तरी गोलार्द्ध में चक्रवात में पवन वामावर्त तथा प्रति चक्रवात में दक्षिणवर्त होता है। दक्षिण गोलार्द्ध में इसके विपरीत चक्रवात में दक्षिणावर्त पवन एवं प्रतिचक्रवात में वामावर्त होता है। भू–विक्षेपी पवन तथा प्रवणता पवन में मौलिक अन्तर केवल इतना ही है कि पहले का मार्ग सीधा तथा दूसरे का मार्ग वक्र अथवा वृत्ताकार होता है।

चतुर्थ अध्याय

भूमि के लक्षण

भूमि पर समान वृष्ट्यादि लक्षण होने पर भी प्रत्येक स्थान पर समान रूप से वृष्टि नहीं होती है। इसका कारण भूमि का स्वरूप एवं वातावरण है। भूमि की बनावट एवं तत् स्थीनीय वनस्पतियों का भी सम्बन्ध वृष्टि को प्रभावित करता है। समान ग्रहयोग होने पर भी विषम वर्षा हो सकती है क्योंकि वातावरण व काल के प्रभाव से क्षेत्र में विशिष्ठता आ जाती है। अत: भूमि की गुणधर्मिता के अनुसार भूमि को ३ विभागों में मनीषियों ने विभक्त किया है[१]— १. अनूप २. जांगल ३. मिश्र

१. **अनूपः**— नदी, जलायश, पल्लव (पेड़—पौधे), शैल(पर्वत) युक्त प्रदेश तदा मधुर वायु से एवं ताप (उष्णता) से युक्त, अनेक वनप्रदेश एवं धान्यपूर्ण भूमि से युक्त देश को 'अनूप देश' कहते हैं।[२] अनूप देश 'अधिक जल वाला' क्षेत्र होता है।[३] अत: अनूप देशों में अधिक वर्षा होती है।[४] समान ग्रहयोग होने पर भी विषम वर्षा हो सकती है क्योंकि अनुपादि देशों में काल के प्रभाव से क्षेत्र में बलिष्ठता आ जाती है।[५] यथा मरूदेश अर्थात् राजस्थान

---

१. अनुपो जाङ्गलो मिश्रस्त्रिधा देशो बुधैमर्तः।
तत्तत्स्वभावं विज्ञाय जलवृष्टिं निवेदयेत्।। —वृष्टिप्रवोध पृ. ६ श्लोक २२।

२. नदीपल्लव शैलाढ़यः मृदुवाता तपान्वितः।
अनेकवनशस्याढयः सोऽनूपो देश उच्यते।। —तत्रैव पृ.२३

३. बहूदकस्त्वनूपः स्यात्— कादम्बिनी ४/३४३

४. अनुपे भूयसा वृष्टिः— तत्रैव ३४६

५. ग्रहयोगे समानेऽपि विषमा वृष्टिरिष्यते।
अनुपादिशु देशेषु कालात् क्षेत्रे बलिष्ठता।। तत्रैव३४५

मारवाड़ आदि में दुर्बल या छोटा सा अशुभ योग भी वर्षा को नष्ट कर देता है और अनूप देश में प्रबल अर्थात् जबरदस्त अशुभ योग होने पर भी अल्पवर्षा तो हो ही जाती है।[1] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि वन सम्पदा को नष्ट करने से वृष्टि पूर्णरूपेण प्रभावित होती है, क्योंकि अच्छी वृष्टि के लिए नदी, जलाशय, पर्वत और वनों से समाकीर्ण भूमि ही प्रशस्त होती है। आज तेजी से हो रहे वनसम्पदा का विनाश एवं ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में वृद्धि का दुष्परिणाम धीरे–धीरे सबके समक्ष उपस्थित हो रहा है।

२. **जाङ्गलः**— कम पानी वाला क्षेत्र, तृण युक्त भूमि, प्रचण्ड वायु एवं अधिक आतप अर्थात् उष्णता वाला क्षेत्र तथा बहुत धन धान्यादि से संयुक्त देश 'जाङ्गल देश' कहलाता है।[2] जांगल देश को अल्पजल वाला देश भी कहा जाता है।[3] जांगल देशों में अल्पवर्षा होती है।[4] जाङ्गल देशों में प्रबल वृष्टि योग बनने पर ही अच्छी वर्षा होती है। अशुभ योग बनने पर अनावृष्टि होती है।

३. **मिश्रः**— शीत, उष्ण एवं हवा की समानता वाला (समशीतोष्ण) अर्थात् ये तीनों साधारण रूप में समान हो वह मिश्र देश कहलाता है। यह मिश्र देश जंगल और अनुप देश के गुणधर्म की अधिकता से दो प्रकार का माना गया है।[5] मिश्र देश अनुप व जाङ्गल देशों के लक्षणों के संसृष्टता (मिलाजुला) के कारण साधारण वृष्टि[6] अथवा मध्यमा वृष्टि वाला क्षेत्र होता है। इस प्रकार

१. दुर्बलोऽप्यशुभो योगो यरूदेशे त्ववृष्टिकृत्।
प्रबलोऽप्यशुभो योगोऽनूपदेशेऽल्पवृष्टिकृत्।। तत्रैव ३४७
२. स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवातः प्रचुरतातपः।
स ज्ञेयो जंगलो देशो बहुधान्यादि संयुतः।। —वृष्टि प्रवोध पृ. ६ श्लोक २४
३. स्याज्जाङ्गलोऽल्पजलो मतः —कादम्विनी २/३४३
४. स्वल्पा वृष्टिस्तु जाङ्गले —तत्रैव ३४३
५. मिश्रः साधारणो देशः समशीतोष्णमारूतः।
जाङ्गलानूपधर्माणामाधिम्यात् स द्विधा मतः।। —तत्रैव ३४४
६. संसृष्टलक्षणो यस्तु देशः साधारणो मतः।
समा साधारणे वृष्टिः यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुतः।। —वृष्टि प्रवोध पृ. ७ श्लोक २५

जहाँ उर्वराभूमि, जलाशय, वन, पर्वत आदि होते है वहाँ वायु एवं गर्मी संयमित सन्तुलित होती है। जिस कारण उस भूमि क्षेत्र अर्थात् अनूप देश में अच्छी वृष्टि होती है। अनूप देश का लक्षण भारत देश के उत्तरी क्षेत्र के हिमालयी तराई वाले क्षेत्रों में घटित होता है। जिसमें हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंण्ड, असम आदि वर्तमान प्रदेश है।

जहाँ वृक्षों एवं वनों की अधिकता का अभाव हो अर्थात् जहाँ वनों की कमी हो, जहाँ केवल तृणादिको की उत्पत्ति होती है, वहाँ भीषण गर्मी एवं प्रचण्ड वायु (आंधी) चलती है। उस देश में बहुत धान्य होने पर भी अल्पवृष्टि होती है। उपर्युक्त 'जाङ्गल' देश का लक्षण भारत के सिन्धु–गंगा–यमुना के मैदानी क्षेत्रों में घटित होता है। जिसमें पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, बिहार आदि वर्तमान प्रदेश आते है।

अनुप एवं जाङ्गल देशों के लक्षणों का मिलाजुला स्वरूप मिश्र देश है। जहाँ गर्मी, ठण्ड, वायु एवं वर्षा आदि वर्षभर में प्रायः सम रहती है। मिश्रदेश का लक्षण भारत में मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, दक्षिण भारतीय प्रदेशों पर घटित होता है। इन प्रदेशों में प्रायः मध्यमा वृष्टि होती है। उपर्युक्त देशों के लक्षणों के आधार पर वृष्टि विभाजन वृष्टिप्रबोध में भी निम्न प्रकार से माना गया है–

अनुपे भूयसी वृष्टिः स्वल्पा वृष्टिस्तु जाङ्गले।
मध्यमा मिश्रदेशे तु स्वभावैश्च प्रजायते।।[1]

१. वृष्टिप्रवोध पृ. २६३ श्लोक १४००.

पञ्चम अध्याय

ग्रहचार का वृष्टि पर प्रभाव

सभी प्राणी आहार के आश्रय से ही जीवन धारण करते हैं। आहार की प्राप्ति कृषि से होती है और कृषि वृष्टि पर आश्रित है। वृष्टि के विना मानव जीवन की कल्पना सम्भव नहीं है। कृषि प्रधान हमारे देश में वृष्टि की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए वेदों से लेकर अर्वाचीन काल तक 'वृष्टिविवेचन' को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है। पाराशर मुनि का यह कथन कि- 'सभी प्रकार की खेती के मूल में वर्षा है। यही जीवन का मूल है। अतः सर्वप्रथम प्रयास कर वृष्टि का ज्ञान (पूर्वानुमान) करना चाहिए।'[१] यह अवधारणा वृष्टिविज्ञान के क्षेत्र में भारतीय दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है।

जिस प्रकार पृथ्वी और इसके परिवार मण्डल का मनुष्य के जीवन ,कर्म इत्यादि पर अत्यन्त प्रभाव पडता है उसी प्रकार प्राणियों को जीवन देने वाली वृष्टि पर भी ग्रहों की स्थिति विशेष का प्रभाव पडता है। सभी देशों में एक जैसी वर्षा नहीं होती है। कहीं अतिवृष्टि तो कहीं वृष्ट्यभाव देखा जाता है। कहीं अल्पवृष्टि तो कहीं समुचित वर्षा होती है। अतः हमारे ऋषि-महर्षियों एवं प्राचीनाचार्यो ने वृष्टि के हेतुक बादलों के निर्माण से वर्षण पर्यन्त की सूक्ष्म प्रक्रिया का अध्ययन एवं निरीक्षण करते हुए ग्रहों के चारवश, निमित्तवश इत्यादि प्रकारों से वृष्टि का पूर्वानुमान किया। उनका यह पूर्वानुमान वास्तव में कृषकों

---

१. वृष्टिमूला कृषिः सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत् ।। -कृषिपाराशर १०

के लिए जीवनदायी था। आज भी इन पूर्वानुमानों के आधार पर अधिकांश ग्रामीण कृषक खेती करता है। हमारे ऋषि महर्षियों व प्राचीनाचार्यों द्वारा वर्णित रीति से वृष्टि की भविष्यवाणी आज भी सटीक घटित होती है। प्रस्तुत अध्याय में प्राच्य दृष्टि से ग्रहचार वश वृष्टि पर प्रभाव को निरूपित किया गया है–

१. रविचार से वृष्टिविचार

सूर्य पृथ्वी के जीवन का आधार है। सूर्य के विना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना असम्भव है। अत: वेदों में सूर्य को संसार की आत्मा कहा गया है।[१] वस्तुत: सूर्य ऊष्मा एवं प्रकाश के साथ–साथ पृथ्वी को वर्षारूप में जल भी प्रदान करता है। समुद्र से जल को वाष्परूप में परिणत कर बादलों के रूप में वर्षण सूर्य ही करवाता है। अत: वर्षा का कारक सूर्य ही है, इस प्रकार मनु का वचन[२] वैज्ञानिक तथ्यों पर ही आधारित है। ऋग्वेदसंहिता[३] में भी वृष्टि का कारक सूर्य को ही माना गया है। अत: सूर्य के चारवश (वस्तुत: आभासिक गति) के द्वारा वृष्टि का पूर्वानुमान अधिक युक्तियुक्त एवं समुचित रहता है।

१. अनावृष्टिविचार–

सूर्यबिम्ब से विचार –नारदसंहिता के अनुसार[४] विभिन्न ऋतुओं में सूर्यबिम्ब के रंग के आधार पर अवर्षण का ज्ञान निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

---

१. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च –यजुर्वेद

२. आदित्याज्जायते वृष्टि: –मनुस्मृति ३/७६

३. अपानपातमवसे सवितारमुपस्तुहि। तस्य व्रतान्युश्मसि। –ऋ०सं०१/२२/६

४. अपाण्डुर: स्वर्णवर्णो ग्रीष्मे चित्रो जलागमे।
पाद्मोदराभ: शरदि हेमन्ते लोहितच्छवि:।।
हेमन्ते प्रावृषि ग्रीष्मे रोगाणां वृष्टिभीतिकृत्।। –ना०सं०आदित्यचार/१७–१८

अवर्षणज्ञानचक्र

क्र०	ऋतुनाम	सूर्यबिम्बवर्ण
१	ग्रीष्म	अपाण्डु (श्वेत) अथवा सुवर्ण (सुनहरा)
२	वर्षा	चित्रवर्ण (चितकबरा)
३	शरद	पद्मपराग जैसा वर्ण
४	हेमन्त	लोहितवर्ण

इसी प्रकार वराहमिहिर के मतानुसार भी यदि वर्षाकाल में असितवर्ण (श्यामल) सूर्य हो तो वृष्ट्यभाव होता है।[१] वर्षाकाल में मोरपंख के समान कई रंगों वाला सूर्य दृष्टिगोचर हो तो १२ वर्ष तक वर्षा नहीं होती है।[२] इसी प्रकार नारद[३] एवं गर्ग[४] का भी कथन है।

सूर्यकिरणों से विचार– बृहत्संहिता में सूर्यकिरणों के निरीक्षण के द्वारा भी वृष्टि का पूर्वानुमान किए जाने का वर्णन है। तदनुसार सूर्य की ऊर्ध्व किरणें यदि चित्रवर्ण अथवा धुएं के रंग के समान दिखाई दें तो शीघ्र वृष्टि नहीं होती है।[५] सन्ध्याकाल में टूटी फूटी, असमान मान वाली, टेढी मेढी, विकारयुक्त, रूखी सूखी, पतली, छोटी, मटमैली, अपसव्य जाती हुई सी दृश्यमान किरणें हो तो वर्षा की कमी होती है।[६] इसी प्रकार पीली, गोरी,

---

१. ग्रीष्मे रक्तभयकृद्वर्षास्वसित: करोत्यनावृष्टिम्। –बृ०सं०आदित्यचारा० २६

२. शिखिपत्रनिभ: सलिलं न करोति द्वादशाब्दानि। –तत्रैव २८

३. मयूरपत्रसंकाशो द्वादशाब्दं न वर्षति। ना०सं०आदित्यचार/२०

४. मयूरचन्द्रिकाभो वा यदा भवति भास्कर:।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे तदा वर्षति वासव:।। –उद्धृत अ०सा० पृ०१७

५ चित्रोऽथवापि धूम्रो रविरश्मिव्याकुलं करोत्यूर्ध्वम्।
तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि सलिलं नाशु पातयति।। –बृ०सं० आदित्यचारा० २२

६. दृविच्छिन्नविषमविध्वंस्तविकृतकुटिलापसव्यपरिवृता:।
तनुह्रस्वविकलकलुषाश्च विग्रहाऽवृष्टिदा: किरणा:।। –बृ०सं० सन्ध्यालक्ष० ९

काली या थोडी कपिल वर्ण वाली, विचित्र, गेरुआ, हरा, सांवला रंग लिए हुए सूर्य की किरणें हो तो वर्षा की कमी होती है।[1] मजीठ (गेरुआ) वर्ण की किरणें शस्त्राग्निभय, कपिलवर्ण की किरणें वायुयुक्त वर्षा, राख के रंग की किरणें अवर्षा एवं सफेद, काले, नीले एवं पीले रंग की मिश्रित वर्ण वाली किरणें वर्षा की कमी का पूर्व संकेत देती है।[2]

तामस कीलकादि दर्शन से विचार– सूर्यबिम्ब में तामसकीलकादि (वस्तुत: सूर्य के धब्बे, जो सूर्यमण्डल में होने वाले विस्फोटों द्वारा निर्मित होते हैं।) के दर्शन होने पर भी वृष्टि का पूर्वानुमान प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित है। बृहत्संहिता के अनुसार जिस देश में निरीक्षण करने पर सूर्यबिम्ब के अन्दर तामस कीलकादि के दर्शन होते हैं उस देश में अनेक कष्ट होते हैं। जिनमें अनावृष्टि प्रमुख है। उस देश में गर्भलक्षणयुक्त बादल भी वर्षाकाल में पर्याप्त वर्षा नहीं करते हैं। नदी का जल भी कम हो जाता है।[3] वस्तुत: सूर्यमण्डल में काले धब्बे कदाचित् ही चर्मचक्षुओं से दृष्टिगोचर होते हैं । अत: उनका दर्शन शुभपरिणाम नहीं देता है।

सूर्य के नक्षत्रसंयोग से विचार– वराहमिहिर के मतानुसार प्रवर्षण चन्द्रनक्षत्र में सूर्य, शनि या केतु हो, मंगल के द्वारा उस नक्षत्र से भेद या युति हो रही हो अथवा त्रिविध उत्पातों में से कोई एक उत्पात हो तो वृष्टि नहीं होती

---

१. कल्माषबभ्रुकपिला विचित्रमांजिष्ठहरितशबलाभा:।
त्रिदिवानुबन्धिनोऽवृष्टयेऽल्पभयदास्तुसप्ताहात्।। –बृ०सं० सन्ध्यालक्ष० १२

२. मांजिष्ठाभा: शस्त्राग्निसम्भ्रमं बभ्रव: पवनवृष्टिम्।
भस्मसदृशास्त्ववृष्टिं तनुभावं शबलकल्माषा:।। –तत्रैव १४

३. यस्मिन् यस्मिन् देशे दर्शनमायान्ति सूर्यबिम्बस्था:।
....।।
गर्भेस्वपि निष्पन्ना वारिमुचो न प्रभूतवारिमुच:।
सरितो यान्ति तनुत्वं क्वचित्क्वचिज्जायते सस्यम्।।
– बृ०सं० आदित्यचारा० १२–१६

है।[1]

२. अतिवृष्टि विचार–

प्रतिसूर्य से विचार– बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से सूर्योदय से एक प्रहर के भीतर कोई लघु मेघखण्ड सूर्य के समीप हो तो सूर्यकिरणों से कभी कभी वह मेघखण्ड सूर्य का प्रतिबिम्ब धारण कर लेता है। तब आकाश में दो सूर्य होने का भ्रम सा हो जाता है। इसी मेघखण्ड को प्रतिसूर्य कहते हैं। प्राचीनाचार्यों ने प्रतिसूर्य के निरीक्षण से भी वृष्टिविचार किया है। यदि सूर्य से उत्तर की ओर प्रतिसूर्य हो तो वृष्टिकारक होता है। दक्षिण की ओर होने पर तीव्र वायु चलती है। दोनों ओर उत्तर व दक्षिण में प्रतिसूर्य होने पर अतिवृष्टि होती है।[2] इस विषय में पाराशरमुनि का मत है कि सूर्य के दोनों ओर उत्तर व दक्षिण में प्रतिसूर्य होने पर जलप्लावन करने वाली महावर्षा एवं उत्तर की ओर होने पर अतिवृष्टि होती है।[3]

परिवेष से विचार– सूर्य व चन्द्र की किरणें हवा से मिलकर, बादलों के साथ , साफ आकाश में, जब बहुत थोडे बादल हों तो सूर्य व चन्द्र के चारों ओर प्राय: गोलाकार में एकत्रित हो जाती हैं। इस वृत्त के रंग व आकार भिन्न भिन्न हो सकते हैं। इन्हें परिवेष कहते हैं। परिवेष की आकृति, रंग इत्यादि के आधार पर प्राचीनाचार्यों ने वृष्टिविचार किया है। वराहमिहिर के अनुसार मोर के गले के समान रंगत वाला परिवेष अतिवृष्टि सूचक होता है।[4]

---

१. रविरविसुतकेतुपीडिते भे क्षितितनयत्रिविधाद्भुताहते च।
भवति च न शिवं न चापि वृष्टिः शुभसहिते निरुपद्रवे शिवं च।।
–बृ०सं० प्रवर्षणा० १०

२. दिवसकृत: प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत्।
उभयस्थ: सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ।। –बृ०सं० आदित्यचारा० ३७

३. उभयस्थितो महावर्षाय उत्तरतोऽतिवृष्टिकर:।। –उद्धृत अ०सा० पृ० २८३

४. शिखिगलसमेऽतिवर्षम्। –बृ०सं० परिवेषलक्ष० ६

३. वृष्टि विचार-

सूर्यबिम्बवर्ण से विचार – वर्षाकाल में अति चमकीला सफेद सूर्य तुरन्त वर्षा कारक है। इसी प्रकार वर्षर्तु में शिरीष पुष्प के समान काला-पीला सा रंग वाला सूर्य दिखाई दे तो भी तुरन्त वर्षा होती है।[1]

सूर्यकिरणों से विचार– सफेद व चमकीली, आकाश के ओर छोर को नापती हुई सी, कोमल, अखण्डित स्पष्ट किरणों का नाम 'अमोघ किरण' है जो वर्षा की सूचना देती है।[2]

परिवेष से विचार– जब परिवेष घना, चिकना तथा खुर के समान रंग के बादलों से बना हुआ हो तो शीघ्र वर्षा होती है। इसी प्रकार पीले रंग का परिवेष हो और सूर्य की रोशनी तेज हो तो वह भी शीघ्र वर्षा का संसूचक है।[3]

सूर्य के नक्षत्रसंयोग से विचार– आर्द्रानक्षत्र में सूर्य के प्रवेश करने के दिन का वारेश मेघेश होता है। अत: सूर्य के आर्द्रानक्षत्र में प्रवेश के दिन से वर्षाकाल प्रारम्भ होता है। मेघगर्भधारण के पश्चात् आर्द्रानक्षत्र से विशाखानक्षत्र पर्यन्त सूर्य की स्थिति रहने पर ही गर्भप्रसव होता है।[4]

४. अल्पवृष्टि विचार-

सूर्य के वर्षपतित्व से विचार– प्रतिवर्ष पंचांगपत्रकों में वर्षभर की समष्टिगत शुभाशुभत्व जानने के लिए वर्षपति की कल्पना की जाती है। इसमें ग्रह को वर्षपति बनाकर उसके प्रभाववश शुभाशुभ फलविवेचन किया जाता

---

१. प्रावृट्काले सद्य: करोति विमलद्युतिर्वृष्टिम्।
वर्षाकाले वृष्टिं करोति सद्य: शिरीषपुष्पाभ:।। -बृ०सं० आदित्यचारा० २७-२८

२. शुक्ला: करा दिनकृतो दिवादिमध्यान्तगामिन: स्निग्धा:।
अव्युच्छिन्ना ऋजवो वृष्टिकरास्ते त्वमोघाख्या:।। -बृ०सं० सन्ध्यालक्ष० ११

३. वर्णेनैकेन यदा बहुल: स्निग्ध: क्षुराभ्रकाकीर्ण:।
स्वर्त्तौ सद्यो वर्ष करोति पीतश्च दीप्तार्क:।। -बृ०सं०परिवेषलक्ष० ७

४. आर्द्रादिभे विशाखान्ते सूर्यचारेण वर्षति। -कादम्बिनी गर्भोपक्रमकाला० पौषे १

है। प्राचीन ग्रन्थों में कथित वर्षपति आनयन की विधि[1] से अलग सम्प्रति '*चैत्र शुक्ल प्रतिपदा*' को नवसंवत्सरारम्भ के दिन जो वार हो, उसे ही वर्षपति मान लिया जाता है।

जिस वर्ष का स्वामी अथवा सस्येश सूर्य हो तो उस वर्ष सूर्य अर्धवृष्टि (अल्पवृष्टि) करता है। उस वर्ष मेघ पर्वताकार होते हुए भी पर्याप्त वर्षा नहीं करते हैं, ऐसा नारदमुनि का कथन है।[2] वराहमिहिर का भी ऐसा ही मत है।[3] परन्तु यवनेश्वर के विचार से अनावृष्टि का योग बनता है।[4]

२. चन्द्रचार से वृष्टिविचार

चन्द्र पृथ्वी का निकटतम ग्रह (अर्वाचीन मतानुसार उपग्रह) है। अत: चन्द्र का प्रभाव स्पष्टतया पृथ्वी पर सूर्य के बाद सर्वाधिक पडता है। ज्वार – भाटा इत्यादि पर चन्द्र का प्रभाव प्रत्यक्षत: दृष्टिगोचर होता है। प्राचीनाचार्यों ने चन्द्र को जलतत्त्व प्रधान माना है।[5] अत: वृष्टि के कारकों में चन्द्र भी एक महत्वपूर्ण कारक है। चन्द्र का अपना प्रकाश नहीं होता अपितु वह सूर्य द्वारा प्रकाशित होता है। वेदों में चन्द्र को 'मास' भी कहा गया है।[6] इससे सिद्ध होता है कि चन्द्र मास का निर्माता है अर्थात् मास को चान्द्रमान से ग्रहण करना चाहिए।[7] चान्द्रमास एवं तिथियों की गणना को ही ग्रहण कर प्राचीनाचार्यों ने नक्षत्रादिकों के साथ चन्द्र के संयोग के आधार पर ही मेघगर्भकाल,मेघप्रसवादि

---

१. द्रष्टव्य सूर्यसिद्धान्त, पंचसिद्धान्तिका इत्यादि ग्रन्थ

२. अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा दिवाकर:।
तस्मिन्नब्दे नृपक्रोध: स्वल्पसस्यार्धवृष्टिकृत्।। –ना०सं० आदित्यचारा० ४

३. नात्यम्बुदा जलमुचोऽचल सन्निकाशा:।। –बृ०सं० ग्रहवर्षफला० २

४. अवर्षशुष्कक्षयशस्यसद्य: प्रचण्डवह्न्युग्रशिरोऽक्षिरोग:।। –उद्धृत अ०सा० पृ०२२९

५. सलिलमये शशिनि –बृ०सं० चन्द्रचारा० २

६. सूर्यमासा विचरन्ता दिवि–ऋ०सं०१०/९२/१२, सूर्यमासा मिथ उच्चरात:–तत्रैव १०/६८/१०

७. मासास्तथा च तिथयस्तुहिनांशुमानात् –सि०शि०कालमानाध्याय

का विचार कर वृष्टि का पूर्वानुमान किया है।[1] इस प्रकार चन्द्र का वृष्टि के पूर्वानुमान में अत्यन्त महत्व है। अत: चन्द्रचारवश वृष्टि का विचार भी आवश्यक है।

१. अनावृष्टिविचार–

चन्द्रबिम्बवर्ण से विचार – यदि चन्द्र नीलवर्ण या श्यामवर्ण वाला दिखे अथवा रूखा सा एवं धुएं के अंधेरे से घिरा हुआ सा दिखे तो अनावृष्टि सम्भावित है।[2] इसी प्रकार के लक्षण का फल वराहमिहिर के अनुसार–चन्द्र का रंग यदि राख के समान, रूखा–सूखा, उदयकाल को छोड़कर लाल, किरणों से रहित दिखे या साँवला, खण्डित बिम्ब , कम्पित बिम्ब सा दिखे तो देश में भुखमरी (अनावृष्टि के कारण) फैलती है।[3]

चन्द्रश्रृंगवश विचार – प्राचीनाचार्यो ने चन्द्रश्रृंग की आकृति विशेष के आधार पर चन्द्र को दस संस्थानों में विभक्त किया है– नौसंस्थान, लांगलसंस्थान, दुष्टलांगलसंस्थान, समसंस्थान, दण्डसंस्थान, कार्मुकसंस्थान, युगसंस्थान, पार्श्वशायीसंस्थान, आवर्जितसंस्थान एवं कुण्डसंस्थान । यदि चन्द्र के याम्योत्तर दोनों श्रृंग फैले हुए हों, उसमें भी दक्षिण श्रृंग वाली नोंक थोडी ऊँची हो तो पार्श्वशायीसंस्थान होता है। जो वृष्ट्यभाव करता है।[4]

ग्रह द्वारा बिम्बभेदन से विचार – चन्द्र के साथ जब भौमादि ग्रहों का समागम होता है तब चन्द्रश्रृंग के साथ अथवा चन्द्रबिम्ब के मध्य से भेदयुति

---

१. मेघगर्भकाल– मार्गशिर:सितपक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढाम्।
पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम्।। –बृ०सं०गर्भलक्ष० ६

२. नीले श्यामे च शशिनिरुक्षे धूमतमोवृते ।
अनावृष्टिभयं रोगानग्निवातं विनिर्दिशेत्।। –अ०सा० पृ०३३

३. भस्मनिभ: परुषोऽरुणमूर्ति: शीतकर: किरणै: परिहीण:।

४ श्यामतनु: स्फुटित: स्फुरणो वा क्षुड्डमराभयचौरभयाय।। –बृ०सं० चन्द्रचारा० २९

होती है। बुध द्वारा चन्द्रश्रृंगभेदन से अवृष्टिभय होता है।[१]

चन्द्र के नक्षत्रसंयोग से विचार[२]– ज्येष्ठ शुक्ल में स्वाती, विशाखा, अनुराधा एवं ज्येष्ठा इन चार चान्द्रनक्षत्रों में यदि वर्षा हो जाय तो आगे क्रमशः श्रावण, भाद्रपद, आश्विन एवं कार्तिक में वर्षा की सम्भावना शून्य हो जाती है। परन्तु इनमें वर्षा न होने पर आगे अच्छी वर्षा होती है।[३] इस विषय में घाघ का विचार है कि यदि ज्येष्ठ शुक्ल में आर्द्रा से स्वाती तक धरती भीग जाये तो आगे आषाढ सावन में बिल्कुल वर्षा नहीं होती है किन्तु उक्त समय में वर्षा न होने पर आगे अच्छी वर्षा होती है।[४] वराहमिहिर का मत है कि प्रथम वर्षा का लक्षण आषाढ कृष्ण में पूर्वाषाढा से प्रतिदिन निरीक्षण करके जानना चाहिए। पूर्वाषाढ़ा से प्रारम्भ कर सब नक्षत्रों में वर्षा हो तो शुभ एवं अवर्षा होने पर अशुभ जानना चाहिए।[५]

२. **प्रचुरवृष्टिविचार**–

परिवेष से विचार– सूर्य के परिवेष के समान ही सामान्यतया चन्द्रपरिवेष का भी शुभाशुभत्व होता है। मयूरपक्षी के गले की आभा धारण किया हुआ परिवेष अतिवृष्टि का संसूचक है।[६]

चन्द्र के वर्षपतित्व से विचार– आचार्य वराहमिहिर के मतानुसार

---

१. युगमेव याम्यकोट्यां किंचित्तुंगं स पार्श्वशायीति।
विनिहन्ति सार्थवाहान् वृष्टेश्च विनिग्रहं कुर्यात्।। –तत्रैव १३

२. शशिजेनावृष्टिदुर्भिक्षकृत् – तत्रैव २

३. तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे भचतुष्टये क्रमान्मासाः।
श्रावणपूर्वा ज्ञेयाः परिस्रुता धारणास्ताः स्युः।। –बृ०सं० गर्भधारणा० २

४. जेठ उजारे पाख में आद्रादिक दस रिच्छ।
सजल होय निर्जल कह्यौ निर्जल सजल प्रतच्छ।। –घाघ भड्डरी की कहावतें

५. ज्येष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढादि सम्प्रवृष्टेन।
शुभमशुभं वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तज्ज्ञैः।। –बृ०सं० प्रवर्षणा० १

६. शिखिगलसमेतिवर्षम् –बृ०सं० परिवेषलक्ष० ६

चन्द्र के वर्षेश होने पर अत्यधिक वर्षा होती है।[१] इसी प्रकार यवनेश्वरादि का भी मत है।[२]

३. सुवृष्टिविचार–

चन्द्रबिम्बवर्ण से विचार– यदि चन्द्र स्निग्ध, प्रसन्न, श्वेतवर्ण एवं किरणों से युक्त दिखे तो क्षेम, सुभिक्ष एवं सुवृष्टिकारक होता है।[३]

चन्द्रशृंगवश विचार – चन्द्र के दोनों शृंग समान हो एवं चन्द्रदर्शन के दिन जैसी अवस्था हो (अमावस्या के बाद प्रथम चन्द्रदर्शन के दिन जैसी कुशलता, क्षेम, सुभिक्ष एवं वृष्टि हो), वैसे ही सारे मास तक रहती है।[४]

पूर्वोक्त दस संस्थानों में से चन्द्रशृंगों से कोई भी आकृति न बनती हो और सामान्य भाव से ही चन्द्रोदय हो तब उत्तरशृंग की उन्नति से शुभफल एवं समयानुकूल वर्षा होती है परन्तु दक्षिणशृंग की उन्नति से दुर्भिक्षभय रहता है।[५]

परिवेष से विचार– जब परिवेष घना, चिकना तथा खुर के समान रंग के बादलों से बना हुआ हो तो शीघ्र वर्षा होती है।[६] आचार्य वराहमिहिर का

---

१. व्याप्तं नभः प्रचलिताचलसन्निकाशैर्व्यालांजनालिगवलच्छविभिः पयोदैः।
गां पूरयद्भिरखिलाममलाभिरद्भिरुत्कण्ठितेन गुरुणा ह्यवनितेन चाशाः।।
–बृ०सं०ग्रहवर्ष० ४

२. सम्पन्नशस्याक्षुपसस्यशालिप्ररूढगुल्मो बहुवर्षधारः।
रसौषधिस्नेहपटुप्रसेकचान्द्रो रतिस्त्री सुखवर्धनोऽब्दः।। –उद्धृत अ०सा० पृ० २३०
अन्य– बहुवर्षातिशस्यश्च गवां क्षीरप्रदायकः।
चन्द्राब्दः कामिनामिष्टश्चित्यंकितमहीतलः।। –तत्रैव

३. चन्द्रमाः स्निग्धप्रसन्नो रश्मिवान् श्वेतः क्षेमसुभिक्षवृष्टिकरः।। –तत्रैव पृ०२९

४. समशशिनि सुभिक्षक्षेमवृष्टयः प्रथमदिवससदृशाः स्युः।। –बृ०सं० चन्द्रचारा० ११

५. प्रोक्तस्थानाभावादुदगुच्चः क्षेमवृद्धिवृष्टिकरः।
दक्षिणतुंगश्चन्द्रो दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः।। –तत्रैव १६

६. वर्णेनैकेन यदा बहुलः स्निग्धः क्षुराभ्रकाकीर्णः।
स्वर्त्तौ सद्यो वर्षं करोति पीतश्च दीप्तार्कः।। –बृ०सं०परिवेषलक्ष० ७

अभिमत है कि यदि चन्द्र, उसका निकटवर्ती नक्षत्र एवं चन्द्र समीपवर्ती किसी ग्रह का एक साथ परिवेष हो तो तीन दिनों में वर्षा होती है।[१]

चन्द्र के नक्षत्रसंयोग से विचार– मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से आगे चन्द्र का पूर्वाषाढानक्षत्र से संयोग होने पर मेघगर्भलक्षण का विचार करना चाहिए।[२] घाघ का कथन है कि पूर्वाषाढा चन्द्रनक्षत्र में पूर्वी हवा चले तो इतनी वर्षा होगी, जिससे सूखी नदी में भी नाव चलेगी।[३]

जिस नक्षत्र में चन्द्र के रहने पर गर्भधारणलक्षण प्राप्त होते हैं उस दिन के १९५ सावनदिनों बाद उसी नक्षत्र में चन्द्र के रहने पर वर्षा होती है।[४] पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा एवं रोहिणी इन ५ नक्षत्रों में गर्भलक्षण या गर्भपुष्टिलक्षण दिखने पर वर्षाकाल में खूब वर्षा होती है।[५] इसी प्रकार शतभिषा, आर्द्रा, स्वाती, मघा एवं आश्लेषा इन ५ नक्षत्रों में गर्भलक्षण या गर्भपुष्टिलक्षण दिखने पर बहुत दिनों तक वर्षा होती है।[६]

---

१. वृष्टिस्त्र्यहेण मासेन विग्रहो वा ग्रहेन्दुभनिरोधे। –तत्रैव ११

२. मार्गशिरःसितपक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढाम्।
पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम्।। –बृ०सं०गर्भलक्ष० ६
एवमेव गर्ग– शुक्लादौ मार्गशीर्षस्य पूर्वाषाढाव्यवस्थिते।
निशाकरे तु गर्भाणां तत्रादौ लक्षणं वदेत्।।
कश्यप–सितादौ मार्गशीर्षस्य प्रतिपद् दिवसे तथा।
पूर्वाषाढागते चन्द्रे गर्भाणां धारणं भवेत्।। –तत्रैव अभिनव हिन्दी टीका

३. जो पुरवा लावै पुरवाई। सूखे नद में नाव चलाई।। –घाघ भड्डरी की कहावतें

४. यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात्।
पंचनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ।। –बृ०सं० गर्भलक्षणा० ७

५. भद्रपदाद्वयविश्वाम्बुदेवपैतामहेष्वथर्क्षेषु ।
सर्वेष्वृतृषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवति।। –तत्रैव २८

६. शतभिषगाश्लेषार्द्रास्वातिमघासंयुतः शुभो गर्भः।
पुष्णाति बहून् दिवसान् हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधैः।। –बृ०सं० गर्भलक्षणा०२९

वराहमिहिर ने शतभिषादि उपर्युक्त ५ चान्द्रनक्षत्रों के मार्गशीर्षादि मासों में गर्भलक्षण दृश्यमान होने पर वृष्टिकाल का पूर्वानुमान किया है। तदनुसार यदि उपर्युक्त ५ चान्द्रनक्षत्रों में से किसी एक में मार्गशीर्ष मास में गर्भलक्षण हो तो १९५ दिनोपरान्त ८ दिनों तक वर्षा होती है। पौषमास में इन नक्षत्रों में मेघगर्भ होने पर ६ दिनों तक, माघमास में १६ दिनों तक, फाल्गुनमास में २४ दिनों तक, चैत्रमास में २० दिन तथा वैशाख में ३ दिनों तक वर्षा होती है।[१] ऐसा ही ऋषिपुत्र का भी कथन है।[२]

आषाढ कृष्ण में रोहिणी नक्षत्र के साथ चन्द्र समागम के दिन वायुपरीक्षण, शकुनादि विचार द्वारा भी वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है। इसी प्रकार आषाढ शुक्ल में स्वाती एवं उत्तराषाढा नक्षत्रों से चन्द्र समागम होने पर भी वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है।[३]

३. राहुचार से वृष्टिविचार

राहु आकाश में दृश्यमान न होते हुए भी ग्रह माना गया है। पुराणोक्त अमृतमन्थन की कथानुसार अमृतपान कर लेने के कारण सिर कट जाने पर भी नहीं मरने वाला राहु 'ग्रहरूपता' को प्राप्त हो गया।[४] वही राहु ब्रह्मा जी के वरदान के कारण पर्वकाल (पूर्णिमा व अमावस्या में ग्रहणकाल) में ही दृश्यमान होता है, हमेशा नहीं।[५] कुछ लोग सिंहिकापुत्र राहु को ऐसे सर्पाकृति

---

१. मृगमासादिष्वष्टौ षट् षोडश विंशतिश्चतुर्यक्ता।
विंशतिरथ दिवसत्रयमेकतमर्क्षेण पंचभ्यः।। -बृ०सं० गर्भलक्षणा० ३०

२. माघे षोडशसंख्यास्तु षोडशाष्टौ न फाल्गुने।
विंशतिश्चैत्रमासे तु त्रयश्चेन्द्राग्निदैवते।।
अष्टौ सौम्येथषट् पौषे संख्यास्तु च वर्षति।। -तत्रैव अभिनव हिन्दी टीका

३. द्रष्टव्य यथा बृ०सं० रोहिणीयोगा०, आषाढीयोगा० एवं स्वातियोगा०ळ

४. अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम्।
प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके।। -बृ०सं० राहुचारा० १

५. इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात् किल न दृश्यते गगने ।
अन्यत्र पर्वकालाद्वरप्रदानात कमलयोनेः ।। -तत्रैव २

वाला बताते हैं जिसका मुंह एवं पूंछ के अलावा अन्य अंग नही है। जबकि वशिष्ठादि का मत है कि वह सम्पूर्ण सर्पाकार है। देवलमुनि का कथन है कि राहु अमूर्त, केवल अन्धकारमय है।[1] आचार्य वराहमिहिर के मतानुसार चन्द्रग्रहण का कारण पृथ्वी की छाया है एवं सूर्यग्रहण सूर्यबिम्ब में चन्द्र के प्रविष्ट होने से दिखाई देता है।[2] वस्तुतः आचार्य वराहमिहिर का कथन वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। सूर्य का भ्रमणमार्ग (कल्पित/आभासिक) क्रान्तिवृत्त एवं चन्द्र का भ्रमणमार्ग चन्द्रविमण्डलवृत्त, न तो समानान्तर हैं और न समतलवर्ती। आकाश में अत्यन्त दूरी के कारण दोनों वृत्त दो बिन्दुओं पर एक दूसरे को काटते हुए से लगते हैं। इन दो आभासिक बिन्दुओं को ही चन्द्रपात या राहु—केतु कहा जाता है। इनके निकट चन्द्र के आने पर ही ग्रहण होता है। अतः ग्रहण का कारण प्राचीनाचार्यों ने राहु को मान लिया। अतः गणित एवं परम्परा में समन्वय करते हुए वराहमिहिर का कथन है कि ब्रह्मवर से राहु ग्रहण के समय अपना योगदान देता है एवं उस समय इसका सान्निध्य प्राप्त होता है।[3] इसी प्रकार भास्कर द्वितीय का भी मत है कि ग्रहणकाल में शम्भुवर के कारण चन्द्रग्रहण में भूच्छाया में तथा सूर्यग्रहण में चन्द्र में प्रवेश कर राहु ग्रहण करता है।[4] वस्तुतः भारतीय ज्योतिष में फलदान करने के लिए जो जीवधारियों का ग्रहण कर ले, वही ग्रह है, इस प्रकार का मन्तव्य होने के कारण राहु केतु समेत नवग्रह की अवधारणा है। राहु (चन्द्रपात) के चारवश भी वृष्टि का

---

१. मुखपुच्छविभक्तांगं भुजंगमाकारमुपदिशन्त्यन्ये।
कथयन्त्यमूर्तमपरे तमोमयं सैंहिकेयाख्यम्।। –बृ०सं० राहुचारा० ३

२. भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः।। –तत्रैव ८

३. योऽसावसुरो राहुस्तस्य वरो ब्रह्मणाऽयमाज्ञप्तः।
आप्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता।।
तस्मिन्काले सान्निध्यमस्य तेनोपचार्यते राहुः।
याम्योत्तरा शशिगतिर्गणितेऽप्युपचर्यते तेन ।। –तत्रैव १४–१५

४. राहुः कुभामण्डलगः शशांकं शशांकगश्छादयतीनबिम्बम्।
तमोमयः शम्भुवरप्रदानात् सर्वागमानामविरुद्धमेतत् ।।
–सि०शि० गोला०ग्रहणवासना १०

पूर्वानुमान आचार्यों ने किया है। जिसमें ग्रहण विचार के द्वारा शुभाशुभफलकथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[१]

१. अनावृष्टि विचार-

पर्वेश द्वारा विचार – कल्प के प्रारम्भ से ही ६–६ मास की अवधि के खण्ड को पर्व नाम दिया गया है। ये पर्व ७ हैं। इनके अधिपति क्रमशः ब्रह्मा, चन्द्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण, अग्नि और यम हैं। शकसंवत् के मास बनाकर ७ से भाग देने से शेष से पर्व क्रम संख्या मिलती है। यह शकसंवत् के मासारम्भ में गतपर्वसंख्या होगी। ६ मास व्यतीत होने पर पूर्वोक्त मासों में ६ जोडकर गणना करनी चाहिए।

यथा- शकसंवत् १९३०, मास कार्तिक

१९३० × १२ = २३१६०+६= २३१६६ । २३१६६ ÷ ७ = शेष

३

अतः वर्तमान पर्व इन्द्र हुआ ।

उपर्युक्त ७ पर्वों में से चन्द्रपर्व में ग्रहण होने पर वर्षा में कमी होती है।[२] इसी प्रकार यमपर्व में भी ग्रहण होने पर अवृष्टि होती है।[३] उपर्युक्त पर्वों के अतिरिक्त काल में ग्रहण होने पर भी अवर्षा होती है।[४]

वेलाहीनग्रहण से विचार– काश्यपमुनि का मत है कि पर्व के बिना आये या बीत जाने पर यदि ग्रहण दिखता है तो अनावृष्टि होती है।[५] वराहमिहिर

---

१. षण्मासोत्तरवृद्ध्या पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः।
ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः ।।– बृ०सं० राहुचारा० १९

२. तद्वत्सौम्ये तस्मिन् पीडा विदुषामवृष्टिश्च।। –बृ०सं० राहुचारा० २०

३. याम्यं करोत्यवृष्टिम्।। –तत्रैव २३

४. यदतः परं तदशुभं क्षुन्मारावृष्टिदं पर्व।। –तत्रैव

५. अनागतमतीतं वा ग्रहणे पर्व दृश्यते।
गर्भस्रावमनावृष्टिं फलं पुष्पं विनश्यति।।
–उद्धृत बृ०सं० राहुचारा० २४ अभिनव हिन्दी टीका

के अनुसार वास्तव में हीनवेला या अतिवेला का ग्रहण असम्भव है। यह केवल गणित की अशुद्धि होने पर ही हो सकता है।[१]

ग्रहणकालिक बिम्बवर्ण से विचार– प्रातःकालीन अरुणोदय के समान बिम्बवर्ण हो तो अवृष्टि होती है।[२] इसी प्रकार कबूतरी सलेटी रंग का वर्ण होने पर भी अवर्षा का योग बनता है।[३] धूल के समान बिम्बवर्ण होने पर भी वृष्टि का नाश होता है।[४]

ग्रहणकाल में सूर्य या चन्द्र पर ग्रहदृष्टिवश विचार– यदि ग्रहण के समय सूर्य या चन्द्र पर शनि की दृष्टि होने पर अवृष्टि होती है।[५] परन्तु ग्रस्त सूर्य या चन्द्र पर गुरु की दृष्टि होने पर उपर्युक्त कुफल शान्त हो जाता है।[६]

मासानुसार ग्रहण से विचार– समाससंहिता के अनुसार आश्विन, माघ, कार्तिक व भाद्रपद मासों के अतिरिक्त अन्य मासों में ग्रहण होने पर राहु वर्षा व अन्न का नाशक होता है।[७]

२. ईतिभय विचार–

ईति ६ प्रकार की होती है– अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डीदल, चूहों एवं तोतों द्वारा फसल की बर्बादी तथा बाह्य आक्रमण।[८]

वेलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च।
अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च।। – बृ०सं० राहुचारा० २४

१. तत्रैव २५
२. अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षावृष्ट्यो विहगपीडा। –तत्रैव ५५
३. कापोतारुण –तत्रैव ५६
४. पांशुविलोहितरूपः क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च।। –तत्रैव ५९
५. रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं तस्करभयं च । –तत्रैव ६१
६. यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा ।
सुरपतिगुरुणावलोकिते तच्छममुपयाति जलैरिवाग्निरिद्धः।। –तत्रैव ६२
७. अश्वयुग्माघकार्तिकभाद्रपदेष्वागतः सुभिक्षकरः।
राहुरवशिष्टमासेष्वशुभकरो वृष्टिधान्यम् ।।–स०सं० उद्धृत बृ०सं० अभि०हिन्दी टीका ५/८०
८. संस्कृत हिन्दी कोश (वामन शिवराम आप्टे) पृ०१७९

सूर्य व चन्द्र के ग्रास से विचार– बिम्ब के किनारों पर अधिक गाढी एवं मध्य में अत्यन्त हल्की मलिनता हो तो 'तम' नामक ग्रास होता है जिसमें ईतिभय होता है।[1]

ग्रहणकालिक बिम्बवर्ण से विचार– तोते के समान हरा रंग ग्रहणकालिक बिम्ब का हो तो ईतिभय रहता है।[2]

३. **अतिवृष्टि विचार**–

स्पर्शदिशा से विचार– यदि ग्रहण में पूर्व से स्पर्श हो तो वृष्टि से पृथ्वी पर जलाधिक्य होता है।[3]

सूर्य व चन्द्र के ग्रास से विचार– यदि ग्रहण के समय राहु ,सूर्य या चन्द्र से दक्षिण की ओर हो तो 'सव्य' ग्रास होता है। इसका फल प्रचुरवृष्टि है।[4]

जब सूर्य या चन्द्र का बिम्ब किनारों पर तम से अधिक ढका हुआ तथा मध्य में कम ढका हुआ सा प्रतीत हो, मानों जीभ से चाटा गया हो तो 'लेह' ग्रास होता है। ऐसी अवस्था में भी वर्षा की प्रचुरता रहती है।[5]

४. **अल्पवृष्टि विचार**–

ग्रहणकालिक बिम्बवर्ण से विचार– धुएं के समान बिम्ब का वर्ण हो तो अल्पवृष्टि होती है।[6]

---

१. पर्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये।
सस्यानामीतिभयं भयमस्मिंस्तस्कराणां च ।। –बृ०सं०राहुचारा०५२

२. हरिते रोगोल्बणता सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः। –तत्रैव ५४

३. पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति वसुधां समागतो दैत्यः। –तत्रैव ३४

४. सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयं च। –तत्रैव ४४

५. जिह्वोपलेढि परितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः।
प्रमुदितसमस्तभूता प्रभूततोया च तत्र मही ।। –तत्रैव ४५

६. आधूम्रे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिश्च।। –तत्रैव ५५

मासानुसार ग्रहण से विचार– पौष में ग्रहण होने पर अल्पवर्षा होती है।[1] आषाढ में ग्रहण होने पर वर्ष में कहीं कहीं वर्षा होती है।[2]

मोक्षभेद से विचार– ग्रहण मोक्ष के १० प्रकार वर्णित हैं– १.दक्षिण हनु २. वाम हनु ३.दक्षिण कुक्षि ४.वाम कुक्षि ५.दक्षिण वायु ६.वाम वायु ७. संछर्दन ८.जरण ९.मध्य विदारण १०.अन्त्य विदारण ।[3] नैर्ऋत्य कोण से मोक्ष 'दक्षिण वायु मोक्ष' तथा वायव्य से मोक्ष 'वाम वायु मोक्ष' कहलाता है। दोनों ही अल्पवृष्टिकारक हैं।[4]

ग्रहणोपरान्त एक सप्ताह के उत्पात से विचार– ग्रहण समाप्ति के बाद ७ दिन के अन्दर यदि बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई दे तो आगे वर्षाऋतु में वर्षा की कमी व समयपूर्व ही निष्फल वर्षा होती है।[5] परन्तु ७ दिन के भीतर सामान्य विकाररहित वर्षा हो तो सुभिक्ष व पूर्वोक्त फल निष्फल होते हैं।[6]

५. सामान्य वर्षा विचार–

पर्वेश द्वारा विचार – आग्नेयपर्व में ग्रहण होने पर सामान्य वर्षा होती है।[7]

मोक्षभेद से विचार– मोक्ष के समय जब बिम्ब में पहले पहल चमक दिखे अर्थात् बीच में मोक्ष प्रारम्भ हो तो मध्य विदारण नामक यह मोक्ष

---

१. पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः ससैन्धवाख्याः कुकुरा विदेहाः।
ध्वंस व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं भयं च विन्द्यादसुभिक्षयुक्तम्।। –तत्रैव ७१

२. वदेद् मण्डलवर्षमस्मिन्। –बृ०सं० राहुचारा० ७७

३. तत्रैव ८१

४. नैर्ऋत्यवायव्यस्थौ दक्षिणवामौ तु वायुभेदौ द्वौ।
गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वस्तु राज्ञीक्षयो वामे।। तत्रैव ८६

५. स्तनितं गर्भविनाशनम्। तत्रैव ९३

६. अविकृतसलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम्।
यच्चाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति ।। बृ०सं० राहुचारा० २२

७. अविकृतसलिलनिपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम्।
यच्चाशुभं ग्रहणजं तत्सर्वं नाशमुपयाति।। बृ० सं० राहुचारा० २२

अतिवृष्टि नहीं करता अर्थात् सामान्य वर्षा होती है।[1]

६. **सुवृष्टि विचार-**

सूर्य व चन्द्र के ग्रास से विचार– साँस की भाप से मैले हुए दर्पण के समान जब बिम्ब में मलिनता दिखे तब सुवृष्टिकारक आघ्रात नामक ग्रास होता है।[2]

मासानुसार ग्रहण से विचार– मार्गशीर्षमास में ग्रहण होने पर अच्छी वर्षा का योग बनता है।[3] इसी प्रकार माघ मास में ग्रहण होने पर भी किसानों के अनुकूल वर्षा होती है।[4] समाससंहिता के अनुसार आश्विन, माघ, कार्तिक एवं भाद्रपद में ग्रहण होने पर वर्षा व अन्न की बहुलता रहती है।[5]

मोक्षभेद से विचार– अग्निकोण से ग्रहण का मोक्ष हो तो इसका नाम 'दक्षिण हनु मोक्ष' है। इसमें अच्छी वृष्टि होती है।[6]

४. **भौमचार से वृष्टिविचार**

१. **अनावृष्टिविचार-**

मुखलक्षण से विचार– संहिताग्रन्थों में मंगल के गोचरवश नक्षत्रों में स्थिति विशेष से ५ मुख कहे गये हैं – उष्णमुख, अश्रुमुख, व्यालमुख, रुधिरमुख एवं असिमुशलमुख।[7]

---

१. मध्ये यदि प्रकाशः प्रथमं तन्मध्यविदरण नाम ।
अन्तः कोपकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम्।। -तत्रैव ८९

२. दर्पण इवैकदेशे सवाष्पनिःश्वासमारुतोपहतः।
दृश्येताऽऽघ्रातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः।। -तत्रैव ५०

३. सौम्ये सुवृष्टिकृत् क्षेमसुभिक्षकृच्च । -तत्रैव ७०

४. राहुर्वृष्टिं च कर्षकजनाभिमतां करोति। -बृ०सं० राहुचारा० ७२

५. अश्वयुग्माघकार्तिकभाद्रपदेष्वागतः सुभिक्षकरः।
– उद्धृत बृ०सं० अभि०हिन्दी टीका ५/८०

६. आग्नेयामपगमनं दक्षिणहनुभेदसंज्ञितै शशिनः।
सस्यविमदौ मुखरुग् नृपपीडा स्यात् सुवृष्टिश्च।। – बृ०सं० राहुचारा० ८२

७. यथा द्रष्टव्य बृ०सं० भौमचारा० १–५

वराहमिहिर के मत से मंगल गोचरवश जिस नक्षत्र में रहकर उदय होता है, उस नक्षत्र से १०, ११, १२ वें नक्षत्र में जब वक्री होता है तो उसे अश्रुमुख कहते हैं। इस योग में अनावृष्टि होती है।[१] इसी प्रकार नारदमुनि का भी मत है।[२] गर्ग का कथन है कि इस योग में शुभरसों को वर्षा दूषित करती है अर्थात् अम्लीय वर्षा सम्भावित है।[३] उदयनक्षत्र से १७, १८ वें नक्षत्र में यदि भौम वक्री हो तो वह असिमुशलमुख होता है। इस योग में भी अवृष्टि होती है।[४]

नक्षत्रयोग में उदयवक्र फल से विचार– यदि मघा नक्षत्र की ताराओं में गोचर करता हुआ मंगल वक्री न होकर अपनी सामान्य गति से भ्रमण करता रहे तो अवृष्टिभय होता है।[५] इसी प्रकार विष्णुधर्मोत्तर[६] एवं बृहत् संहिता[७] में भी उल्लिखित है।

मंगल जब रोहिणी, मूल, श्रवण, तीनों उत्तरा (उत्तराषाढा, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपदा) एवं ज्येष्ठा नक्षत्र में कहीं भी गोचर करे तो बादलों

---

१. द्वादशदशमैकादशनक्षत्राद्वक्रिते कुजेऽश्रुमुखम्।
दूषयति रसानुदये करोति रोगानवृष्टिं च।। – बृ०सं० भौमचारा० २

२. दशमैकादशे ऋक्षे द्वादशे वा प्रतीपगे।
वक्रमल्पसुखं तस्मिन् तस्य वृष्टिविनाशनम्।। –ना०सं० भौमचार २

३. दशमैकादशे चापि निवृत्ते द्वादशेऽपि वा।
लोहितांगे ग्रहं ज्ञेयं वक्त्रमश्रुमुखं च तत्।।
तत्र वर्षति पर्जन्ये दूषयन् वैशुभान् रसान्।। –उद्धृत अ०सा० पृ० ९८

४. असिमुशलं सप्तदशादष्टादशतोऽपि वातदनुवक्रे।
दस्युगणेभ्य: पीडां करोत्यवृष्टिं सशस्त्रभयाम्।। – बृ०सं० भौमचारा० ५
अपि च– सप्तदशेऽष्टादशे वा दस्युगणै: प्रजानामुपद्रवमवृष्टिं शस्त्रभयं च। –अ०सा० पृ०१००

५. मघामध्यगतो भौमस्तत्रैव च प्रतीपग:।
अवृष्टिशस्त्रभयद: पाण्डुदेशाधिपांतकृत्।। –ना०सं० भौमचार ८

६. गतागतं तदा कुर्यान्मघामध्येन लोहित:।
तदा भवत्यनावृष्टि: पाण्ड्यो राजा विनश्यति।। –उद्धृत अ०सा० पृ० ९७

७. मध्ये न यदि मघानां गतागतं लोहित: करोति तत:।
पाण्ड्यो नृपो विनश्यति शस्त्रोद्योगाद्भयमवृष्टि:।। –बृ०सं० भौमचारा० ८

का नाश करता है।[1] विष्णुधर्मोत्तर में वर्णित है कि ध्रुवों में, श्रवण, मूल, ज्येष्ठा, कृतिका एवं मघा नक्षत्रों में गोचर करता हुआ मंगल अनावृष्टि करता है।[2]

मंगल के वर्षेशादि होने से विचार– जिस वर्ष भौम राजा, मन्त्री या सस्येश होता है उस वर्ष चोराग्निभय एवं वृष्टिभय (अनावृष्टि) होता है, ऐसा नारदजी का कथन है।[3] वराहमिहिर के मतानुसार भौम के वर्ष, मास या दिन में खूब घटाएँ छाने पर भी कहीं पर वर्षा व कहीं सूखा होता है। पानी अधिक चाहने वाली फसलों का नाश होता है। खडी फसलों को बिजली, असमय वर्षा व अन्य प्राकृतिक उत्पातों से हानि होती है।[4]

२. **अल्पवृष्टिविचार**–

नक्षत्रयोग में उदयवक्र फल से विचार– मंगल रोहिणी नक्षत्र के दक्षिण भाग से गमन करे तो वृष्टि को नियन्त्रित करता है अर्थात् अल्पवृष्टि होती है।[5]

५. **बुधचारवश वृष्टिविचार**

१. **अनावृष्टिविचार**–

बुध के उदय से विचार– जब भी बुध सूर्य रश्मियों से निकलकर उदित होता है, तब उत्पात अवश्य होता है। अर्थात् विना उत्पात के बुध कभी भी उदित नहीं होता। इस काल में अनावृष्टि, अग्निभय, अनर्थ और राजाओं

---

१. प्राजापत्ये श्रवणे मूले त्रिषु चोत्तरेषु शाक्रे च।
विचरन् घननिवहानामुपघातकरः क्षमातनयः।। –बृ०सं० भौमचारा० ११

२. ध्रुवेषु वैष्णवे मूले शाक्रे च विचरन् कुजः।
घोरां करोत्यनावृष्टिं कृतिकासु मघासु च।। –उद्धृत अ०सा० पृ० ९६

३ अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा महीसुतः।
तस्मिन्नब्दे चौरवह्निर्वृष्टिक्षुद्भयकृत्सदा।। –ना०सं० रविचार ६

४. अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽपि मुंचन्ति कुत्रचिदपः प्रचुरं पयोदाः।
सीम्नि प्रजातमपि शोषमुपैति सस्यं निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति।।
–बृ०सं० ग्रहवर्षफला० ८

५. दक्षिणतो रोहिण्याश्चरन्महीजोऽर्घवृष्टिनिग्रहकृत्।। –बृ०सं० भौमचारा० १०

में विग्रह आदि उपद्रव होते हैं।[१] इसी प्रकार का फल वराहमिहिर ने कहा है।[२]

नक्षत्रभेदन से विचार – वराहमिहिर का मत है कि बुध यदि श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा व उत्तराषाढा नक्षत्रों में से किसी का भी भेदन करे तो अवृष्टि होती है।[३] नारद का भी ऐसा ही मत है।[४] आर्द्रा ,पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा एवं मघा इन नक्षत्रों में स्थित होकर यदि बुध किसी का भी भेदन करे तो अनावृष्टि भय होता है।[५]

बुध की गतियों से विचार– नक्षत्रों में बुध के गोचर के आधार पर पराशरमुनि ने बुध की ७ गतियाँ बताई हैं।[६]

क्र०	गतिनाम	नक्षत्रों में स्थित बुध
१	प्राकृत	स्वाती, भरणी, रोहिणी, कृतिका।
२.	विमिश्र	मृगशिरा, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा।
३.	संक्षिप्त	पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी।
४.	तीक्ष्ण	पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी, रेवती
५.	योगान्तिक	मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा।
६.	घोर	श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा।
७.	पाप	हस्त, अनुराधा, विशाखा।

१. विनोसालेन शशिजः कदाचिन्नोदयं व्रजेत्।
अनावृष्ट्यग्निभयकृदनर्थ नृपविग्रहम्।। -ना०सं० बुधचार १

२. नोत्पातपरित्यक्तः कदाचिदपि चन्द्रजो व्रजत्युदयम्।
जलदहनपवनभयकृद् धान्यार्घक्षयविवृद्ध्यै वा ।। -बृ०सं० बुधचारा० १

३. विचरन् श्रवणधनिष्ठाप्रजापत्येन्दुवैश्वदेवानि।
मृदुनन् हिमकरतनयःकरोत्यवृष्टिं सरोगभयाम्।। -तत्रैव २

४. वसुश्रवणविश्वेन्दुधातृभेषु चरन् बुधः।
भिनत्ति यदि तत्तारामवृष्टिव्याधिभीतिकृत्।। - ना०सं० बुधचार २

५. रौद्रादीनि मघान्तान्युपाश्रिते चन्द्रजे प्रजापीडा।
शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः।। - बृ०सं० बुधचारा० ३

६. तत्रैव ९-१२

उपर्युक्त तीक्ष्ण, योगान्तिक, घोर एवं पाप गतियों का फल अनावृष्टि है।[१]

ग्रहयुद्ध में पराजित बुध से विचार– यदि बुध को शुक्र पराजित करे तो अग्निभय, सस्य हानि, बादलों का विनाश (अवृष्टि) एवं यायी राजाओं की हानि होती है।[२]

२. **अल्पवृष्टि विचार**–

बुध की गतियों से विचार– विमिश्र एवं संक्षिप्त गति का फल मिश्रित अर्थात् अल्पवृष्टि होता हैं।[३]

बुध के वर्षेश होने पर विचार– जिस वर्ष बुध राजा, वर्षपति या सस्येश होता है उस वर्ष अतिवायु, स्वल्पवृष्टि एवं नृपविग्रह होता है।[४]

३. सुवृष्टि विचार–

बुध की गतियों से विचार– प्राकृत गति का फल सुवृष्टि है।[५]

६. **गुरुचारवश वृष्टिविचार**

१. **अनावृष्टिविचार**–

बृहस्पतिवर्ष से विचार– जिस नक्षत्र में गुरु का उदय होता है, उसी नक्षत्र के आधार पर कार्तिकादि वर्ष गुरु के महावर्ष कहलाते हैं। इन वर्षों का क्रम कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौषादि क्रम से मासों के अनुसार ही होता है। यह

---

१. बृ०सं० बुधचारा० १४

२. भृगुणा जितेऽग्निकोप: सस्याम्बुदयायिविध्वंस:।। –बृ०सं० ग्रहयुद्धा० १७

३. संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रम्।। –बृ०सं० बुधचारा० १४

४. अब्देश्वरश्च भूपो वा सस्येशो वा शशांकज:।
अतिवायु स्वल्पवृष्टिं करोति नृपविग्रहम्।। –ना०सं०रविचार ७

५. प्राकृतगत्यामारोग्यवृष्टिसस्यप्रवृध्य: क्षेमम्।। –बृ०सं० बुधचारा० १४

प्रभवादि संवत्सरों से भिन्न है।[1] यह व्यवस्था सम्प्रति व्यवहार में नहीं है। वराहमिहिर के मत से उपर्युक्त कार्तिकादि वर्षों में द्वितीय वर्ष मार्गशीर्ष महावर्ष है। इसमें अनावृष्टि होती है।[2] ऐसा ही कथन नारद[3] एवं विष्णुधर्मोत्तर[4] का भी है। फाल्गुनवर्ष में कहीं पर अच्छी वर्षा एवं कहीं पर अवृष्टि होती है।[5]

गुरु के बिम्बवर्ण से विचार— गुरु के दृश्यमान वर्णों के अनुसार उनका पृथक्— पृथक् फल होता है। यदि गुरु धुएँ के रंग के समान दिखता है तो अनावृष्टि होती है।[6] नारदमुनि का मत भी इसी प्रकार का है।[7]

१२ युगों के अनुसार विचार— प्रथम युग में प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद एवं प्रजापति वत्सर होते हैं। इनमें से प्रभव संवत्सर में कहीं कहीं अवृष्टि होती है।[8]

२. अल्पवृष्टिविचार—

बृहस्पतिवर्ष से विचार— वराहमिहिर के मतानुसार चैत्रवर्ष में अल्पवृष्टि होती है।[9] नारद के विचार से इस वर्ष मध्यमवृष्टि होती है।[10]

---

१. नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमन्त्री।
तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ।। -बृ०सं० बृहस्पतिचारा० १

२. सौम्येऽब्देऽनावृष्टिर्मृगाखुशलभाण्डजैश्च सस्यवधः। -तत्रैव ४

३. अनावृष्टिसौम्ये वर्षे मृगाखुशलभाण्डजैः।। -ना०सं० गुरुचार ३

४. सौम्यरौद्रोपगे जीवे सौम्यं वर्षमुदाहृतम्।
ईतयः सकलास्तत्र अनावृष्टिभयं तथा।। -उद्धृतं अ०सा० पृ० ११३

५. फाल्गुनवर्षे विन्द्यात् क्वचित्क्वचित्क्षेमवृष्टिसस्यानि।- बृ०सं० बृहस्पतिचारा० ७
नारद- क्वचिद्वृष्टिः क्वचित्सस्यं क्वचिदवृद्धिश्चफाल्गुने। - ना०सं० गुरुचार ६

६. धूमाभेऽनावृष्टिस्त्रिदशगुरौ। - बृ०सं० बृहस्पतिचारा० १८

७. अनावृष्टिः धूम्रनिभः करोति सुरपूजितः।। -ना०सं० गुरुचार १७

८. बृ०सं० बृहस्पतिचारा० २८

९. चैत्रे मन्दा वृष्टिः। - बृ०सं० बृहस्पतिचारा० ८

१०. चैत्रेऽब्दे मध्यमा वृष्टिः । - ना०सं० गुरुचार ७

राशिचारवश विचार– गुरु के वृश्चिकराशि में प्रवेश करने पर अल्पवृष्टि होती है।[1] इसी प्रकार गुरु के धनुराशि में प्रवेश करने पर भी अल्पवृष्टि होती है।[2] गुरु के कुम्भ[3] एवं मीन[4] राशि में प्रवेश करने पर अर्धवृष्टियोग बनता है। जबकि गुरु के मिथुनराशि में प्रवेश करने पर मध्यमवृष्टि होती है।[5]

वेदांगयुगमान से विचार– वेदांग ज्योतिष के अनुसार ५ संवत्सरों का एक युग होता है। वे हैं– संवत्सर , परिवत्सर , इदावत्सर , अनुवत्सर एवं इद्वत्सर। इनके स्वामी क्रमश: अग्नि, सूर्य, चन्द्र, प्रजापति एवं शिव हैं। प्रभवादि ६० संवत्सरों में ५–५ वर्षों का क्रमश: एक युग, इस प्रकार १२ युग होते हैं। जिनके अधिपति क्रमश: विष्णु, गुरु, इन्द्र, अग्नि, त्वष्टा, अहि–बुध्न्य, पितर, विश्वदेव, सोम, इन्द्राग्नी, अश्विनीकुमार और भग हैं।[6] उपर्युक्त संवत्सरों में इद्वत्सर में अल्पवर्षा होती है।[7]

१२ युगों के अनुसार विचार– नवम युग में प्लवंग, कीलक, सौम्य, साधारण एवं रोधकृत् (विरोधी) वत्सर होते हैं। जिनमें से साधारण वत्सर में

---

१. मदोक्षतानां भूपानां युश्चे जनपदक्षय:।
अतुष्टा वृष्टिरत्युग्रं डामरं कीटगे गुरौ।। -तत्रैव २७

२. जीवे चापगते भीतिरिति भूपभयं महत्।
अतुष्टा वृष्टिरत्युग्रा पीडा नि:स्वा: क्षितीश्वरा:।। -तत्रैव २८

३. सुरस्पर्ध्विजना धात्री फलपुष्पार्धवृष्टिभि:।
सम्पूर्णा कुम्भगते जीवे वीतरोगयुताधरा।। -तत्रैव ३०

४. धान्यार्धवृष्टिसंपूर्णा क्वचिद्रोग: क्वचिद्भयम्।
न्यायमार्गरता: भूपा सर्वे मीनस्थितो गुरौ।। -तत्रैव ३१

५. मध्यावृष्टि: सस्यहानि नृपाणां समरं महत्।
जनानां भीतिरीतिश्च नृपाणां दारुणं रणम्।।
विप्रपीडा मध्यवृष्टि: सस्यवृद्धिस्तृतीयभे।। -तत्रैव २२

६. बृ०सं० बृहस्पतिचारा० २३-२४

७. स्वल्पोदकं पंचमब्दमुक्तम्। -तत्रैव २५

अल्पवृष्टि एवं ईतिभय रहता है। जबकि विरोधी वत्सर में विचित्र जल बरसता है अर्थात् कहीं छिटपुट वर्षा, कहीं खूब वर्षा व कहीं वृष्ट्यभाव, इस प्रकार से अनेक प्रकार की वृष्टि होती है।[१]

३. प्रचुर एवं सुवृष्टि विचार–

बृहस्पतिवर्ष से विचार– वराहमिहिर के मतानुसार माघवर्ष में समयानुसार वृष्टि होती है।[२] इसी प्रकार नारदादि मुनियों का भी कथन है।[३] आश्विनमहावर्ष में भी सभी प्राणी सन्तुष्ट रहते हैं तथा लगातार खूब वर्षा होती है।[४]

वेदांगयुगमान से विचार– संवत्सर में समवृष्टि, परिवत्सर के प्रथम भाग (वर्षाऋतु में श्रावण–भाद्रपद) में वृष्टि, बाद में अभाव, इदावत्सर में

---

१. आद्यः प्लवंगो नवमे युगेऽब्दः स्यात् कीलकोऽन्यः परतश्च सौम्यः।
साधारणो रोधकृदित्यथैवं शुभप्रदौ कीलकसौम्यसंज्ञौ।।
कष्टः प्लवंगो बहुशः प्रजानां साधारणोऽल्पं जलमीतयश्च।
यः पंचमो रोधकृदित्यथाब्दश्चित्रं जलं तत्र च सस्य सम्पत्।। –तत्रैव ४३–४४

२. पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम्।
आरोग्यवृष्टिधान्यार्घसम्पदो मित्रलाभश्च ।। –तत्रैव ६

३. नारद– माघेऽब्दे सततं सर्वे पितृपूजनतत्पराः।
सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वृष्टिःकर्षकसम्मता।। –ना०सं० गुरुचार ५
वृद्धगर्ग– आश्लेषां च मघां चैव चरेद्यदि बृहस्पतिः।
माघसंवत्सरः स स्यात् सर्वभूतहितोदयः।।
सम्यग्वर्षति पर्जन्यः शस्यमुत्तमतां भजेत्।
क्षेमारोग्यसुभिक्षाणि प्रजाधर्मकरी तदा।।–उद्धृत अ०सा० पृ ११५
विष्णुधर्मोत्तर – सार्पपित्रोपगे जीवे पित्र्यंवर्षमुदाहृतम्।
हार्दिवृष्टिप्रदं लोके विश्वसौभिक्षकारकम्।।–तत्रैव

४. अश्वयुजेऽब्देऽजस्रं पतति जलं प्रमुदिता : प्रजाः क्षेमम्।। – बृ०सं० बृहस्पतिचारा० १४
सुवृष्टिः सर्वसस्यानि फलितानि भवन्ति च।
भवन्त्याश्वयुजे वर्षे सन्तुष्टाः सर्वजन्तवः ।। – ना०सं० गुरुचार १४

प्रचुरवृष्टि तथा अनुवत्सर में विलम्ब से बाद के मासों (आश्विन–कार्तिक) में वर्षा होती है।[1]

१२ युगों के अनुसार विचार– द्वितीय युग में अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, एवं सुधाता वत्सर होते हैं। इनमें प्रथम तीन में समयानुकूल वर्षा एवं अन्तिम दो में सुवृष्टि होती है।[2] चतुर्थ युग में चित्रभानु, सुभानु, नत, तारण एवं व्यय वत्सर हैं। जिनमें तारण में प्रचुरमात्रा में वर्षा होती है।[3] सप्तम युग में हेलम्ब, विलम्बी, विकारी, शर्वरी एवं प्लव संवत्सर हैं। इनमें हेलम्ब में ईतिभय, तीव्र हवा एवं बहुत वर्षा होती है। विलम्बी में प्रचुर वृष्टि का अभाव, विकारी में प्रचुरवृष्टि, शर्वरी में दुर्भिक्ष तथा प्लव में प्रचुरवृष्टि होती है।[4] ग्यारहवें युग में पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थी, रौद्र एवं दुर्मति वत्सर होते हैं। इनमें पिंगल में बहुत व्यापक वर्षा तथा दुर्मति में मध्यम वृष्टि होती है।[5] बारहवें युग में दुन्दुभि, अंगार या उद्गारी, रक्ताक्ष, क्रोधन एवं क्षय वत्सर हैं। जिनमें अंगार वत्सर में विषम वृष्टि (कहीं सूखा कहीं बाढ़) होती है।[6]

राशिचारवश विचार– गुरु के मेषराशि में प्रवेश करने पर ईतिभय

---

१. वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वितीये प्रभूततोया कथिता तृतीये।
पश्चाज्जलं मुंचति यच्चतुर्थस्वल्पोदकं पंचमब्दमुक्तम्।।–
बृ०सं० बृहस्पतिचारा० २५

२. त्रिष्वाद्येषु वर्षेषु निकामवर्षी देवो निरातंकभयश्च लोकः।
अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः किन्त्वत्ररोगाःसमरागमश्च।।
बृ०सं० बृहस्पतिचारा० ३१-३२

३. तारणं तदनुभूरिवारिदम् ।– तत्रैव ३६

४. ईति प्राया प्रचुरपवना वृष्टिरब्दे तु पूर्वे
मन्दं सस्यं न बहु सलिलं वत्सरेऽतो द्वितीये।
अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः स्यात्तृतीयश्चतुर्थो
दुर्भिक्षाय प्लव इति ततः शोभनो भूरितोयः।। – तत्रैव ३९-४०

५. तत्रैव ४८ – ४९

६. अंगारसंज्ञं तदनुक्षयाय नरेश्वराणां विषमा च वृष्टिः।। –तत्रैव ५०

रहता है।[१] वृषराशि में गुरु के जाने पर किसानों के लिए अपेक्षित वृष्टि होती है।[२] इसी प्रकार कर्कराशि में बृहस्पति के संचरण करने पर भी कृषि हेतु अपेक्षित वर्षा होती है।[३] गुरु द्वारा कन्या[४], तुला[५] एवं मकर[६] राशियों में प्रवेश करने पर भी समुचित वर्षा होती है। जब गुरु सिंहराशि में प्रवेश करता है तो अतिवृष्टियोग बनाता है।[७]

बृहस्पति के वर्ष के फल से विचार—गुरु के शुभवर्षों में वर्षा प्रचुर एवं समयानुकूल होती है।[८] इसी प्रकार गुरु के वर्षेश होने पर भी शुभ फल समझना चाहिए।

७. शुक्रचारवश वृष्टिविचार

१. प्रचुर वृष्टि विचार-

मण्डलगत शुक्र द्वारा विचार—नक्षत्रों में शुक्रचार के आधार पर प्राचीनाचार्यों ने ६ मण्डलों की परिकल्पना की है।[९]

---

१. मेषराशिगते जीवेत्वीतिर्मेषविनाशनम्। -ना०सं० गुरुचार २०

२. सस्यवृद्धिप्रजारोग्यं वृष्टि: कर्षकसम्मता।
वृषराशिगते जीवे शिशुस्त्री पशुनाशनम्।। -तत्रैव २१

३. प्रभूतपयसो गाव: सुजना: सुखिन: स्त्रिय:।
मदोद्धता: कर्किणीज्ये सस्यवृद्धियुता धारा ।। -तत्रैव २३

४. जीवे कन्यागते वृष्टि: हृष्टा: स्वस्था: क्षितीश्वरा:। -तत्रैव २५

५. जीवे तुलागते सर्वं धातुमूलातुलं जगत्।
तथापि धात्री सम्पूर्णा धनधान्यसुवृष्टिभि:।। -तत्रैव २६

६. अशत्रवो जना धात्री पूर्णा सस्यार्थवृष्टिभि:।
वीतरोगभया: सर्वे मकरस्थे सुरार्चिते।। -तत्रैव २९

७. सिंहराशिगते जीवे निस्वा: भूसुरसत्तमा।
अतिवृष्टिर्व्यालभयं नृपा युद्धे लयं ययु: ।। -तत्रैव २४

८. विविधैर्वियदुन्नतै: पयोदैर्वृतमुर्वी पयसाभिर्तर्पयद्भि:।
सुरराजगुरो: शुभे तु वर्षे बहुसस्या क्षितिरुत्तमर्द्धियुक्त:।।
-बृ०सं० ग्रहवर्षफला० १५

९. बृ०सं० शुक्रचारा० १०-२१

क्र०	मण्डल	नक्षत्र
१.	प्रथम	भरणी, कृतिका, रोहिणी, मृगशीर्ष
२.	द्वितीय	आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा
३.	तृतीय	मघा, पू०फा०, उ०फा०, हस्त, चित्रा
४.	चतुर्थ	स्वाती, विशाखा, अनुराधा
५.	पञ्चम	ज्येष्ठा, मूल, पू०षा०, उ०षा०, श्रवण
६.	षष्ठ	धनिष्ठा, शतभिषा, पू०भा०, उ०भा०, रेवती

इन मण्डलों में द्वितीय मण्डल में शुक्र की गोचरवश स्थिति प्रचुरवर्षा कारक होती है।[1]

नक्षत्रचारवश विचार– आर्द्रानक्षत्र में शुक्र हो या भेदन करे तो अत्यन्त वर्षा होती है।[2] इसी प्रकार पुष्यनक्षत्रगत शुक्र भी बहुत वर्षा करता है[3] परन्तु यह वर्षा फसलों की पुष्टिकारक होती है।[4] यदि शुक्र मघा नक्षत्र का भेदन (मघा के योगतारे एवं शुक्र की भेद युति) करे तो प्रचुरवृष्टि होती है।[5] इसी प्रकार पूर्वफाल्गुनी एवं उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रों[6] में शुक्रचारवश अत्यधिक वर्षा होती है। स्वातिनक्षत्र में भी शुक्र की स्थिति होने पर प्रभूतवृष्टि होती है।[7]

१. भचतुष्टयमार्द्राद्यं द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्यै। –तत्रैव १२

२. आर्द्रागतस्तु कोशलकलिंगहा सलिलनिकरकरः। –तत्रैव २६

३. पुष्ये पुष्टा वृष्टिर्विद्याधररणविमर्दश्च। –तत्रैव २७

४. पुष्ये वृष्टिमाख्याति पुष्टां शस्यविवृद्धये। –उद्धृत अ०सा० पृ० १२९

५. भिन्दन् मघां महामात्रदोषकृद् भूरिवृष्टिकरः। बृ०सं० शुक्रचारा० २८

अन्य– मघायां तु गते घोरं भयं विन्द्यात् तु भार्गवे।
सलिलं च भवेद्भूरि येन धात्री न दृश्यते।। –उद्धृत अ०सा०पृ०१२९

६. भाग्ये शबरपुलिन्दप्रध्वंसकरोऽम्बुनिवहमोक्षाय।
आर्यम्णे कुरुजांगलपांचालघ्नः सलिलदायी।। – बृ०सं० शुक्रचारा० २९

७. स्वातौ प्रभूतवृष्टिर्दूतवणिग्नाविकान् स्पृशत्यनयः।। –तत्रैव ३१ पूवार्द्धे

शुक्र के उदयास्ततिथि से विचार– यदि कृष्णपक्ष की ८, १४ एवं ३० तिथियों को शुक्र का उदय या अस्त हो तो अत्यधिक वर्षा होती है।[१]

२. **सुवृष्टिविचार**–

नक्षत्रचारवश विचार– जब शुक्र विशाखा में प्रवेश करता है तो उत्तम वृष्टि होती है।[२] इसी प्रकार पूर्वा भाद्रपद में भी शुक्र की स्थिति होने पर समुचित वर्षा होती है।[३] चित्रा में शुक्र के रहने पर भी सुन्दरवृष्टि होती है।[४]

वीथीवश विचार– यदि शुक्र नागवीथी, गजवीथी एवं ऐरावतवीथी में रहता है तब सुन्दरवृष्टि होती है।[५]

शुक्र के आगे भौमादिग्रहों के होने से विचार– शुक्र के आगे बुध हो और वह उदित हो या अस्त, प्रत्येक अवस्था में वृष्टिप्रदायक होता है।[६] शुक्र के आगे गुरु के रहने पर बादलों से प्राय: ओले गिरते हैं।[७]

शुक्र के वर्ष से विचार– शुक्र के वर्ष में खूब यथोचित वर्षा होती है।[८] इसी प्रकार का फल शुक्र के राजा, मंत्री अथवा सस्येश होने पर समझना चाहिए।

---

१. चतुर्दशीं पंचदशीं तथाष्टमीं तमिस्रपक्षस्य तिथिं भृगो: सुत:।
यदा व्रजेत् दर्शनमस्तमेति वा तदा मही वारिमयीव लक्ष्यते।।
– बृ०सं० शुक्रचारा० ३६

२. ऐन्द्राग्नेऽपि सुवृष्टिर्वणिजां च भयं विजानीयात्।। –तत्रैव उत्तरार्धे

३. चास्मिन् सित: सलिलम्।– तत्रैव ३४

४. कूपकृदण्डजपीडा चित्रास्थे शोभना वृष्टि:।। तत्रैव ३० उत्तरार्धे

५. सौम्यमार्गेषु तिसृषु चरन् वीथिषु भार्गव:।
धान्यर्घवृष्टिसस्यानां परिपूर्तिं करोति स:।। –ना०सं० शुक्रचार ३

६. सौम्योऽस्तोदययो: पुरो भृगुसुतस्यावस्थितस्तोयकृद्। –तत्रैव ४३

७. बृहस्पतौ हन्ति पुरस्थिते सित: सित समस्तं द्विजगोसुरालयान्।
दिशं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा गले गदा भूरि भवेच्च शारदम्।। –तत्रैव ४२

८. शालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधराभधाराधरोज्झितपय: परिपूर्णवप्रा।।
–बृ०सं० ग्रहवर्षफला० १६

३. अनावृष्टिविचार–

नक्षत्रचारवश विचार– शुक्र जब हस्तनक्षत्र में प्रवेश करता है तो वृष्टि का अभाव होता है।[१] इसी प्रकार अनुराधा, ज्येष्ठा एवं मूल में भी शुक्र की स्थिति होने पर अनावृष्टि होती है।[२]

गुरु शुक्र के सन्ध्या समसप्तक योग से विचार– गुरु व शुक्र दोनों ही यदि परस्पर पूर्व व पश्चिम में हो अर्थात् दोनों एक दूसरे से सप्तमराशि में स्थित होकर समसप्तक योग बनाते हों तो अनावृष्टि होती है।[३]

शुक्र के आगे भौमादिग्रहों के होने से विचार – जिस समय मंगल, बुध, गुरु एवं शनि ये सब ग्रह शुक्र से राशिचक्र में आगे हों तो अल्पवर्षा भी नहीं होती है।[४] शुक्र से आगे केवल भौम के होने से भी अनावृष्टि होती है।[५]

शुक्रवर्ण से विचार– यदि शुक्र राख के समान रंग वाला हो अथवा उसका बिम्ब रूखा या काला हो तो अनावृष्टि होती है।[६]

पराजित शुक्र से विचार– यदि शुक्र ग्रहयुद्ध में गुरु से परास्त हो

---

१. कौरवचित्रकराणां हस्ते पीडा जलस्य च निरोधः।
–बृ०सं० शुक्रचारा० ३०पूर्वार्ध

२. मैत्रे क्षत्रविरोधो ज्येष्ठाय क्षत्रमुख्यसन्तापः।
मौलिकभिषजां मूले त्रिस्वपि चैतेष्वनावृष्टिः।। –तत्रैव ३२

३. गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः परस्परं सप्तमराशिगौ यदा।
तदा प्रजा रुग्भयशोकपीडिता न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोझितम्।। –तत्रैव ३७
नारद– मिथः सप्तराशिस्थौ पश्चात् प्राग्वीथिसंस्थितौ।
गुरुशुक्रावनावृष्टिर्दुर्भिक्षमरणप्रदौ।। –ना०सं० शुक्रचार ७–८

४. यदा स्थिता जीवबुधारसूर्यजाः सितस्य सर्वेऽग्रपथानुवर्तिनः।
न चाल्पमप्यम्बु ददाति वासवो भिनति वज्रेण शिरांशि भूभृताम्।।
– बृ०सं० शुक्रचारा० ३८–३९

५. निहन्ति शुक्रः क्षितिजेऽग्रतः प्रजां हुताशशस्त्रक्षुद्वृष्टितस्करैः।। –तत्रैव ४१

६. पतति न सलिलं खाद्भस्मरूक्षासिताभे।। –तत्रैव ४४

जाय तो वर्षा नहीं होती है।[1]

४. **अल्पवृष्टिविचार** -

पराजित शुक्र से विचार– यदि शुक्र ग्रहयुद्ध में बुध से परास्त हो जाय तो अल्पवर्षा होती है।[2]

८. **शनिचारवशवृष्टिविचार**

१. **अतिवृष्टिविचार**– श्रवण, हस्त, स्वाति, आर्द्रा, भरणी एवं पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्रों में स्थित शनि यदि स्वच्छ जल वाला हो तो धरती पर खूब जल बरसता है।[3]

२. **सुवृष्टिविचार**– आश्लेषा, शतभिषा एवं ज्येष्ठा इन नक्षत्रों में स्थित शनि सामान्य शुभ वृष्टि करता है।[4]

३. **अनावृष्टिविचार**– जब शनैश्चर मूल नक्षत्र में प्रवेश करता

---

१. शुक्रे बृहस्पतिजिते यायी श्रेष्ठो विनाशमुपयाति।
ब्रह्मक्षत्रविरोधः सलिलं च न वासवस्त्यजति।। -बृ०सं० ग्रहयुद्ध २१

२. सौम्येन पार्वतीयाः क्षीरविनाशोऽल्पवृष्टिश्च।। -तत्रैव २३

३. श्रवणानिलहस्तार्द्रभरणीभाग्योपगः सुतोऽर्कस्य।
प्रचुरसलिलोपगूढां करोति धात्रीं यदि स्निग्धः।। -बृ०सं० शनैश्चरचारा० १
नारद- श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणीभाग्यभेषु च।
चरन् शनैश्चरो नर्णां सुभिक्षारोग्यसस्यकृत्।। -ना०सं० शनिचार १
अन्य- याम्यवायव्यसावित्ररौद्रश्रवणसंस्थितः।
भवेत् स्निग्धवपुः सौरोभाग्ये चैवातिवर्षदः।। -अ०सा० पृ० १४१

४. अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमकृन्न चाति जलम्।
- बृ०सं० शनैश्चरचारा० २ पूर्वार्ध
नारद- जलौशसार्पमाहेन्द्रनक्षत्रेषु सुभिक्षकृत्।।- ना०सं० शनिचार २
अन्य- सार्पवारुणमाहेन्द्रनक्षत्रेषु च संस्थितः।
स्निग्धः सौरः क्षेमकरो नातिवर्षं प्रमुंचति।। -अ०सा० पृ० १४१

है तो दुर्भिक्ष एवं अनावृष्टि होती है।[1]

४. **अल्पवृष्टिविचार**– शनि के वर्ष में आकाश में बादलों की कमी होती है। अल्पवृष्टि होती है। साथ ही कहीं कहीं पर वर्षा की अनियमितता के कारण फसलें नष्ट होती हैं। इस प्रकार असमान वर्षा होती हैं।[2]

---

१. क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले । – बृ०सं० शनैश्चरचारा० २ उत्तरार्ध

नारद – क्षुत् शस्त्रावृष्टिदोर्मूले। – ना०सं० शनिचार २

अन्य – क्षुच्छस्त्रावृष्टिदोमूलं सूर्यपुत्रः समाश्रितः।। – अ०सा० पृ० १४१

२. वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्ष–मारुग्णनैकविटपं च धरातलं द्यौः।
नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनद्धा तोयाशयाश्च विजलाः सरितोऽपि तन्व्यः।।
जातानि कुत्रचिदतोयतया विनाश–मृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि।
सस्यानि मन्दमभिवर्षति वृत्रशत्रुः वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते।।
–बृ०सं० ग्रहवर्षफला० २०–२१

षष्ठ अध्याय

वृष्टि

लक्षण

''वृषु सेचने' इस धातु से ''स्त्रियां क्तिन्'' इस सूत्र से क्तिन् प्रत्यय करने पर वर्षण अर्थ में वृष्टि शब्द निष्पादित होता है।[1] कूर्मपुराण के अनुसार सूर्य की किरणों से पिया हुआ जल बादलों में ठहरता है फिर वह जल समय आने पर भूमि पर गिरता है और उससे समुद्र भरता है।[2] इसी प्रकार ब्रह्माण्ड पुराण में उल्लिखित है कि तेज (सूर्य) सब भूतों (भौतिक वस्तुओं) से किरणों के द्वारा जल ले लेता है। समुद्र (पारमेष्ठ्य समुद्र) के अम्भ नामक जल के योग से किरणें आप् नामक सांसारिक जल को ले जाती है। अपनी गति के कारण हटा हुआ सूर्य भौतिक वस्तुओं से उठाये हुए उस जल को फिर श्वेत और कृष्ण किरणों द्वारा मेघ में बांधता है। मेघों के अन्दर आया हुआ वह जल वायु से प्रेरित होकर फिर वापिस भूमि पर बरस जाता है। तेज किरणों से तपते हुए और मन्दपवन वाले मेघ वर्षाकाल में क्रुद्ध हुए की तरह बड़ी-बड़ी धाराओं से बरसते हैं।[3]

आधुनिक विचारधारा के अनुसार जब आर्द्रवायु की अपार मात्रा किसी कारणवश ऊपर उठती है तो उसके तापमान में गिरावट आती रहती है और अंत में एक ऊँचाई पर जाकर उसमें संघनन की प्रक्रिया सम्पन्न होने

---

१. प्रा.भा.ऋ.वि. पृ. ५

२. कूर्म पुराण, ४२ अध्याय उद्धृत कादम्बिनी ३/८५

३. ब्रह्माण्ड पुराण उद्धृत कादम्बिनी ३/९६-९९

लगती है। ऊपर उठती वायु में संघनन प्रक्रिया से मेघों की उत्पत्ति होती है। मेघ जल की महीन–महीन बूँदों अथवा छोटे–छोटे हिमकणों अथवा दोनों ही से निर्मित होते हैं। मेघों में अपनी वायु व्यवस्था होती है। जलबूंदें तथा हिमकण मेघों के अंदर उपस्थित पवन प्रवाह के साथ ऊपर नीचे होते रहते हैं। ये जलबूँदें भार में हल्की होने के कारण मेघों को नहीं त्याग सकतीं परन्तु जब छोटी–छोटी जलबूँदें आपस में संयुक्त होकर बड़ी बूँदों में परिवर्तित हो जाती हैं तो उनका भार इतना अधिक हो जाता है कि वे मेघों को त्यागकर भूमि पर बरसने लगती हैं। इस प्रकार मेघकणों के आकार वृद्धि की क्रियाविधि को ही वर्षण या वृष्टि प्रक्रम कहते हैं।[1]

वृष्टि के कई प्रकार हैं। जिनमें वर्षा, करका एवं हिम का वर्णन प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। प्राचीन काल में वृष्टि का अभिप्राय जल वृष्टि अथवा वर्षा से लिया जाता था। ओले, जो सामान्यतया वर्फ के शुष्क बड़े गोले के समान होते हैं, के १२ प्रभेद निम्न हैं– धाराङ्कुर, राधरङ्कुर, वर्षोपल, घनोपल, मेघोपल, मेघास्थि, मटची, पुंजिका, बीजोदक, घनकफ, वार्चर एवं करका। सम्भवतः उपर्युक्त भेद ओलों की आकृति के आधार पर कहे गये हैं। ओले को 'करका' भी कहा जाता है। अधिक ओलों के गिरने से दुर्भिक्षभय रहता है।[2] करकोत्पत्ति के विषय में बृहत्संहिता में वर्णित है कि यदि धारण हुआ वृष्टिगर्भ उपघातवश अपने प्रसवकाल में नहीं बरसता है तो पुनः अपने गर्भ समय में आकर करका वृष्टि अथवा करका मिश्रित जलवृष्टि करता है।[3] हिम के चार प्रभेद होते हैं[4]–प्रालेय, तुषार, धूमिका एवं अवश्याय।

---

१. जलवायु विज्ञान, एस.एल.गुप्ता., पृ. २३२

२. कादम्बिनी ३/११७–११८

३. बृ०सं० गर्भलक्षण ३५–३६

४. कादम्बिनी ३/११९–१२५

१. **प्रालेय** –जल वर्फ के समान कठिन हो जाने पर प्रालेय कहलाता है। मेरुप्रान्त में हिमालय में और ओले आदि में इस प्रालेय का रूप दिखाई देता है।

२. **तुषार** –जो अपने बरस जाने के बाद और ओलों के बरसने के बाद दो तीन दिन तक अत्यन्त कंपाने तथा वृक्षों का नाश करने वाला होता है, उसको तुषार कहते हैं।

३. **धूमिका** –जो प्राय: प्रात: काल में पौष, माघ के महीनों में सूर्य की किरणों को क्षीण बनाकर धुएं की तरह सबको ढक लेती है, उसको धूमिका कहते हैं। कुहिढ़, कुहेड़ि, कुहेलिका, नभोरेणु, कुज्झरिका, कुज्झटि, कुज्झटी, धूममहिषी और रतान्ध्री ये धूमिका के नाम हैं, यह धूमिका अत्यन्त घनीभूत बनकर अवश्याय (ओस) के पतन का कारण होती है।

४. **अवश्याय (ओस)**

हर रोज जल के जो छोटे–छोटे कण प्रतिरात्रि में बरसते हैं इसीलिए उन्हें अवश्याय कहते हैं। कादम्बिनी में उल्लिखित है कि[१] जिस देश में खारी कड़वी, दुर्गन्धयुक्त और धान्यनाशक वर्षा होती है, वह देश खेती के नाश से नष्ट हो जाता है। वर्षा के अन्दर मत्स्य और मेढ़कों के गिरने से सुभिक्ष होता है तथा शंख, शंबूक (जल में पैदा होने वाली सीयें) और कछुवी या छोटा कछुवा इनके गिरने से दुर्भिक्ष होता है।

वृष्टि या वर्षण की निम्न अवस्थाएं होती हैं[२]– धारासम्पात, आसार, सीकर, अम्बुकण द्रप्स, स्तोक, पृषदबिन्दु, पृषत्, विपुट्, वृष्टि और वर्षा वृष्टि

---

१. कादम्बिनी ३/१०२–१०३

२. तत्रैव १०५–१०६

के नाम हैं। करका और हिमपात भी वृष्टि के ही नाम हैं। आधुनिक विचारधारा के अनुसार अवक्षेपण या वृष्टि के निम्न प्रकार हैं—[१]

वृष्टि के प्रकार—

(१) फुहार –

यह सूक्ष्म जलकणों (व्यास ०.५ मि.मी. से कम) का सम अवक्षेपण है। फुहार साधारणत: शान्त या धीमी वायुधारा में ही गिरती है। आरोही वायुधारा तेज होने से, फुहार कण छोटे होने के कारण नीचे नहीं गिर सकेंगे। फुहार साधारणत: स्तरी मेघ द्वारा उत्पन्न होते हैं।

(२) वर्षा –

०.५ मि.मी. व्यास से बड़ी बूँदों का अवक्षेपण वर्षा कहलाता है। इन बूँदों की दीर्घतम सीमा ५.५ मि.मी. है। इससे बड़ी बूँदें साधारणत: टूट जाया करती हैं। वर्षा मध्य स्तरी, स्तरी कपासी, स्तरी, कपासी वर्षी एवं कपासी बादलों से हो सकती है।

(३) बौछार

थोड़े समय की तेज और बड़ी बूँदों वाली वर्षा बौछार कहलाती है। यह साधारणत: कपासी एवं कपासी वर्षी मेघों से सम्बन्धित घटना है। अन्य मेघ स्टेशन से गुजरते समय बौछार दे सकते हैं।

(४) हिमकारी वर्षा –

वह वर्षा, जो भूमि पर जल के रूप में पहुँचती है, पर भूमि पर पहुँचने के बाद जम जाती है, यह हिमकारी वर्षा कहलाती है।

(५) तुषारपात –

सफेद बर्फ के रवेदार टुकड़ों की वर्षा तुषार या हिम कहलाती है, ये रवे अपारदर्शी तथा सितारों जैसी आकृति के ४ या ५ मि.मी. व्यास के सुन्दर

१. मौसम विज्ञान—आर.सी.बनर्जी एवं डी.एस.उपाध्याय पृ. ९२

टुकड़े होते हैं। बड़े रवे भूमि पर तभी गिरते हैं, जब भूमि का तापमान कम से कम ०° से. हो। भूमि का तापमान थोड़ा अधिक (१° से ४° से.) होने से तुषारपात पाऊडर के रूप में होता है। तुषारपात साधारणतः मध्यस्तरी, स्तरी कपासी, स्तरी, कपासी तथा कपासी वर्षी मेघों से सम्बन्धित होता है।

(६) तुषार गोली –

यह सफेद अपारदर्शी गोलाकार या शंखाकार बर्फ से दानों का अवक्षेपण है जिसका व्यास २ से ५ मि.मी. तक हो सकता है, साधारणतः भूमि से टकराने पर ये दाने टूट जाते हैं। ये स्तरी कपासी या कपासी वर्षी मेघों से सम्बन्धित हो सकते हैं।

(७) हिमगोली या हिम सूचिका –

पारदर्शी, गोलाकार या अनियमित आकार (व्यास ५ मि.मी. से कम) की गोलियाँ मध्यस्तरी या कपासी वर्षी बादलों से प्राप्त होती है। बर्फ से कुछ रवे सूइयों के आकार (२ मि.मी. लम्बे) के भी अवक्षेपित होते हैं। सूइयां बहुत हल्की होती हैं और कभी-कभी वायुमण्डल में निलम्बित होकर प्रकाशीय घटनाएं उत्पन्न करती हैं।

(८) सहिम वृष्टि –

जब भूमि तल का तापमान कुछ अधिक होता है, तुषारपात भूमि तक आते–आते जल में पिघल जाता है। अतः जल और तुषार दोनों का अवक्षेपण साथ-साथ प्रतीत होता है, यह सहिम वृष्टि कहलाती है।

(९) ओला –

बर्फ के अपेक्षाकृत बड़े टुकड़ों (व्यास ५ से ५ मि.मी. या इससे अधिक) का गिरना ओला कहलाता है। कुछ टुकड़े साधारणतः अल्प पारदर्शी तथा कई तहों में बने होते हैं तथा कुछ टुकड़े बहुत छोटे मुलायम सफेद बर्फ के गोले होते हैं।

ओले साधारणत: कपासी वर्षी मेघ से गिरते हैं। इस मेघ में ऊर्ध्व प्रवाह द्वारा जलकण, जब हिमांक स्तर से ऊपर पहुँचते हैं, तो कुछ छोटे हिमकण के रूप में जम जाते हैं, ये कण अतिशीतल जल के सह अस्तित्व में बर्जटान प्रक्रम के अनुसार आकार में वृद्धि प्राप्त करते हैं तथा भार के कारण नीचे गिरते समय संघटन द्वारा और बढ़ते जाते हैं। अत्यधिक तीव्र ऊर्ध्व प्रवाह के कण पुन: उठते हैं और उसी प्रकार से उन्हें और वृद्धि करने का पर्याप्त समय मिल जाता है। अत: ओलों के विकास के लिए आवश्यक है कि ऊर्ध्वाधर विकास के मेघ बहुत तीव्र वायुधाराओं से युक्त हों। हर बार उठने और गिरने से इन टुकड़ों पर तुषार की नई परतें चढ़ती जाती हैं। यह दोलन क्रिया तब तक चलती रहती है, जब तक कि बर्फ के टुकड़ों का आकार ऊर्ध्व धाराओं को सन्तुलित करने में सक्षम नहीं हो जाता। यही कारण है कि साधारणत: ओले में विभिन्न घनत्वों के बर्फ और तुषार की कई तहें पायी जाती है। छोटे ओले प्राय: भूमि तक आते-आते पिघलकर कर या तो समाप्त हो जाते हैं या बहुत छोटे हो जाते हैं।

वृष्टि का काल

प्राचीन भारतीय मतानुसार शीतकाल में वृष्टि के बादलों का वाष्पीकरण की प्रक्रिया द्वारा निर्माण होना प्रारम्भ होता है अत: इसे गर्भ धारणकाल कहा जाता है। उष्णकाल को उस मेघगर्भ का पोषण होता है तथा वर्षाकाल में प्रसव अर्थात् प्रवर्षण होता है।[१] यह जलचक्र पूरे १ वर्ष का होता है। मेघ के गर्भकाल, दोहद (पुष्टिकाल) एवं प्रसवकाल के विषय में अनेक मतान्तर है। किसी का मत है कि—मार्गशीर्ष से चार महीने फाल्गुन तक शीतकाल, चैत्र से चार महीने आषाढ तक उष्णकाल तथा श्रावण से चार महीने तक वर्षाकाल होता है।[२] सम्प्रति— कार्तिक से माघ तक शीतकाल, फाल्गुन से ज्येष्ठ तक उष्णकाल तथा आषाढ़ से आश्विन तक वर्षाकाल माना जाता

१. कादम्बिनी १/१८
२. तत्रैव श्लोक १६

है।[1] किसी का अभिमत ज्येष्ठा नक्षत्र के आस पास जब अमावस्या (मार्गशीर्ष अमावस्या) होवे तब गर्भकाल और ज्येष्ठा नक्षत्र के आसपास जब पूर्णिमा (ज्येष्ठ पूर्णिमा) हो तो प्रसवकाल अर्थात् वर्षाकाल समझना चाहिए।[2] कुछ विद्वान् मानते हैं कि मूलनक्षत्र के उतरार्ध में सूर्य के आने से (पौषमाह) गर्भकाल तथा आर्द्रा नक्षत्र पर सूर्य के आने से (आषाढ़ मास) प्रसव काल प्रारम्भ होता है। साथ ही प्रसव कालारम्भ दिन से ४ मास तक प्रसवकाल समझना चाहिए।[3] वराहमिहिरादि आचार्यों का मत है कि जिस नक्षत्र पर चन्द्रमा के रहते हुए गर्भस्थिति हुई हो, उसी नक्षत्र पर आठवीं बार चन्द्रमा के आने से अर्थात् १९५ दिन में, उस दिन की गर्भस्थिति का जल बरस जाता है।[4]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीनाचार्यों के मतानुसार प्राय: आषाढ़मास से आश्विन मास तक वर्षाकाल होना चाहिए। वस्तुत: वृष्टिकाल का ज्ञान करना अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। क्योंकि वृष्टि का तात्पर्य मात्र वर्षा से न होकर हिमपात, ओलावृष्टि इत्यादि से भी होता है। साथ ही वृष्टि शीतकाल एवं उष्णकाल में होती रहती है। यहाँ प्राचीनाचार्यों का वृष्टिकाल से तात्पर्य मानसूनी पवनों द्वारा होने वाली वर्षा से है जो प्राय: उपर्युक्त मासों में अर्थात् वर्षाकाल में ही होती है। साथ ही जिस पर भारत की कृषि अवलम्बित है।

आधुनिक मौसम वैज्ञानिकों के मतानुसार भी भारत मानसून प्रधान देश है। जम्मू और कश्मीर चरम दक्षिणी तट तथा पूर्वी घाट के क्षेत्रों को छोड़कर पूरे देश में कुल वर्षा का ८० से ९०प्रतिशत भाग केवल दक्षिणी पश्चिमी मानसून के चार महीने में प्राप्त होता है।[5] अत: प्राचीनाचार्यों ने इसी

---

१. कादम्बनी श्लोक १७
२. कादम्बिनी १/१९
३. तत्रैव २०
४. तत्रैव २८
५. मौसम विज्ञान – आर.सी.बनर्जी एवं डी.एस.उपाध्याय पृ. ४१६

दक्षिणी पश्चिमी मानसून से प्राप्त होने वाली वर्षा के काल को, जिस पर भारत की कृषि अवलम्बित है, को जानने का प्रयत्न किया। भारत की जलवायु को निम्नांकित चार ऋतुओं में बाँटा जा सकता है[1]–

(१) शीतकाल या उत्तरी पूर्वी मानसून – दिसम्बर से फरवरी।

(२) ग्रीष्मऋतु या पूर्व मानसून काल – मार्च से मई।

(३) वर्षाऋतु या दक्षिणी पश्चिमी मानसून काल – जून से सितम्बर।

(४) संक्रमण मानसून या उत्तरी मानसून काल – सितम्बर से नवम्बर।

(१) शीतकालीन वर्षा[2]

शीतकाल में वर्षा किसी स्थान की भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करती है। इस काल में आर्द्र और अस्थिर पवनों से वर्षा हुआ करती है। उत्तरी पूर्वी मानसून पवन ठंडे और शुष्क होते हैं। यदि ये पवन बंगाल की खाड़ी से गुजरते हैं तो समुद्री भाग से जलवाष्प ग्रहण करते हैं इनसे अंडमान–निकोबार द्वीपसमूह में खूब वर्षा होती है। साथ ही तमिलनाडु के तटीय क्षेत्रों में भी इन पवनों द्वारा अच्छी वर्षा होती है। उत्तरी भारत प्राय: शुष्क; धूपदार एवं मेघरहित रहता है। परन्तु शीतोष्ण चक्रवात, जो पश्चिम की ओर से आते हैं, से मौसम परिवर्तित हो जाता है। इन चक्रवातों से भारत के उत्तरी मैदान में वर्षा होती है जबकि हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में हिमपात होता है। वैसे तो नवम्बर के अन्त में ही चक्रवातों का भारत में आगमन शुरु हो जाता है, परन्तु जनवरी–फरवरी में इनकी संख्या सबसे अधिक रहती है। कैन्ड्रयू के अनुसार सामान्यतया नवम्बर में दो, दिसम्बर में चार तथा जनवरी से अप्रैल तक प्रत्येक माह पाँच–पाँच चक्रवात भारत में प्रवेश करते हैं।

---

१. मौसम विज्ञान आर.सी.बनर्जी एवं डी.एस.उपाध्याय पृ. ३९६

२. जलवायु विज्ञान–एस.एल.गुप्ता पृ. ४८१–४८३

(२) ग्रीष्मऋतु कालीन वर्षा[१]

ग्रीष्मकाल वास्तव में वर्षा का समय नहीं है, अपितु वर्षा की तैयारी का मौसम है। फिर भी इस काल में भी समय समय पर कहीं संवहनी वर्षा होती है और कहीं चक्रवाती वर्षा। वर्षा सामान्यतया बहुत कम होती है परन्तु ग्रीष्मऋतु में बिहार से असम तक तडित झंझा द्वारा, जिसे 'काल वैशाखी' का नाम दिया गया है, काफी वर्षा हो जाती है। इस वर्षा को बसंत ऋतु की तूफानी वर्षा भी कहते हैं। असम में इसे चायवर्षा भी कहते हैं। संवहनी धाराओं से दक्षिणी भारत के आंतरिक क्षेत्रों में १० से.मी. तक वर्षा हो जाती है। जिसे 'आम वर्षा' कहते हैं। कर्नाटक के तटीय क्षेत्र तथा केरल में अप्रैल मई में २५ से.मी. के लगभग वर्षा हो जाती है। मई के अंत में यहाँ मानसून का आगमन हो जाता है।

(३) वर्षाऋतु कालीन वर्षा[२] –

भारत, बांग्लादेश, नेपाल, पाकिस्तान, म्यानमार आदि देशों की ९०% के लगभग वर्षा दक्षिणी पश्चिमी मानसून द्वारा होती है जो लगभग २५ मई से १५ दिसम्बर तक प्रभावी रहता है। दक्षिणी पश्चिमी मानसून भारतीय प्रायद्वीप की स्थिति और आकृति विशेष के कारण भारतीय क्षेत्र में प्रवेश करने के पश्चात् दो प्रमुख शाखाओं में विभक्त हो जाता है। इनमें से एक शाखा अरबसागर की ओर से भारत में प्रवेश करती है। जबकि दूसरी शाखा बंगाल की खाड़ी की तरफ से प्रवेश करती है। इन दोनों शाखाओं द्वारा ही समूचे भारत को कुल वार्षिक वर्षा का ८५-९०% भाग प्राप्त होता है।

दक्षिणी पश्चिमी मानसून की अविश्वसनीयता उसके अभ्युदय, अवधि, मात्रा एवं प्रत्यावर्तन के समय के अनिश्चित होने के कारण बनी रहती है। मौसम वैज्ञानिकों ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मानसून आगमन की तिथियां

---

१. जलवायु विज्ञान एस.एल.गुप्ता, पृ. ४९३

२. जलवायु विज्ञान—एस.एल.गुप्ता, पृ. ५०१

निर्धारित की हुई है। यथा[१]–

प्रदेश	मानसून अभ्युदय तिथि
केरल	१ जून
बंगाल	१ जून
मुम्बई (महाराष्ट्र)	१४ जून
बिहार	१० जून
उत्तरप्रदेश	१५ जून
पंजाब	१ जुलाई

परन्तु शायद ही किसी वर्ष मानसून का भारत के किसी राज्य में आगमन निर्धारित तिथि के अनुसार होता हो, सामान्यतया यह देखा गया है कि मानसून का किसी क्षेत्र में आगमन निर्धारित तिथि के २–४ दिन पहले या बाद होता है। कभी–कभी तो मानसून १३–१४ दिन के बिलम्ब से पहुँचता है। इसी प्रकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में दक्षिणी पश्चिमी मानसून की अवधि २ से ५ महीने तक रहती है, परन्तु सभी दिन वर्षा नहीं होती है।

(४) शरद् ऋतु कालीन वर्षा –

यह लगभग १६ सितम्बर से १५ दिसम्बर तक रहती है। वास्तव में यह काल मानसून की वापसी का होता है। १५ दिसम्बर तक संपूर्ण भारत से दक्षिणी–पश्चिमी मानसून समाप्त हो जाता है। इसका स्थान सर्दियों के मानसून पवन ले लेते हैं।[२] अक्टूबर से भारत के आधे पूर्वी भाग में लौटते मानसून से वर्षा होती रहती है। १५ अक्टूबर तक दक्षिणी भारत के कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु तथा केरल में भी हटते मानसून पवनों से वर्षा होती

---

१. जलवायु विज्ञान, एस.एल.गुप्ता, पृ. ५११

२. तत्रैव पृ. ५१३

हे। १५ दिसम्बर तक तमिलनाडु के केवल पूर्वी भाग में लौटते मानसून से वर्षा होती है। यह क्षेत्र गर्मियों के बजाय सर्दियों में वर्षा प्राप्त करता है।[१] इस काल में प्राय: वर्षा नहीं होती है परन्तु वर्षा के सम्बन्ध में दो बातें महत्वपूर्ण है। **प्रथम** सम्पूर्ण भारत में अक्टूबर में तापमान में वृद्धि के साथ संवहनी धाराएं उत्पन्न हो जाती है जिनके ऊपरी सिरे पर कपासी मेघों की उत्पत्ति हो जाती है। ये कपासी मेघ बाद में कपासी वर्षी मेघों का रूप धारण कर तडित झंझा की घटनाओं के साथ घनघोर वर्षा करते हैं। अक्टूबर में तडित झंझा की सबसे अधिक (औसतन ९२) घटनाएं केरल राज्य की घटती है। यहाँ वर्षा सामान्यतया दोपहर बाद एवं रात्रि से पहले होती है परन्तु उत्तर की ओर बढ़ने पर ये घटनाएं कम होती जाती है। उत्तरी भारत में सामान्यतया अक्टूबर में तडित झंझा की घटनाएं नहीं घटती परन्तु कभी-कभी किसी किसी क्षेत्र में स्थानीय रूप से संवहनी धाराओं द्वारा उत्पन्न कपासी मेघों के कपासी वर्षी मेघों में बदल जाने पर तडित झंझा युक्त वर्षा की सम्भावना अक्टूबर में सायंकाल और रात्रि के प्रथम प्रहर में घटती है।[२] **द्वितीय** महत्वपूर्ण बात यह है कि अक्टूबर नवम्बर में अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी में उष्ण-कटिबंधी प्रभार के चक्रवातों की उत्पत्ति होती है, जिनसे भारत के तटीय क्षेत्रों में वर्षा होती है।[३]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भारत के किसी न किसी क्षेत्र में प्रत्येक मौसम में वर्षा होती है परन्तु वर्षा का ८५-९० प्रतिशत भाग दक्षिणी-पश्चिमी मानसून पवनों द्वारा जून से सितम्बर में ही प्राप्त होता है। अत: इसे वर्षा ऋतु या वर्षाकाल भी कहा जाता है।

---

१. जलवायु विज्ञान, एस.एल.गुप्ता, पृ. ५१८

२. जलवायु विज्ञान, एस.एल.गुप्ता, पृ. ५१८-५१९

३. तत्रैव पृ. ५२०

सप्तम अध्याय

सद्योवृष्टिलक्षण

भारतीय ज्योतिष शास्त्र की यह विशेषता है कि वह ग्रहगति के आधार पर वर्षो पूर्व वृष्टि का पूर्वानुमान कर सकता है और करता भी है। पञ्चाङ्गों में वृष्टि विषयक फलादेश इसके साक्षी हैं फिर भी ज्योतिष शास्त्र द्वारा इस प्रकार पूर्व में की गई भविष्यवाणियों में त्रुटियाँ परिलक्षित होती है। जिसका कारण सद्योवृष्टि लक्षण है। इसका पूर्वानुमान नहीं किया जा सकता। सद्योवृष्टि लक्षण में उन तथ्यों को विचार कोटी में रखा गया है जिनका प्रभाव तत्काल पड़ता है तथा जिनसे प्रस्तुत प्राकृतिक अवस्था में तत्काल परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए–

आसन्नमर्क शीतांशो परिवेशगतोत्तरा
विद्युत् प्रपूर्ण मण्डूकस्त्वनावृष्टिर्भवेत्तदा।
पुरः पृष्ठतो भानोर्ग्रहा यदि समीपगाः।
तदा वृष्टिं प्रकुवन्ति न चेत् प्रति लोमगाः।।[1]

इस प्रकार सूर्य चन्द्रादि के परिवेशादि होने तथा इनकी गतियों एवं इनकी विशिष्ट स्थितियों के कारण प्रकृति में परिवर्तन होता है जिनका प्रभाव वायु और मेघों पर पड़ता है जो वृष्टि के मुख्य घटक होते हैं। परिणामस्वरूप वायु की गति में ह्रास वृद्धि तथा वातावरण में अति उष्णता या शीतलता की उत्पत्ति वृष्टि के नियत काल में परिवर्तन कर देती है।[2]

१. आर्ष वर्षा वायुविज्ञानम् पृ. २७४

२. अतिवातं च निर्वातम् अत्युष्णं चाति शीतलम्।
अत्यभ्रञ्च निरभ्रञ्च षड्विधं मेघलक्षणम्।। कादम्बिनी ४/६०

अत: ज्योतिशास्त्र वृष्टि ज्ञान हेतु निम्न पाँच अवयवों पर ध्यान देता है। – १. वायु, २. मेघ ३. ग्रहचार, ४. भूमि और ५. सद्योवृष्टि।

वृष्टि काल में शीघ्र उत्पन्न वृष्टि लक्षण वृष्टि होने के कुछ पूर्व ही दिखाई देने लगते हैं। इस विषय पर प्राचीनाचार्यों ने अत्यधिक गवेषणाएं की। वृष्टि का पूर्वानुभव पशु–पक्षियों, कीट–सरीसृपों, मेढ़कादि जलचरों को जिस प्रकार होता है उस प्रकार मानवों को नहीं होता है। पूर्वाचार्यों ने इस विषय का गम्भीर अनुशीलन किया तथा विविध प्राणियों की चेष्टाओं का अध्ययन किया। साथ ही आकाश व भूमि के लक्षणादिकों का परिशीलन भी किया, इस अध्ययन को सद्योवृष्टि लक्षण के रूप में उन्होंने ग्रन्थित किया है। यह पूर्वाचार्यों की विशेषता है कि उन्होंने बहुमूल्य यंत्रों के स्थान पर जन्तु वनस्पति आदि की चेष्टाओं का उपयोग कर विना व्यय के ही कार्य सिद्ध किया है।

सघोवृष्टि लक्षण –

तुरन्त वृष्टि योग ही सघोवृष्टि है इस वृष्टि योग के लक्षण एक या २ दिन के भीतर ही घटित होते हैं। वर्षा जानने के लिए अनेक भेद वाले निमित्त (शाकुनादिक) आन्तरिक्ष, दिव्य व भौमिक कहें गये है।

१. विभिन्न तिथियों में वायु आदि के लक्षण से सद्योवृष्टि ज्ञान:–

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को यदि रविवार हो तो अनावृष्टि, मंगलवार हो तो सुवृष्टि एवं बुधवार होने से दुर्भिक्ष होता है।[1] मतान्तर से उक्त तिथि को रविवार होने से जल व धान्य की कमी व अधिक वायु चलती है। चन्द्रवार होने से जल, धान्य व घास खूब पैदा होता है। मंगलवार के होने से ईतिभय, बुघवार से दुर्भिक्ष, गुरुवार या शुक्रवार के होने से सुभिक्ष एवं शनिवार के होने से जल वगैरह का नाश होता है।[2] चैत्र की पूर्णिमा के दिन में प्रतिपदा का प्रवेश होने पर वृष्टि योग साझना चाहिए।[3] चैत्र कृष्णपक्ष (पूर्णिमान्त मासानुसार वैशाख

१. कादम्बिनी २/१६३

२. तत्रैव १६४–१६५

३. कादम्बिनी २/१८६

कृष्ण पक्ष) में दक्षिण की हवा मेघ बरसाने वाली है किन्तु यदि बादल हो गये तो वृष्टि का नाश होता है और यदि बादल न हुए तो अच्छी वृष्टि होगी ऐसा समझना चाहिए।[१]

वैशाख शुक्ला सप्तमी से तीन दिन तक यदि आकाश में बादल छाये रहें तो शीघ्र ही वृष्टि होती है।[२] ज्येष्ठ कृष्ण (पूर्णिमान्त मान से आषाढ़ कृष्ण पक्ष) में चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी और अमावस्या को सूर्यास्त के समय पूर्व दिशा का आकाश, पर्वत हाथी बगैरह कई रुप वाले बादलों से ढ़का हुआ हो तो पाँच या सात रात्रि के अन्दर शीघ्र वर्षा समझनी चाहिए।[३] दक्षिण दिशा के कोटीनार सहित पैदा हुए मेघ तीन, पाँच या सात रात के अन्दर–अन्दर कुछ वृष्टि करते है।[४] पश्चिम दिशा में सन्ध्याकाल के समय सूर्य के अस्त हो जाने पर यदि पर्वताकार काले बादल दिखाई दे तो शीघ्र ही वर्षा समझनी चाहिए।[५] सन्ध्या के समय उत्तर दिशा में पर्वतों की श्रेणी की तरह यदि काले बादल दिखाई दें तो उसके तीसरे दिन मन को संतुष्ट करने वाली वृष्टि होती है।[६] ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष (आषाढ़ कृष्ण) की ४, ५, ६, ७ और ३० तिथियों को मेघ दर्शन के दिशानुसार निम्न फल होता है–[७]

मेघ दिशा	फल
१. आग्नेय	अल्प वृष्टि व ताप
२. नैर्ऋत्य	ईतिभय, रोग व वर्षा

१. कादम्बिनी २०६
२. कादम्बिनी २५०
३. तत्रैव ३३१–३३२
४. तत्रैव ३३३
५. तत्रैव ३३४
६. तत्रैव ३३५
७. कादम्बिनी २/३३६–३३७

३. वायव्य	हवा व वृष्टि
४. ईशान	सुवृष्टि

ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष अर्थात् आषाढ़ कृष्ण की अष्टमी और चतुर्दशी को दक्षिण दिशा की हवा चलने से चारों तरफ वृष्टि होती है।[१] ज्येष्ठ कृष्ण अष्टमी (आ. कृ.) का चन्द्र यदि काले बादलों के हो जाने से नहीं दिखे तो पृथ्वी पर जल खूब बरसता है।[२] आश्विन के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी और पञ्चमी तिथि गर्भसिद्धि की परवाह नहीं करती। तात्कालिक ग्रहयोग से इन दिनों में जो वर्षा होती है। उक्त तिथि में भी शीघ्र ही गर्भ हो जावे तो पाँच–सात दिनों में ही पृथ्वी समुद्र के समान हो जाती है।[३] आश्विन शुक्ला प्रतिपदा, अष्टमी और दशमी को आकाश में बादलों की घटा दिखाई देने से तत्काल वृष्टि होती है।[४] आश्विन में सूर्यास्त के समय आकाश में पर्वताकार मेघों के होने से उसी दिन वर्षा होती है।[५] कृष्ण पक्ष में वर्षा का प्रश्न करने पर यदि जल चर राशि में स्थित होकर चन्द्र लग्नाधिष्ठित हो या शुक्ल पक्ष में जलचर राशि में स्थित होकर केन्द्रस्थान (१, ४, ७, १०) में बैठा हो और इन दोनों योगों में यदि चन्द्र शुभ ग्रह से दृष्ट हो तो बहुत जल्दी अधिक वृष्टि और पापग्रह से दृष्ट हो तो थोड़ी वृष्टि होती है।[६]

२. आकाश लक्षण से सद्योवृष्टि ज्ञान–

सूर्य लक्षण– वर्षा ऋतु में जिस दिन सूर्य अत्यन्त तीव्र किरणों युक्त और घृत के रंग की तरह प्रभा वाला हो तो उस दिन वह अवश्य वर्षा करता

१. तत्रैव ३३८
२. तत्रैव ३३९
३. तत्रैव ५७९–५८०
४. तत्रैव ५८२
५. कादम्बिनी २/५८३
६. बृ. सं. सद्योवर्षणा ध्याय १

है।[१] वर्षाकाल में जिस दिन उदय के समय का सूर्य अत्यन्त प्रकाश के कारण देखा न जा सके, पिघले हुए सुवर्ण के समान हो, स्निग्ध वैदूर्यमणि की सी प्रभावाला हो और अत्यन्त तीव्र होकर तप रहा हो अथवा आकाश में बहुत ऊँचा चढ़ गया हो (मध्याहन में तीक्षण किरण हो) वह उसी दिन खूब अच्छी वर्षा करता है।[२] सूर्यपिण्ड से एक प्रकार की जो सीधी रेखा कभी–कभी दिखाई देती है वह अमोघ किरण कहलाती है। सूर्य की अमोघ किरणें सन्ध्या के समय यदि निकली रहें और बादल पृथ्वी पर झुक कर गरजें तो वर्षा होने का उत्तम योग बनता है।[३] उदय कालिक सूर्य प्रखर हो, आकाश गौर वर्ण और बादलों की आभा तीतरों के पंखों की सी हो तो अवश्य मेघ बरसता है।[४] यदि सूर्य के उदय या अस्त में इन्द्रधनुष, परिघ (तिरछी मेघ की रेखा), प्रतिसूर्य, रोहित (स्पष्ट इन्द्र घनुष के खण्ड), बिजली या सूर्य व चन्द्र के परिवेष दिखाई दें तो शीघ्र अधिक वृष्टि होती है।[५]

चन्द्र लक्षण–जिस समय तोता या कबूतर के नेत्र के समान या शहद के वर्ण सदृश चन्द्र हो या आकाश में प्रतिचन्द्र (चन्द्र की परछाई बादल में) दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि होती है।[६] चन्द्रमा के परिवेष कृकवाक (जलमुर्ग) की आँखों के समान हो तो शीघ्र वृष्टि होती है।[७] चन्द्र में परिवेष हो, तारागण में तीव्र प्रकाश हो और बादलों की आभा तीतरों के पाँखों की सी हो तो अवश्य मेघ बरसता है।[८]

---

१. मयुर चित्रक पृ. १८, उद्‌घृत प्रा. भा. ऋमु वि. पृ. ११४
२. कादम्बिनी ४/४०–४१
३. बृ. सं. सद्योवर्षणा. १८
४. कादम्बिनी ४/४८
५. बृ. सं. सद्योवर्षणा.२६
६. तत्रैव ११
७. कादम्बिनी ४/४५
८. तत्रैव ४६

आकाश वर्ण लक्षण– दिशाएं विमल हों और आकाश काक के अण्डे की कान्ति वाला हो या गो नेत्र की सी कान्ति वाला हो, वायु का आगमन रूक कर होता हो, स्वाद रहित जल हो, अतिशय उछल–उछल कर जल से सूखे में मछलियों का आना हो एवं मेढ़क बार–बार शब्द करें तो यह भी वृष्टि के आगमन का लक्षण है।[१] यदि उदय या अस्त समय तीतर के पंख के समान आकाश हो और आनन्दित हो कर पक्षी गण शब्द करें तो क्रम से दिन और रात्रि में शीघ्र अतिवृष्टि होती है।[२] रात में तारे चमकते हों, प्रात: काल अत्यन्त लालवर्ण का सूर्य उदय होता हो और बिना वर्षा के इन्द्रधनुष दिखाई दे तो ये लक्षण तत्काल वृष्टि के समझने चाहिए।[३] पूर्व की हवा होने पर तमाम दिशाएं यदि धूम्रवर्ण की हों तो चार प्रहर के अन्दर–अन्दर बादल तालाबों को भर देगें।[४] इसी प्रकार प्रभात के समय में दिशाएं निर्मल हों और मध्याह्न के समय गर्मी (धूप) पड़ती हो तो अर्द्ध रात्रि के समय प्रजा के सन्तोष के लायक अच्छी वर्षा होती है।[५]

सूर्य, उदय के समय ही अत्यधिक तेज हो व गलाये गये सोने के समान रंगवाला हो, चमकिले वैदुर्यादि रंग के समान चमकिला दिखाई पड़े तो वर्षा काल में उसी दिन वर्षा होती है।[६] इसी तरह दोपहर में आकाश मध्य में स्थित होता हुआ सूर्य, बहुत तेज चमकता दिखाई पड़े व खुब तपा हुआ हो तो उसी दिन वर्षा होती है।[७] पानी का स्वाद बदल जाना, गाय की आँखों के समान आकाश मटमैला हो, दिशाएँ साफ हों, नमक का पसीजना आकाश की रंगत कौए के अण्डे के समान सलेटी हो, हवा बिलकुल न चले, मछलियाँ

---

१. बृहत्संहिता सद्योवर्षणा. ४

२. तत्रैव १७

३. कादम्बिनी ४/४९

४. तत्रैव ५५

५. कादम्बिनी ५९

६. वृ.सं. सद्योवर्षणाध्याय, श्लोक ३

७. वृ.सं. सद्योवर्षणाध्याय, श्लोक ३

पानी से बाहर निकल कर सूखे में चलने का प्रयत्न करें व मेंढक रह रह आवाज करते हों तो ये सब वर्षा की सूचना देते हैं अर्थात् जल्दी ही वर्षा होती है।[१] पहाड़ों का रंग काला दिखे, पहाड़ों पर भाप सी उठती दिखे। चन्द्रमा के चारों ओर परिवेष (कुण्डल) दिखे व कुण्डल का रंग लाल हो, ये सब लक्षण व शकुन शीर्घ वर्षादायक होते हैं।[२] यदि आसमान में तोते व कबूतरों की आँखों के समान लाल बादल हो, चन्द्रमाँ का रंग शहद के समान दिखे, आकाश में चन्द्रमाँ का प्रतिबिम्ब प्रतिशशी दिखे तो शीघ्र ही वर्षा होती है।[३] रात में बादल गरजें, दिन में बिजली चमके, बिजली की स्थिति लम्बवत् हो। पूर्वी हवा ठण्डी चले तो शीघ्र ही वर्षा होती है।[४] लताओं के पत्तों की नोक आकाश की ओर उठ जाय, पक्षी धूल में स्नान करने लगे, पत्तियों पर सरकने वाले कृमि रेंगने लगें तो शीघ्र ही वर्षा होती है। मोर, चातक व तोते के रंग के बादल सायंकाल में छा जायें अर्थात् साधारण काले बादल हों तो शीघ्र वर्षा होती है। जवा कुसुम बहुत काला हो जाएँ, बादलों की आकृति सूअर, पानी की भंवर, लहर, कछुआ, मछली के समान हों तथा घने हो तो शीघ्र वर्षा कारक होते हैं। बादलों का रंग सब तरफ से भूरा हों तथा बीच में गहरा रंग दिखे, बादलों की कई परतें हो, चिकनापन हो, सीढीनुमा बादल हो, पानी की बूँदें टपकें और पूर्व से पश्चिम की ओर चल रहे हों अथवा पश्चिम से चलकर पूर्व की ओर जा रहे हों तो शीघ्र वर्षा देते हैं।[५] सूर्योदय या सूर्यास्त के समय इन्द्रधनुष, प्रतिसूर्य, परिघ बिजली, रोहित (इन्द्रधनुष का टुकड़ा), सूर्य चन्द्रमाँ का परिवेष दिखे तो शीघ्र ही वर्षा होती है। सूर्यास्त व सूर्योदय के समय आकाश में तीतर के पंखों के समान चित्र–विचित्र रंग के बादल उठें। पक्षिगण प्रसन्नता से चहचहाएँ। जब सूर्योदय के समय ये लक्षण हों तो दिन में वर्षा

१. वृ.सं. सद्योवर्षणाध्याय, श्लोक ४
२. वृ.सं. सद्योवर्षणाध्याय, श्लोक ६
३. वृ.सं. सद्योवर्षणाध्याय, श्लोक ११
४. वृ.सं. सद्योवर्षणाध्याय, श्लोक १२
५. वृ.सं. सद्योवर्षणाध्याय, श्लोक १३–१५

होती है। सूर्यास्त के समय हों तो रात में वर्षा होती है। सूर्यास्त के समय किरणें ऊपर आकाश की ओर उठती सी दिखें तथा आकाश में बहुत बादल हों तो अत्यधिक वृष्टि होती है। पराशर ने कहा है कि वर्षाकाल में धूमकेतु दिखना, धूल बरसना, भूकम्प आना सब वर्षा के सूचक हैं। यदि वर्षा काल में शुक्र से सप्तभाव में चन्द्र शुभग्रह दृष्ट हो अथवा शनि से सप्तम नवम या पञ्चमस्थ होकर शुभग्रह दृष्ट हो तो जल बरसता है।[१] सूर्य से मन्दगति ग्रह आगे और शीघ्रगति ग्रह पीछे हों तो प्रचुर वर्षा होती है। रात्रि में जुगनू मेघ के समीप तक जाय तो शीघ्र वर्षा, प्रदोष समय में वर्षा हो और बादल आवाज करें तो सप्ताह पर्यन्त वर्षा होती है।[२]

मेघस्वरूप लक्षण– यदि रात में मेघ का गर्जन हो, दिन में रूधिर के समान दण्डाकार बिजली दे तथा पूर्व दिशा की ठंडी हवा चले तो वर्षा का आगम होता है।[३] यदि मेघ की कान्ति मयूर, तोता, चाष (नीलकंठ), चातक, जपा या कमल के समान हो तथा मेघों की आकृति जलावर्त्त (भंवर), पर्वत, नक्र (मगरमच्छ), कछुआ, सूअर, या मछली के समान हों तो शीघ्र वृष्टि होती है।[४] शुक्ल और शुभ्र किरण वाले या वीरण के समान कान्ति वाले शान्त दिशा में उत्पन्न मेघ सूर्य के दक्षिण भाग को आच्छादित करें तो वृष्टि करता है।[५] नीले रंग वाले बादलों में सूर्य ओर परिधि हो और दिन में ईशानकोण के अन्दर बिजली होती हो तो अतिवृष्टि होती है।[६] श्रावण के मास में प्रात:काल मेघगर्जना हो और जल पर मछली का भ्रम होता हो तो अठारह प्रहर के पहले–पहले पृथ्वी जलपूरित हो जाती है।[७] सन्ध्या के समय में जो बादल पर्वताकार दिखाई

१. वृ.सं. सद्योवर्षणाध्याय, श्लोक १६–१७
२. वृ.सं. सद्योवर्षणाध्याय, श्लोक २२–२४
३. बृहत्संहिता सद्योवर्षणा. १२
४. बृहत्संहिता सद्योवर्षणा. १४
५. तत्रैव सन्ध्यालक्षणा. २४
६. कादम्बिनी ४/५१
७. तत्रैव ५३

देते हो वे सूर्य के अस्त होने पर आठ प्रहर वर्षा करते हैं।[१]

अत्यन्त वायु का चलना, सर्वथा ही वायु का न चलना, अत्यन्त गरमी का पडना, अत्यन्त शीत पड़ना, अत्यन्त बादलों का होना और सर्वथा ही बादलों का न होना ये ६ प्रकार के मेघ के लक्षण कहे गये है।[२] वायु का न चलना, बहुत वायु चलना और ऊष्मा के साथ चौतरफी हवा का चलना, इन सब को पैदा करता हुआ तथा चारों ओर फैला हुआ बादल अवश्य वर्षा करता है।[३] शुक्रवार के निकले हुए बादल यदि शनिवार तक ठहरें तो वे बिना वर्षा किए कभी नष्ट नहीं होते हैं, अर्थात् अवश्य वर्षा करते है।[४] इस प्रसङ्ग में भड्डरी की निम्न उक्ति दर्शनीय है—[५]

सुक्करवारी बादरी रहै सनीचर छाय।
तो यो भाखै भड्डरी बिन बरसे ना जाय।।

इसी प्रकार यदि पूरी रात भर छाया हुआ मेघ प्रातःकाल गर्जना करे और अत्यन्त ऊष्मा से व्याकुलता हो रही हो तो कई रात तक वर्षा होती है।[६] यदि बादलों की बादलों से टक्कर होती हो तो दो–तीन प्रहर के बाद घटाटोप होगा।[७] सन्ध्याकाल में दही के समान अग्रभाग वाले, नीले वर्ण के भाग से सूर्य को आच्छादित करने वाले, आकाश के मध्य में स्थित, पीले रंग से रंगे और मूल की तरफ सघन मेघवृक्ष हो तो अधिक वृष्टि करता है।[८] सायंकाल के समय अनेक तट वाले बादल यदि मोर, धनुष, जपा (लाल पुष्प) और तोते

---

१. कादम्बिनी ४/५७
२. तत्रैव ६०
३. तत्रैव ६१
४. तत्रैव ६३
५. घाघ और भड्डरी की कहावतें पृ. ८४ उद्घृत प्र. भा. वि. पृ. १२३
६. कादम्बिनी ४/६८
७. तत्रैव
८. बृ. सं. सन्ध्यालक्षणा. १८

के तुल्य हों अथवा जलजन्तु, लहरों एवं पहाड़ों के तुल्य हों तो शीघ्र ही वर्षा होती है।[१] पर्यन्त (कोर–छोर) के भागों में श्वेतवर्ण वाले, नीले, स्निग्ध (चिकने) और अनेक पुट (तह) वाले बादल यदि पूर्व या पश्चिम को जाते हों तो शीघ्र ही बहुत वर्षा होती है।[२] तीतर के पंखो की सी आभा वाले विचित्र वर्ण यदि उदय और अस्त के समय अथवा रात–दिन दिखाई दें तो शीघ्र ही बहुत वर्षा होती है।[३] गुरु संहिता ग्रन्थ में भैरवोक्त मेघस्वरूप के आधार पर सद्योवृष्टिलक्षण वर्णित है। यथा–[४]

	काल	दिशा	मेघाकृति/विशेषता	वृष्टिफल
१	सध्या	पूर्व	ऊँचा, हाथी, शूकर, भैंसा, पर्वत या बैल के सामान	पाँच या सात रात तक वृष्टि
२	सध्या	उत्तर	गोमयाकार (गोबर की आकृति) अम्बुन (नदी जैसी आकृति)	तीन या पाँच या सात रात्रि तक १ द्रोण वर्षा
३	सध्या	पश्चिम	पर्वताकार	तीन या पाँच या सात रात्रि तक १ द्राण वर्षा
४	–	दक्षिण	कोटिनादसमुद्भव	तीसरी रात्रि से तीन या पाँच रात तक वृष्टि
५	–	आग्नेय	–	रात्रि में प्रवर्षक

१. कादम्बिनी ४/७१
२. तत्रैव ७२
३. तत्रैव ७३
४. उद्धृत प्रा. भा. ऋतुविज्ञानम् पृ. ११५–११६

६	—	ईशान	—	प्रहरार्ध में वातवृष्टि
७	—	नैर्ऋत्य	—	स्पष्ट नहीं
८	—	वायव्य	—	वातवृष्टि रात्रि में एवं दिन में प्रहर से

(४). वायु प्रवाहादि लक्षण:—

श्रावण में एक बार ही दक्षिण की प्रचंड हवा चले तो वारुणनक्षत्र (जल संबंधी नक्षत्र) आने पर वहाँ शीघ्र ही वर्षा होती है।[१] वर्षाकाल के आरंभ में दक्षिण दिशा के अन्दर यदि वायु, बादल अथवा बिजली चमकती हो तो अवश्य वर्षा होती है।[२] उत्तर के बादल का घटाटोप हो रहा हो और पूर्व से वायु चलती हो तो अवश्य वर्षा होती है।[३] अन्य किसी दिशा से लौट कर यदि वायु पूर्व से चलने लगे और वहाँ बादल भी छाए हुए हो तो अवश्य वृष्टि होगी।[४] पूर्व में बिजली चमकती हो, वायव्य और पूर्व से वायु चलती हो और उत्कण्ठा के साथ चातक (पपीहा) पक्षी शब्द करता हो तो अचानक बहुत वृष्टि होती है।[५] यदि अनेक पुट वाले बादलों से सब आकाश ढका हुआ हो और हवा चारों ओर से रुकी हुई हो तो शीघ्र ही अधिक वर्षा होती है। यदि अत्यन्त गरमी के कारण घबराहट हो रही हो और वायु प्रतिकुल नहीं हो तो शीघ्र ही चारों ओर वर्षा होती है।[६]

(५). सध्या एवं इन्द्रधनुषादि लक्षण:—

१. कादम्बिनी ४/५४
२. तत्रैव ६२
३. तत्रैव ६४
४. तत्रैव ६५
५. कादम्बिनी ४/६६
६. तत्रैव ६७–६८

प्रातः काल में इन्द्रधनुष पश्चिम दिशा में दिखाई देता हो तो वारुण (जल संबंधी) नक्षत्रों के द्वारा शीघ्र ही वर्षा होती है।[१] अखण्ड, पृथ्वी में लगा हुआ, उज्जवल, निर्मल, अविकल, अनेक वर्णयुत, दो बार उदित या अनुलोम (पश्चिम में स्थित) इन्द्रधनुष दिखाई दे तो शुभफल व बहुत वृष्टि करने वाला होता है।[२] यदि अनावृष्टि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो वृष्टि और वृष्टि के समय दिखाई दे तो अनावृष्टि करता है तथा पश्चिम दिशा में स्थित इन्द्रधनुष सदा वृष्टि करता है।[३] दण्ड, विद्युत्, मत्स्याकृति मेघ, प्रतिसूर्य, परिघ, इन्द्रधनुष, ऐरावत, सूर्यकिरण ये सब यदि सन्धाकाल में निर्मल हो तो वृष्टि करने वाले होते हैं।[४] नील कमल, वैदूर्यमणि या कमल केशर की तरह कान्ति वाली, वायुरहित और सूर्य के किरणों से प्रकाशित सन्ध्या हो तो उसी दिन वृष्टि होती है।[५] यदि सूर्य के दोनों तरफ परिधि (प्रतिसूर्य) दिखाई दे तो अधिक वृष्टि होती है।[६]

परिवेष यदि एक वर्ण वाला, अधिक निर्मल और क्षुरा (उस्तरा) के समान मेघों से व्याप्त अपने ऋतु में दिखाई दे तो सद्योवृष्टि करता है। यदि पीतवर्ण का परिवेश हो और उस समय सूर्य किरण तीक्ष्ण हों तो भी सद्योवर्षण होता है।[७] यदि भौमादि कोई ग्रह, चन्द्र व कोई नक्षत्र ये तीनों एक परिवेश में हो तो तीन दिन में वृष्टि होती है।[८] प्रतिसूर्य यदि सूर्य मण्डल की उत्तर दिशा में दिखाई पड़े तो वृष्टि होती है।[९] अखण्डित परिघ, निर्मल आकाश, सूर्य की श्यामवर्ण किरणें, स्निग्ध दीधिति, श्वेतवर्ण के इन्द्रधनुष, पूर्वोत्तरा विद्युत् और

१. कादम्बिनी ४/५०
२. बृ. सं. इन्द्रायुधलक्षणा. ३
३. तत्रैव ६
४. तत्रैव सन्ध्यालक्षणा. ८
५. तत्रैव २०
६. बृ. सं. सन्ध्यालक्षणा. २६
७. तत्रैव परिवेषलक्षणा. ७
८. तत्रैव ११
९. तत्रैव प्रतिसूर्यलक्षणा. ३

स्निग्ध या सूर्य किरणों से व्याप्त मेघ वृक्ष हो तो वर्षा होती है अथवा यदि सायंकाल में बहुत बड़ा मेघ सूर्य बिम्ब को आच्छादित करे तो भी वृष्टि होती है।[१]

(६). विद्युत् लक्षणः–

भद्रबाहुसंहिता के अनुसार बिजली (विद्युत) का निम्न प्रकार से फल जानना चाहिए[२]–

	विद्युतनाम	विद्युत दिशा	विशेषता	वृष्टि फल
१.	स्निग्धा	पूर्व	स्निग्ध बादलो से उत्पन्न	वर्षा
२.	कृष्णा	आग्नेय	काले बादल से उत्पन्न	वातवर्षा
३.	अस्निग्धा	—	रश्मिरहित अस्निग्धा	प्रचुर वृष्टि
४.	हरिता	नैर्ऋत्य	—	प्रचुर वृष्टि
५.	रोमक	—	बहुत रोमवाली	प्रचुर वृष्टि
६.	—	वायव्य	—	अल्पवर्षा
७	—	उत्तर	किसी भी वर्ण की बिजली हो	जलवृष्टि
८.	—	ईशान	श्वेत वर्ण की बिजली तिरछी होकर पूर्व में गमन करके दक्षिण में विलीन हो	जलवृष्टि

इसी प्रकार ऊपर नीचे जाने वाली, स्निग्धा और बहुत रश्मि वाली शब्द करती हुई अथवा निःशब्द बिजली सभी दिशाओं में वर्षा करने वाली होती है,[१] यदि शिशिर (माघ, फाल्गुन) में लाल व पीले रंग की बिजली हो

१. बृ. सं. मयूरचित्रका. २३
२. भद्रबाहुसंहिता ५/४–९

तो वर्षा होती है परन्तु बसन्त में नीले व श्वेत रंग की बिजली हो तो कदापि वर्षा नहीं होती।[२] रक्त–अरक्त, हरित–अहरित व नील–अनील बादलों में यदि स्निग्धा बिजली चमकती हो तो वर्षा अवश्य होती है।[३] नील, पीत,रक्त और श्वेत वर्ण की बिजलीयों में से श्वेत रंग की बिजली ऊपर गिरे तो पृथ्वी जलप्लावित होती है।[४]

यदि चन्द्रमण्डल से निकलकर श्वेत मेघयुक्त बिजली सूर्यमण्डल में प्रवेश करे तो उसे अधिक वर्षा सूचक समझना चाहिए।[५] नील, ताम्र, गौर और श्वेत बादलों से बिजली का संचार हो और वह भारी या थोड़ी गर्जना युक्त हो तो अच्छी वर्षा होती है। आकाश के मध्यमार्ग से गमन करने वाली बिजली मध्यम वर्षा, जघन्यमार्ग से गमन करने वाली जघन्य वर्षा और उत्तम मार्ग से गमन करने वाली उत्तम वर्षा की सूचिका होती है।[६]

(७) पशु–पक्षियों के द्वारा निमित्त ज्ञान–

वराहमिहिराचार्य के मत के अनुसार यदि बिल्ली बार–बार अपने नाखूनों से भूमि को खोदे, लोहो में विस्र (कच्चे मांस) की गन्ध से युत मल (जंक) हो जाये या मार्ग में बादलों द्वारा रचित पुल दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि होगी।[७] स्वाद रहित जल, गो नेत्र या काकाण्ड समान नभ, निर्मल दिशा, नमक में विकार (पानी यदि आ जाना), वायु निरोध, अतिशय उछल–उछल कर जल से सूखे में मछलियों का आना व मेढ़कों का बारम्बार टर्र–टर्र की आवाज करना ये सब वृष्टि के लक्षण है।[८] यदि बिना कारण चीटियाँ अपने अण्डों को

---

१. भद्रबाहु सं. ५/१०

२. भद्रबाहु सं. ११

३. तत्रैव १४

४. तत्रैव १५

५. भद्रबाहु सं. ५/१८

६. तत्रैव २२–२३

७. बृहत्संहिता सद्योवर्षणा. ५

एक जगह से दूसरी जगह ले जाएं, सर्पों का मैथुन हो, सर्प वृक्ष पर चढ़े या गाय बिना किसी समुचित कारण के उछले तो शीघ्र वृष्टि होती है।[२]

यदि वृक्ष के शिखर पर स्थित होकर कृकलास (गिरगिट) आकाश की तरफ देखता हो तो शीघ्र वृष्टि होती है।[३] यदि पालतु पशु घर से बाहर होने की इच्छा न करें और कान तथा पाँव हिलाएं तो वृष्टि कहनी चाहिए। अन्य पशुओं की तरह कुत्ता भी चेष्टा करे तो भी वृष्टि कहनी चाहिए।[४] जब घर के छत्तों पर स्थित होकर आकाश की तरफ देखता हुआ कुत्ता भौके तथा ईशान में बिजली दिखाई दे तब जल से पृथ्वी समान हो जाती है अर्थात् अधिक वृष्टि होती है।[५]

यदि लताओं के नये पत्ते ऊर्ध्वमुख के हों, जल या धूलि से पक्षी स्नान करें या सरीसृप (कृमि, कीट, सर्पादि) तृण के प्रान्त भाग पर स्थित हों तो शीघ्र वर्षा होती है। यदि रात्रि में जुगनू मेघ के समीप तक जाए तो शीघ्र मेघ धान्य के क्षेत्रों को पूर्ण करने वाली वृष्टि करता है।[६] यदि प्रदोष समय में वर्षा हो या सियार आवाज करें तो निश्चय करके सात रोज तक दुर्दिन और वृष्टि होती है।[७]

कादम्बिनी में वर्णित है कि घड़े में रखा हुआ जल गरम हो जाय, सब लताओं का मुख ऊँचा हो जाय, कुँकुमकासा तेज चारों ओर से निकलता हो, पक्षी स्नान करते हों, गीदड़ सायंकाल में चिल्लाते हों, सात दिन तक दुर्दिन (मेघाच्छन्न आकाश) रहें, रात्रि में जुगनू जल के समीप जाता हो तो ये सब

---

१. बृहत्संहिता सद्योवर्षण ४
२. बृ. सं. सद्योवर्षणा. ७
३. तत्रैव ८
४. तत्रैव ९
५. तत्रैव १०
६. तत्रैव २३
७. तत्रैव २४

वृष्टि के लक्षण है।[१] कीडियाँ यदि बाधारहित किसी ऊँचे स्थान में अंडों को ले जाती है और कटे सिर की कीडियाँ दिखाई देती हो तो वे भावी वृष्टि की सूचक है।[२]

कृषिपाराशर में वर्णित सद्योवृष्टि ज्ञान के अनुसार–[३] जल के भीतर स्थिर होकर या हाथ में जल लेकर अथवा जल के समीप में यदि कोई वृष्टिविषयक प्रश्न करे तो अविलम्ब वर्षा होती है। चीटियाँ यदि अण्डा लेकर निकलें तथा अकस्मात् मेढ़क शब्द करने लगे तो निश्चय ही वर्षा होगी। यदि विडाल, नेवले, सर्प एवं बिलों में रहने वाले दूसरे प्राणी तथा शलभ मतवाले होकर दौड़ें तो निश्चय ही वर्षा होती है। यदि मार्ग में लड़के धूलि से सेतु–बन्धन करें एवं मयूर नृत्य करें तो निश्चय ही शीघ्र वर्षा होगी। यदि चोट एवं वात से पीडित मनुष्यों के शरीर में पीडा होने लगे एवं सर्प वृक्ष की चोटी पर चढ़े तो यह शीघ्र वर्षा का लक्षण है। जलचारी पक्षियों का धूप में पंखों का सुखाना तथा आकाश में झिल्ली की झंकार का व्याप्त होना शीघ्र वर्षा का लक्षण है। पशुपक्षियों का असाधारण व्यवहार वृष्टि का संसूचक होता है। इसी प्रकार भूमिस्थ व आकाशस्थ जैविक रासायनिक पदार्थों में विकार भी वृष्टि को सूचित करते हैं। यथा वृक्षों पर सर्पों का चढ़ना, सर्पों का व्यवाय (मैथुन), गायों का कूदना, चन्द्र की परछाई (प्रतिचन्द्र) दिखना ये सब भावी वर्षा के लक्षण है।[४] गोबर में उत्कर–कीटों (गंडोलों) का होना, अत्यन्त कठिन परिताप होना, चातक पक्षी की दृष्टि सूर्य पर होना ये तत्कालीन वृष्टि के लक्षण है। पहाड़ यदि घने, धुंधले हों, चमड़े आदि में गीलापन हो, तक्र (छाछ) खटटी हो जाए तो शीघ्र वर्षा होती है।[५] पर्वत यदि काजल के समूह के समान वर्ण के हो जावें, कन्दराओं से वाष्प निकलती हो, गिरगिर, किरकांट (कृकलास) यदि वृक्ष की

१. कादम्बिनी ४/७४–७५
२. तत्रैव ७६
३. कृषि पाराशर वृष्टिखण्ड, सद्योवृष्टि ५६–६१, पृ. ३३
४. कादम्बिनी ४/७७
५. तत्रैव ७८–७९

चोटी पर स्थित होकर आकाश को बहुत देखते हों तथा गायें सूर्य को देखती हों तो शीघ्र वर्षा आती है।[१]

बगुले यदि अपने पंख फैलाकर इधर—उधर बैठते हों तो दो तीन प्रहर के बाद घटाटोप होगा।[२] वृक्ष पर चढ़े हुए सर्पो का चीत्कार शब्द, मेंढकों की जोर की आवाज होती हो तो तीन दिन में वहाँ मेघ निश्चय ही गरजता है[३] चिड़ियाँ मिट्टीमें स्नान करें, टिट्टिभ (टिरहरी) जल में स्नान करें, चातक जोर से शब्द करें तो शीघ्र वर्षा होती है।[४] बकरी यदि अधिक समय तक पवन की गति की ओर मुख करके खड़ी रहे, और छोटे—छोटे सर्प वृक्षों पर चढ़े हो तों शीघ्र ही वर्षा होती है।[५] गोबर में कीड़े पड़ जायें, भौंरों के पंखो में 'भन—भन' शब्द होने लगे, गिरगिट लाल आभा वाले हों जावें तो अवश्य वर्षा आती है।[६] यदि चातक, मोर और सियार बहुत रोने लगें और आधी रात में मुरगों के शब्द हों तो शीघ्र ही वर्षा होती है।[७] मक्खियाँ यदि बहुत फिरने लगें, भ्रमर अधिक घूमने लगें और वे गोबर की गोलिया बनाकर ले जाते हो तो निश्चय ही वर्षा होती है।[८]

उपर्युक्त पशु—पक्षियों के लक्षणों के अतिरिक्त भी पेड़—पौधों, मनुष्यादि प्रणियों तथा अन्य भूमिष्ठ निमितों से भी सद्योवर्षण की सम्भावना व्यक्त की जा सकती है। यथा—यदि घड़े में मक्खन, अफीम, गुड़ अथवा लवण पिघलने लगे तो शीघ्र वर्षा आती है।[१] कागज पर कलम लगाते ही सदि

१. कादम्बिनी ८२—८३
२. कादम्बिनी ८६
३. तत्रैव ८७
४. तत्रैव ८८
५. कादम्बिनी ४/९०
६. तत्रैव ९३
७. तत्रैव ९४
८. तत्रैव ९५

स्याही फैल जाती हो और कठिनता से वह सूखती हो तो वृष्टि करने वाली वायु का आगमन समझना चाहिए।[२] कोंसे में तंग लगने लगें, जल के जीव व्याकुल हो जाये, नालियों के जल में कुछ उष्णता हो जाए तो शीघ्र वर्षा होती है।[३] छोटे पेड़ों की कलियाँ जल जाएं, आक आदि के पेड़ में कलियाँ निकल आवें, बड़ की शाखाओं में खोखले हों जावें तो शीघ्र वर्षा आती है।[४] थोर के पत्तों में यदि जहाँ तहाँ अंकुर निकल आवें तो उन्हें वर्षा कराने वाली हवा बुलाने वाला जानना चाहिए।[५] यदि वृक्ष, गुल्म, लताएं छिद्ररहित स्निग्ध पत्ते वाली दिखाई देती हो तो चारों ओर से दोषरहित वर्षा कराने वाली वायु चलती है।[६]

यदि पुरूष की दाढ़ी–मूंछ गीली सी, चिकनी और नरम हो जाए, प्राणी व्याकुल से व्याकुल होवें, तथा आलस्य, शिथिलता, निद्रा आने लगे तो अवश्य वर्षा आती है।[७] पित्त की प्रकृति वाला मनुष्य यदि प्रगाढ़ निद्रा में दिखाई दे तो वृष्टिकारक वायु का आगमन जानना चाहिए।[८] वात–पित्त प्रधान मनुष्य का शिर यदि अधिक घूमने लगे तो वृष्टिकारक वायु का आगमन जानना चाहिए।[९]

---

१. कादम्बिन ४/८९
२. तत्रैव १०१
३. तत्रैव ९६
४. तत्रैव ९१
५. कादम्बिनी ९७
६. तत्रैव ४/९८
७. तत्रैव ९२
८. तत्रैव ९९
९. तत्रैव १००

अष्टम अध्याय

मानसून

१. लक्षण

मानसून पवन सामयिक अथवा मौसमी पवन है। संभवत: मानसून शब्द की रचना या तो अरबी भाषा के शब्द मौसिन (मौसम) या मलेशियन शब्द मॉनसिन (Monsin) से हुई है। मानसून पवन वे पवन हैं जो मौसम के अनुसार अपनी दिशा बदल लेते हैं अर्थात् गर्मियों के मौसम में मानसून पवन समीपस्थ सागरों-महासागरों से महाद्वीपों की ओर चलते हैं और सर्दियों में इसके विपरीत महाद्वीपों से समीपवर्ती सागरों-महासागरों की ओर चलने लगते हैं।[१] ऋतु परिवर्तन के साथ इन पवनों की दिशा में आमूल परिवर्तन ही इनका सर्वप्रमुख लक्षण है। इन पवनों की दिशा में परिवर्तन का मूल कारण वायुदाब प्रवणता में मौसमी उलटफेर माना जाता है। पृथ्वी के ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जहाँ शीतऋतु से ग्रीष्मऋतु में तापमान परिवर्तन के कारण वायुदाब में परिवर्तन हो जाता है। अत: वर्ष के छ: महीने जल से स्थल की ओर तथा शेष ६ महीने स्थल से जल की ओर पवनों का प्रवाह होता है। वास्तव में मानसून शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम अरब सागर पर चलने वाले उन पवनों के लिए किया गया था जो वर्ष के आधे भाग में दक्षिण पश्चिम से तथा आधे भाग में उत्तर पूर्व से चला करते हैं किन्तु पवनों की दिशा में पूर्ण मौसमी परिवर्तन ही इन आवर्ती पवनों का एकमात्र लक्षण नहीं है। जलवायु विज्ञान में मानसून शब्द का प्रयोग केवल उन पवनों के लिए किया जाता है जिनकी दिशा में

---

१. जलवायु विज्ञान, एस.एल.गुप्ता पृ. १४२–१४३

मौसमी परिवर्तन का कारण स्थल एवं जलखण्डों का असमान ऊष्मन होता है। तापीय कारणों से उत्पन्न मानसूनी पवनों को ट्रेवार्था ने सुविस्तृत संवाहनिक प्रणाली माना है।[१]

ग्रीष्म ऋतु में विशाल स्थल-खण्ड समीपवर्ती महासागरों की अपेक्षा अधिक गरम हो जाते हैं। जिससे उन पर न्यून वायुदाब क्षेत्र विकसित हो जाते हैं, क्योंकि पवनप्रवाह सदैव उच्चदाब से निम्नदाब की ओर होता है, अत: इस ऋतु में सागरों से स्थल की ओर हवाएं चलने लगती है। जल की सतह पर चलने वाली ग्रीष्मकालीन मौसमी हवाएं जलवाष्प से परिपूर्ण होती हैं। इन भाप भरी हवाओं से अनुकूल परिस्थितियों में स्थलखण्डों पर भारी वर्षा होती है। अत: मौसमी हवाओं के प्रभाव के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में वर्षाऋतु होती है। इसके विपरीत शीतकाल में स्थलखण्डों के ऊपर उच्च वायु दाब क्षेत्र तथा उससे संलग्न महासागरों पर निम्न वायुदाब क्षेत्र स्थापित हो जाते हैं, जिससे स्थल से जल की ओर हवाएं चलने लगती है। स्थल से चलने के कारण शीतकालीन मानसूनी पवनें शीतल और शुष्क होती हैं। अत: प्राय: शीतकाल में मौसम शुष्क रहता है। जलवायु शास्त्र के अनेक विद्वानों ने मौसमी हवाओं को स्थल समीर कहा है इसे ही सागर समीर का बृहत् रूप कहा जाता है। विशुद्ध तापीय कारणों से मौसमी हवाओं की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त को मानसून की उत्पत्ति का 'क्लासिकल सिद्धान्त' भी कहा जाता है।[२]

२. उद्‌गम –

मानसून की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतवैभिन्यता एवं अनेक संकल्पनाएं हैं जिनके आधार पर मानसून उत्पत्ति की जटिलता को समझा जा सकता है। ये संकल्पनाएं इस प्रकार हैं[३]–

१. जलवायु विज्ञान, डी.एस.लाल. पृ. १४७
२. जलवायु विज्ञान, डी.एस.लाल. पृ. १४८
३. जलवायु विज्ञान, के मूलतत्व, पृ. १५८–१५९

१. चिरसम्मत संकल्पना (Old-Traditional Hypothesis)

इस संकल्पना का प्रतिपादन जल एवं स्थल की उपस्थिति एवं ऋतु परिवर्तन के आधार पर हुआ है। इस संकल्पना के अनुसार हवाएं ग्रीष्म में महासागर से महाद्वीप की ओर एवं शीतकाल में महाद्वीप से महासागर की ओर चलती हैं। महाद्वीपों की ओर चलने के कारण इन हवाओं पर कोरियोलिस एवं संघर्षण बलों का प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में इन हवाओं की दिशा दक्षिण–पश्चिम हो जाती है। महाद्वीपों से महासागरों की ओर प्रवाहित होने पर इन हवाओं की दिशा उत्तर–पूर्व हो जाती है।

२. स्पेट की संकल्पना –

स्पेट के अनुसार मानसून हवाओं की उत्पत्ति का कारण चक्रवातों की उत्पत्ति है। ये चक्रवात तीव्र वायुराशियों के एक स्थान पर एकत्र होने से उत्पन्न होते हैं। इन वायुराशियों में एक वायुराशि महाद्वीपीय उष्ण प्रदेशीय है, जो कि शुष्क होती है। दूसरी वायुराशि मानसून की वायुराशि है जो आर्द्र होती है। तीसरी वायुराशि महासागरों से आने वाली मानसूनी हवाएं हैं जिनकी आर्द्रता अधिक एवं तापमान कम होता हे। अत: पुराने एवं नवीन वायुराशियों के मध्य महाद्वीपीय उष्णप्रदेशीय वायुराशि के आ जाने पर एक वाताग्र की उत्पत्ति हो जाती है, जिसके फलस्वरूप चक्रवात उत्पन्न होते हैं, जिनमें वायु की गति धीमी होती है।

३. फ्लोन की संकल्पना –

जर्मन मौसमवेत्ता फ्लोन के अनुसार सन्मार्गी हवाओं के अभिसरण के फलस्वरूप भूमध्यरेखीय शान्ति पेटी के दोनों तरफ एक वाताग्र की उत्पत्ति हो जाती है जिसको 'अन्तरा उष्णकटिबन्धी अभिसरण' कहते हैं। ग्रीष्मकाल में यह वाताग्र उत्तर की ओर खिसककर महाद्वीप के भीतरी भाग तक पहुँच जाता है एवं वाताग्र में कई चक्रवात उत्पन्न हो जाते हैं। जिसके कारण एक अर्धस्थायी अल्पदाब का केन्द्र स्थापित हो जाता है जो ताप से उत्पन्न

मौसमी परिवर्तन का कारण स्थल एवं जलखण्डों का असमान ऊष्मन होता है। तापीय कारणों से उत्पन्न मानसूनी पवनों को ट्रेवार्था ने सुविस्तृत संवाहनिक प्रणाली माना है।[१]

ग्रीष्म ऋतु में विशाल स्थल-खण्ड समीपवर्ती महासागरों की अपेक्षा अधिक गरम हो जाते हैं। जिससे उन पर न्यून वायुदाब क्षेत्र विकसित हो जाते हैं, क्योंकि पवनप्रवाह सदैव उच्च्दाब से निम्नदाब की ओर होता है, अत: इस ऋतु में सागरों से स्थ्ल की ओर हवाएं चलने लगती है। जल की सतह पर चलने वाली ग्रीष्मकालीन मौसमी हवाएं जलवाष्प से परिपूर्ण होती हैं। इन भाप भरी हवाओं से अनुकूल परिस्थितियों में स्थलखण्डों पर भारी वर्षा होती है। अत: मौसमी हवाओं के प्रभाव के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में ग्रीष्मकाल में वर्षाऋतु होती है। इसके विपरीत शीतकाल में स्थलखण्डों के ऊपर उच्च वायु दाब क्षेत्र तथा उससे संलग्न महासागरों पर निम्न वायुदाब क्षेत्र स्थापित हो जाते हैं, जिससे स्थल से जल की ओर हवाएं चलने लगती है। स्थल से चलने के कारण शीतकालीन मानसूनी पवनें शीतल और शुष्क होती हैं। अत: प्राय: शीतकाल में मौसम शुष्क रहता है। जलवायु शास्त्र के अनेक विद्वानों ने मौसमी हवाओं को स्थल समीर कहा है इसे ही सागर समीर का बृहत् रूप कहा जाता है। विशुद्ध तापीय कारणों से मौसमी हवाओं की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त को मानसून की उत्पत्ति का 'क्लासिकल सिद्धान्त' भी कहा जाता है।[२]

२. उद्गम –

मानसून की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में मतवैभिन्यता एवं अनेक संकल्पनाएं हैं जिनके आधार पर मानसून उत्पत्ति की जटिलता को समझा जा सकता है। ये संकल्पनाएं इस प्रकार हैं[३]–

१. जलवायु विज्ञान, डी.एस.लाल. पृ. १४७
२. जलवायु विज्ञान, डी.एस.लाल. पृ. १४८
३. जलवायु विज्ञान, के मूलतत्व, पृ. १५८–१५९

१. चिरसम्मत संकल्पना (Old-Traditional Hypothesis)

इस संकल्पना का प्रतिपादन जल एवं स्थल की उपस्थिति एवं ऋतु परिवर्तन के आधार पर हुआ है। इस संकल्पना के अनुसार हवाएं ग्रीष्म में महासागर से महाद्वीप की ओर एवं शीतकाल में महाद्वीप से महासागर की ओर चलती हैं। महाद्वीपों की ओर चलने के कारण इन हवाओं पर कोरियोलिस एवं संघर्षण बलों का प्रभाव पड़ता है। इस स्थिति में इन हवाओं की दिशा दक्षिण–पश्चिम हो जाती है। महाद्वीपों से महासागरों की ओर प्रवाहित होने पर इन हवाओं की दिशा उत्तर–पूर्व हो जाती है।

२. स्पेट की संकल्पना –

स्पेट के अनुसार मानसून हवाओं की उत्पत्ति का कारण चक्रवातों की उत्पत्ति है। ये चक्रवात तीव्र वायुराशियों के एक स्थान पर एकत्र होने से उत्पन्न होते हैं। इन वायुराशियों में एक वायुराशि महाद्वीपीय उष्ण प्रदेशीय है, जो कि शुष्क होती है। दूसरी वायुराशि मानसून की वायुराशि है जो आर्द्र होती है। तीसरी वायुराशि महासागरों से आने वाली मानसूनी हवाएं हैं जिनकी आर्द्रता अधिक एवं तापमान कम होता हे। अत: पुराने एवं नवीन वायुराशियों के मध्य महाद्वीपीय उष्णप्रदेशीय वायुराशि के आ जाने पर एक वाताग्र की उत्पत्ति हो जाती है, जिसके फलस्वरूप चक्रवात उत्पन्न होते हैं, जिनमें वायु की गति धीमी होती है।

३. फ्लोन की संकल्पना –

जर्मन मौसमवेत्ता फ्लोन के अनुसार सन्मार्गी हवाओं के अभिसरण के फलस्वरूप भूमध्यरेखीय शान्ति पेटी के दोनों तरफ एक वाताग्र की उत्पत्ति हो जाती है जिसको 'अन्तरा उष्णकटिबन्धी अभिसरण' कहते हैं। ग्रीष्मकाल में यह वाताग्र उत्तर की ओर खिसककर महाद्वीप के भीतरी भाग तक पहुँच जाता है एवं वाताग्र में कई चक्रवात उत्पन्न हो जाते हैं। जिसके कारण एक अर्धस्थायी अल्पदाब का केन्द्र स्थापित हो जाता है जो ताप से उत्पन्न

अल्पदाब की उपस्थिति के कारण अधिक प्रबल हो जाता है। वाताग्र के साथ भूमध्यरेखीय पश्चिमी हवाएं भी उत्तर की ओर खिसक जाती हैं और सागरी हवाओं के रूप में महाद्वीपों के तटवर्ती भागों में चलने लगती हैं। इस तरह ग्रीष्मकाल की दक्षिणी हवाएं भूमध्यरेखीय पश्चिमी हवाओं का ही एक अंश है। ग्रीष्मकालीन मानसूनी वर्षा भी इन्हीं "अन्तरा उष्णकटिबन्धी वाताग्र" के मध्य अक्षांशों तक खिसक जाने के कारण होती है।

शीतकाल में मानसूनी प्रदेश में दुर्बल उच्च दाब का क्षेत्र स्थापित हो जाता है परन्तु उपोष्ण उच्च दाब की पेटियों के खिसक जाने से दुर्बल मानसूनी दाब के केन्द्र प्रबल हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप प्रतिचक्रवात की दशा उत्पन्न हो जाती है एवं उत्तर पूर्वी हवाएं चलने लगती हैं। इस प्रकार फ्लोन के विचार में हवाओं का यह उत्क्रमण तापीय कारणों पर आधारित नहीं है, बल्कि ग्रहीय तापक्रम में सन्मार्गी वायु के पुनर्स्थापन का द्योतक है।

४. नवीन अवधारणा –

इस अवधारणा के अन्तर्गत मुख्यरूप से पंत, रामामूर्ति, जम्बुनाथन्, रामास्वामी, अन्तकृष्णन, कोटेश्वरम् एवं रमन तथा रामानाथम् आदि विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। पंत, रामामूर्ति, जम्बुनाथन् एवं रामास्वामी के मतानुसार भूमध्यरेखा पर दक्षिण से उत्तर को वायुगमन ही दक्षिणी–पश्चिमी मानसून की उत्पत्ति का आधार है। अनन्तकृष्णन के अनुसार क्षोभमण्डल की पछुवा हवा की प्रबलता एवं दुर्बलता का ऊपरी क्षोभमण्डल की पूर्वी हवा से कोई सम्बन्ध नहीं है। कोटेश्वरम् का मत है कि उष्णकटिबंधीय एशिया एवं अफ्रीका पर पूर्वी हवा भारतीय दक्षिणी–पश्चिमी मानसून के ऊपर स्थित है। उष्ण कटिबंधीय पूर्वी 'जेट' हवा तिब्बत के पठार के तापीय प्रवाह से उत्पन्न होती है। फ्लोन महोदय का मत है कि उत्तरी ग्रीष्म के महीनों में 'जेट' पवन पृथ्वी के आधे वृत्त में फैल जाती है, जबकि इनका कहना है कि 'जेट' उत्तरी गोलार्द्ध की एक अनुपम दशा है। दक्षिणी गोलार्द्ध पर दक्षिणी ग्रीष्म में 'जेट' का निर्बल रूप मिलता है।

रमन एवं रामानाथम् के अनुसार पूर्वी हवा का अधिकतम रूप ऊपरी क्षोभमण्डल में भारत के ऊपर घोर वर्षा के पश्चात् बनता है। इससे सिद्ध होता है कि वृष्टि से ऊपरी स्तर को सहयोग मिलता है और यह गुण ताप के निष्कासन से मिलता है, जिससे ऊपरी क्षोभमण्डल के संचालन में परिवर्तन आ जाता है। फ्लोन के अनुसार तिब्बत का ऊँचा पठार तथा क्षोभमण्डल में उष्णता के स्रोत का कार्य करता है जिसके फलस्वरूप अचानक शीतऋतु में ग्रीष्मऋतु के संचालन में परिवर्तन आ जाता है एवं मानसून का विस्फोट हो जाता है।

टाटा इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिक डॉ० रामा ने १९६२ में राडान तत्त्वों के आधार पर मानसून की वर्षा होने पर परिकल्पना की थी। राडान तत्त्व एक प्रकार के नमी ग्रहण करने वाले तत्त्व होते हैं जो मानसून हवाओं के साथ परिभ्रमण करते हैं। ये तत्त्व अफ्रीका के पूर्वी तट एवं मध्यपूर्व के क्षेत्रों में अधिक मात्रा में अवस्थित रहते हैं। हवाओं के साथ जब मानसून परिसर दक्षिण-पश्चिम का होता है, तो ये तत्त्व हवाओं के साथ आ जाते हैं और भारत एवं समस्त दक्षिण-पूर्वी एशिया में वर्षा का कारण बनते हैं। जिस वर्ष ये तत्त्व कम मात्रा में होते हैं उस वर्ष वर्षा में कमी रहती है। इस अवधारणा को अधिक पुष्ट नहीं माना जाता है परन्तु फ्लोन ने हवाओं के वार्षिक स्थानान्तरण तथा सम्पूर्ण पृथ्वी के क्रम के रूप में केवल दो ही प्रदेशों की हवाओं को उत्क्रमण हवाएं माना है–

(i) ध्रुवीय पूर्वी हवाएं तथा मध्य आक्षांशीय पछुवा हवाओं के संक्रामक प्रदेश की हवाएं।

(ii) मध्य अक्षांशीय पछुवा हवाओं तथा उष्ण कटिबन्धीय व्यापारिक हवाओं के संक्रांत प्रदेश की उपोष्णीय हवाएं।

मानसून हवाओं की उत्पत्ति –

उपर्युक्त संकल्पनाओं के आधा पर तथा जलवायु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानसूनी हवाओं की उत्पत्ति के विषय में निम्न अवधारणायें बनती हैं[१]–

१. फ्लोन द्वारा कथित उपर्युक्त दोनों प्रदेशों में हवाओं का व्युत्क्रमण निश्चित ही होता है। परन्तु जल और थल के ताप विभिन्नताओं से प्रभावित होकर कोई मौसमी प्रभाव नहीं होता। अत एव जलवायु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से मानसून हवाओं में केवल वे ही उत्क्रमण हवाएं सम्मिलित की जाती हैं जिनका जन्म उष्ण तथा उपोष्णीय प्रदेशों में महाद्वीप और महासागरों के विषम ताप ग्रहण करने की शक्ति के कारण होता है। तापजन्य मानसूनी हवाएं वास्तव में संवाहनिक क्रम का ही एक विशद रूप है। कहा जा सकता है कि मानसूनी हवाएं जलीय एवं स्थलीय समीरों के वृहत् रूप हैं।

२. यद्यपि ग्रीष्मकालीन मानसून हवाएं सागरीय जलवाष्प को स्थलखण्ड तक लाती हैं, तथापि वास्तविक वर्षा की मात्रा न्यूनदाब गर्तो के ही कारण होती है, जो V (वी) के आकार की होती है और उनका खुला भाग सागर की ओर रहता है। वर्षा की मात्रा भी सम्पूर्ण काल में नहीं होती बल्कि समय-समय पर शुष्क और स्वच्छ मौसम भी कई दिनों तक रहता है। आधुनिक भूगोलशास्त्री मानसूनी वर्षा का कारण भी लहर प्रभाव, चक्रवात प्रभाव, संवाहनिक प्रभाव तथा धरातलीय प्रभाव ही मानते हैं।

३. मानसून हवाओं को कुछ वैज्ञानिक व्यापारिक हवाओं के ही रूप मानते हैं, जो फेरल के नियमानुसार विषुवत् रेखा को पार करने के बाद गोलार्द्ध की ग्रीष्मऋतु में विषुवतरेखीय निम्नभार उत्तर की ओर

---

१. जलवायु विज्ञान के मूल तत्त्व– ए.के तिवाड़ी एवं बी.एल.शर्मा, पृ. १६०–१६१

खिसक जाता है तथा उपोष्णीय प्रतिचक्रवात केन्द्र और भी उत्तर में पहुँच जाते हैं। दक्षिण एशिया में यह वायुभार पेटी का स्थानान्तरण जल और स्थल की विषम ताप ग्रहण करने की शक्ति के कारण और भी अधिक सक्रिय जो जाता है। परिणामस्वरूप व्यापारिक हवाएं विषुवत् रेखा में समाप्त न होकर महाद्वीपों के ग्रीष्मकालीन निम्नभार केन्द्रों में पहुँच जाती हैं। इन्हीं को मानसून हवाएं कहते हैं। मानसून हवाओं के आगमन की सूचना भारतवर्ष में दक्षिणगोलार्द्ध के व्यापारिक हवाओं की गति और दिशा परिवर्तन से ही प्राप्त हो जाती है।

उपर्युक्त तीनों कारणों के सम्मिलित प्रवाह से मानसून हवाओं का जन्म होता है। सम्पूर्ण पृथ्वी के लिए ये हवाएं विषुवत् रेखा पार करने वाली व्यापारिक हवाएं हैं। महाद्वीपीय एशिया के लिए ये जल और स्थल की मौसमी वायुभार प्रवणता के परिणाम हैं तथा अन्य स्थानीय प्रदेशों में ये चक्रवातीय वायुविक्षोभ के प्रतिरूप हैं।

३. विस्तार[१]—

ग्रीष्मकालीन मानसून— भारतीय मानसून हवाओं को आदर्श मानसून माना जाता है। मानसून की प्रचलित अवधारणा के अनुसार ग्रीष्मऋतु में पश्चिमोत्तर भारत में एक स्थायी तापीय निम्न वायुभार केन्द्र स्थापित हो जाता है जिसकी ऊँचाई वायुमण्डल में ७०० मिलीबार, सतह तक होती है। इसके अतिरिक्त, सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरीभाग में पाकिस्तान से पश्चिमी बंगाल तक न्यून वायुदाब गर्त की स्थापना हो जाती है। ठीक इसके विपरीत, हिन्द महासागर तथा अरब सागर के विस्तृत जलभागों एवं ऑस्ट्रेलिया में उच्च वायुदाब के क्षेत्र पाए जाते हैं। अतः ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में संलग्न हिन्द महासागर तथा अरबसागर से हवाएं उपर्युक्त निम्न वायुदाब गर्त की ओर

---

१. जलवायु विज्ञान, डी.एस.लाल, पृ. १५३—१५४

आकृष्ट होने लगती है। ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में तो समीपवर्ती सागरों से थोड़ी दूर से हवाएं चलती हैं, किन्तु मई के अन्त तथा जून के प्रथम सप्ताह में ग्रीष्मऋतु की प्रखरता में वृद्धि के साथ-साथ वायुभार प्रवणता तीव्र होने पर दक्षिणी गोलार्द्ध में चलने वाली दक्षिणी-पूर्वी व्यापारिक पवन भी उत्तर ओर खिंचकर विषुवत् रेखा को पार कर जाते हैं। विषुवत् रेखा को पार करते ही इन पवनों की दिशा में फेरल के नियम के अनुसार परिवर्तन हो जाता है जिससे यह अब दक्षिण-पश्चिम से उत्तर तथा उत्तर-पूर्व की ओर प्रवाहित होने लगते हैं। ध्यातव्य है कि सूर्य के उत्तरायण होने के कारण विषुवत रेखीय प्रशान्तमण्डल भी उत्तर की ओर खिसक आता है, तथा इसके साथ ही उत्तरी अन्तरोष्ण अभिसरण क्षेत्र भी ३०° उत्तरी अक्षांश के निकट आ जाता है।

पश्चिमोत्तर भारत में स्थित तापीय निम्न वायुदाब केन्द्र की ओर हिन्दमहासागर के ऊपर से होती हुई हजारों मील की दूरी तय करके उष्णकटिबन्धीय समुद्री हवाएं आती हैं, जिनमें जलवाष्प की असीमित मात्रा तथा अत्यधिक वृष्टि की सम्भावनाएं निहित होती है। भारतीय उपमहाद्वीप की ओर अग्रसर होने वाली मानसूनी हवाएं भारत के प्रायद्वीपीय आकार के कारण दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है-(i) अरबसागर की शाखा एवं (ii) बंगाल की खाड़ी की शाखा।

(i) अरबसागर की शाखा

इसकी प्रमुख शाखा पश्चिम घाट से लगभग ९०° के कोण पर मिलती है। इस शाखा से पश्चिमी घाट के वायु अभिमुख ढाल पर भारी मात्रा में वर्षा होती है। पश्चिमी घाट को पार करके जब ये हवाएं पठारी भागों में प्रवेश करती हैं तब अवतलन के कारण इनकी वृष्टि करने की क्षमता अत्यधिक क्षीण हो जाती है। अत: पश्चिमी घाट के वायुविमुख ढाल की ओर स्थित क्षेत्रों को वृष्टि छाया प्रदेश कहा जाता है। अरब सागर की शाखा की कुछ धाराएं उत्तर की ओर काठियावाड़ तथा कच्छ से होती हुई थार के मरुस्थल को पार करती हुई कश्मीर की ओर चली जाती हैं। इन धाराओं से राजस्थान में

वर्षा नहीं होती, क्योंकि इनके मार्ग में किसी प्रकार के समानान्तर स्थित होने के कारण इनको रोककर वृष्टि उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध नहीं होती। क्योंकि इनके मार्ग में कोई अवरोध नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त, राजस्थान की ओर बढ़ने वाली मानसूनी धाराएं छिछली होती हैं तथा इनके ऊपर प्रतिचक्रवातीय स्थायी वायुराशियाँ पायी जाती हैं। अत: इन धाराओं के ऊपर उठने तथा उनसे वृष्टि होने की सम्भावना नहीं रहती। इस क्षेत्र में उत्पन्न निम्नदाब क्षेत्र की ओर पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिम से शुष्क और इनका अवतलन होने से वृष्टि के लिए प्रतिकूल अवस्थाएं उत्पन्न हो जाती हैं।

अरबसागर की मुख्य शाखा की कुछ धाराएं उत्तर में नर्मदा तथा ताप्ती की घाटियों से होकर छोटा नागपुर की ओर चली जाती हैं, जहाँ वे बंगाल की खाड़ी वाली शाखा से पुन: मिलती हैं। पालघाट से होकर प्रायद्वीपीय भारत के आन्तरिक भागों में प्रवेश करने वाली अन्य धाराएं अरब सागर की शाखा की अपेक्षा अधिक देर से स्थल खण्ड तक पहुँचती है।

(ii) बंगाल की खाड़ी की शाखा

यह सर्वप्रथम बर्मा के पश्चिमी तट पर स्थित अराकानयोमा तथा तनासरिम की पहाडियों से टकराती है जिससे वहाँ घनघोर वृष्टि होती है। इस शाखा की कुछ धाराएं बंगाल की खाड़ी से असम की ओर बढ़ती हैं जिनसे वहाँ घनघोर वृष्टि होती है, जहाँ खासी की पहाड़ियों के दक्षिणी ढाल पर स्थित चेरापूँजी नामक स्थान में विश्व में सर्वाधिक वृष्टि होती है। यहाँ की औसत वार्षिक वृष्टि ९६५ से.मी. है। मानसून की कुछ धाराएं हिमालय से टकराकर उसके दक्षिणी ढाल पर वृष्टि करती हुई गंगा की घाटी की ओर मुड़ जाती हैं। इन धाराओं द्वारा होने वाली वृष्टि की मात्रा पूरब से पश्चिम तथा हिमालय से दक्षिण की ओर कम होती जाती है। भारत के पश्चिमी छोर पर स्थित पंजाब पहुँचकर वृष्टि की मात्रा केवल २५ से.मी. रह जाती है।

''दक्षिणी पश्चिमी मानसून'' अथवा ग्रीष्मकालीन मानसून के द्वारा भारतीय उपमहाद्वीप के बहुत बड़े भाग में वर्षा होती है। वस्तुत: इस भूखण्ड की सम्पूर्ण वर्षा का ९०% भाग इन्हीं के द्वारा प्राप्त होता है। यहाँ मानसून 'वर्षा' का पर्यायवाची माना जाता है। ग्रीष्मकालीन मानसून तथा भारतीय कृषि में परस्पर गहरा सम्बन्ध है। अत: साधारण बोलचाल की भाषा में मानसून शब्द का प्रयोग ग्रीष्मकालीन मानसून के लिए ही किया जाता है।

शीतकालीन मानसून

सूर्य के दक्षिणायन होने पर पश्चिमोत्तर भारत स्थित न्यूनभार केन्द्र क्रमश: क्षीण होने लगता है जिससे वायुदाब वितरण व्यवस्था में आमूल परिवर्तन हो जाता है। इस ऋतु में पश्चिमोत्तर भारत में उच्चभार केन्द्र स्थापित हो जाता है, जबकि हिन्दमहासागर अरबसागर एवं आस्ट्रेलिया में न्यून वायुभार क्षेत्र पाए जाते हैं। इस ऋतु में वायुभार प्रवणता स्थलखण्ड से समुद्र की ओर हो जाती है। अत: इस ऋतु में स्थल पर उच्च दाब तथा समीपवर्ती सागरों पर निम्नदाब होने के कारण पवनों का प्रवाह स्थल से जल की ओर होने लगता है। भारत अथवा सम्पूर्ण दक्षिणी एशिया पर स्थली पवनों का प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। स्थल से चलने के कारण ये हवाएं प्राय: शुष्क होती है जिससे इन्हें शीतकालीन मानसून अथवा शुष्क मानसून कहा जाता है।

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत की ऊँचाइयों के कारण शीतऋतु में मध्यएशिया अथवा साइबेरिया से चलने वाली शीतल और शुष्क हवाएं यहाँ तक नहीं पहुँचने पातीं। ट्रेवार्था के अनुसार इस ऋतु में हिमालय के दक्षिण स्थित जेट–स्ट्रीम तथा उपोष्णीय कटिबन्ध प्रति चक्रवात की अवरोही वायु उत्तरी पवन के रूप में धरातल पर चलती है। शीतऋतु में सभी वायुदाब एवं पवन पेटियों के दक्षिण की ओर खिसक जाने से डोलड्रम भी दक्षिण की ओर खिसक जाता है। अत: शीतकालीन मानसून आंशिक रूप से उत्तरी पूर्वी व्यापारिक पवनों से मिल जाती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के

विभिन्न भागों में पवनों की दिशा एक समान नहीं रहती। उत्तर भारत में पवन की दिशा प्रमुख रूप से उत्तर–पश्चिम तथा उत्तर रहती है, जबकि प्रायद्वीपीय भारत की ओर बंगाल की खाड़ी के पूर्वी तट के दक्षिणी भाग में इन शीतकालीन पवनों से शीतकालीन वर्षा होती है। शीतकाल में भारतीय उपमहाद्वीप में मौसम सामान्यतया शुष्क रहता है। उत्तर भारत के अधिकांश भागों में शीतकालीन चक्रवातों अथवा गर्त चक्रों से हल्की अथवा साधारण वृष्टि हो जाती है। इसी ऋतु में उत्तर पर्वतीय भागों में हिमवर्षा भी होती है।

मानसून प्रस्फोट[१] –

भारतीय उपमहाद्वीप में दक्षिण–पश्चिमी मानसून का आगमन आकस्मिक होता है, तड़ित झंझा तथा उसके द्वारा होने वाली मूसलाधार वर्षा, आंधी, बादल की गरज तथा बिजली की चमक के साथ मानसून के प्रथम झोंके का आगमन होता है जिसे 'मानसून प्रस्फोट' कहा जाता है। इसके साथ ही वायु का तापमान काफी नीचे गिर जाता है तथा ग्रीष्मकालीन मौसम की कड़ी तथा झुलसने वाली गर्मी का अन्त हो जाता है किन्तु मानसून के आगमन के साथ ही वायुमण्डल की सापेक्ष आर्द्रता में अप्रत्याशित वृद्धि हो जाने से मौसम उमसपूर्ण हो जाता है।

भारतीय मानसून को बायर्स ने 'आदर्श मानसून' माना है किन्तु उनके मतानुसार भारत में केवल ग्रीष्मकालीन मानसून ही पाया जाता है। क्योंकि भारत के उत्तर में हिमालय, पूर्व में स्थित वर्मा एवं हिन्दचीन की पर्वतमालाएं शीतकालीन मानसून को भारत पहुँचने से रोक देती है।

हवाई विश्वविद्यालय के मौसम विशेषज्ञ कोलोन रैमेज का मत है कि हिन्द महासागर के ऊपर मानसून की शक्तिशाली प्रणाली इतनी जटिल है कि भारतीय उपमहाद्वीप के लिए बहुत पहले मौसम सम्बन्धी भविष्यवाणी करना स्पष्टत: अभी एक असम्भव कार्य है। उनके मतानुसार मानसून एक प्रकार की

---

१. जलवायु विज्ञान–डी.एस.लाल, पृ. १५४–१५५

शक्तिशाली पवन धाराएं हैं जो अप्रैल से अक्टूबर तक दक्षिण एशियाई तटों के ऊपर से होकर बहती है। पुन: पलट कर उत्तर-पूर्व दिशा से अत्यन्त मन्दगति से वर्ष के शेष भाग में बहती रहती हैं। ग्रीष्मकालीन पवन धाराएं हिन्द महासागर के ऊपर से भारी मात्रा में नमी और ताप ग्रहण करके एशिया के दक्षिणी भू-भागों पर घनघोर वर्षा करती है और उस क्षेत्र की खेती पर गहरा प्रभाव डालती है। मानसून प्रणाली भारत और पाकिस्तान के ऊपर फैले वायुमण्डल में विशाल मात्रा में शक्ति का संचार करती है जिससे उस क्षेत्र में और सम्भवत: समस्त भूमण्डल पर, तापक्रम और पवन चक्र प्रभावित होते हैं।

मानसून आगमन का समय–

केरल तट पर वैसे तो मानूसन का अभ्युदय २-३ जून को ही हो जाता है परन्तु इससे पूर्व मानसून का आगमन सबसे पहले बंगाल की खाड़ी में २० मई के आसपास अंडमान तथा तनासरीम तट पर हो जाता है और २५ मई तक मानसून बंगलादेश पहुँच जाता है। २९-३० मई तक मानसून असम तथा उत्तर-पूर्वी भारत में प्रवेश कर जाता है, और यहाँ की पहाड़ियों से टकराकर पश्चिम की ओर मुड़ जाता है जिससे बंगाल, बिहार और उत्तरप्रदेश में वर्षा होती है।[१] भारतवर्ष में मानसून के आगमन की प्राय: निश्चित तिथियाँ हैं जो कुछ विशेष राज्यों में निम्न प्रकार से हैं[२] –

राज्य	वर्षा आरम्भतिथि	वर्षा समाप्ति तिथि
असम	२५ मई	३० अक्टूबर
बंगाल	१ जून	१५ से ३० अक्टूबर
महाराष्ट्र	५ जून	१५ अक्टूबर
मध्यप्रदेश	१० जून	१५ अक्टूबर

१. जलवायु विज्ञान–एस.एल.गुप्ता, पृ. १७३

२. जलवायु विज्ञान के मूल तत्व–ए.क.तिवाड़ी एवं बी.एल.शर्मा, पृ. १६६

राजस्थान	१५ जून	२० सितम्बर
उत्तरप्रदेश	२५ जून	२० सितम्बर
पंजाब	१ जुलाई	१४ से २१ सितम्बर

४. अवरोधक तत्त्व –

भारत में मानसून के आगमन समय, वर्षा की मात्रा आदि की स्थिति प्रत्येक वर्ष एक समान नहीं होती हैं। मानसून कुछ महत्वपूर्ण कारणों से विलम्ब में एवं कम वर्षा कारक होता है। भारत में मानसून के इन अवरोधक तत्वों में कुछ महत्वपूर्ण तत्व या कारण निम्न हैं[1]–

१. भारत के औसत न्यूनतम तापमान में कमी –

भारत के औसत न्यूनतम तापमान को निकालने के लिए कलकत्ता जैसलमेर और जयपुर नगरों के मार्च माह के ३१ दिनों के न्यूनतम तापमान को जमा करके ३१ से भाग करने से उपर्युक्त तीनों नगरों के औसत न्यूनतम तापमान को जमा करके ३ से भाग करने पर इनका सम्मिलित औसत न्यूनतम तापमान आ जाता है, जिसे भारत का औसत न्यूनतम तापमान माना जाता है। भारत के इस औसत न्यूनतम तापमान तथा दक्षिण भारत में होने वाली मानसूनी वर्षा के मध्य सीधा सम्बन्ध देखने में आता है। यदि औसत न्यूनतम तापमान कम रहता है तो वर्षा की मात्रा भी कम होती है। इसी प्रकार लुधियाना में अप्रैल के औसत तापमान एवं उत्तर–पश्चिम भारत में होने वाली मानूसनी वर्षा के मध्य भी गहरा सम्बन्ध है।

(२) दक्षिण अमेरिका में वायुदाब की अधिकता–

दक्षिण अमेरिका के वायुदाब का उत्तर–पश्चिम भारत में होनेवाली वर्षा के बीच ठीक उलटा सम्बन्ध है। इसके लिए दक्षिण अमेरिका के कार्डोबा, ब्यूनस आयर्स, तथा सेंटियागो के अप्रैल–मई के औसत वायुदाब को निकाला

१. जलवायु विज्ञान–एस.एल.गुप्ता, पृ. १७७-१७९

जाता है। जिस वर्ष यह औसत वायुदाब सामान्य से अधिक आता है तो उस वर्ष समूचे उत्तर-पश्चिम भारत में वर्षा कम होती है।

(३) विषुवतीय क्षेत्र पर वायुदाब की स्थिति –

विषुवत् रेखा पर वायुदाब की स्थिति ज्ञात करने के लिए सेशल्स तथा जकार्ता में जनवरी से मई तक वायुदाब का औसत निकाला जाता है। यदि यह वायुदाब सामान्य से अधिक होता है तो वर्षा में कमी आती है।

(४) अलनीनो प्रभाव

'अल नीनो' स्पेनिश भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'शिशु ईसामसीह'। यह नाम पीरु देश (द० अमेरिका) के मछुआरों का दिया हुआ है क्योंकि इन मछुआरों को इस अद्भुत मौसमी घटना की जानकारी सबसे पहले होती है। इस घटना के अन्तर्गत दक्षिण प्रशान्त महासागर के विशाल पूर्वी क्षेत्र की सतह के जल का अत्यधिक ऊष्मन होता है और सतही जल का तापमान सामान्य तापमान से १° से ४° सेल्सियस तक अधिक हो जाता है। सामान्यत: दक्षिणी पूर्वी प्रशांत महासागर के उष्णकटिबन्धी क्षेत्र में समुद्र सतह के जल का तापमान १३° से० रहता है, परन्तु अलनीनो की उत्पत्ति के साथ इस क्षेत्र के समुद्री सतह के जल का तापमान १७° सेंटी या इससे अधिक हो जाता है। समुद्र सतह के जल की असाधारण तापमान वृद्धि को ही अलनीनो का नाम दिया गया है क्योंकि यह घटना दिसम्बर में क्रिसमस के आस पास घटती है।

उपर्युक्त घटना पीरु तट के साथ उष्णकटिबंधी प्रशान्त महासागर के पूर्वी भाग में घटती है जिसका दुष्प्रभाव न केवल आसपास के क्षेत्रों के मौसम पर अपितु विश्व के अधिकांश क्षेत्रों में भी देखने को मिलता है। भारत इसका अपवाद नहीं है। सम्भवत: भारत में भी अलनीनो के प्रभाव से सूखा पड़ता है क्योंकि इसके दुष्प्रभाव से मानसून क्षीण हो सकता है और वर्षा की मात्रा में कमी आ सकती है। अलनीनो भारत की मानसूनी वर्षा को नियन्त्रित करता

है। किसी अन्य महत्वपूर्ण कारक में हेर-फेर हो जाने से अलनीनो प्रभाव निष्प्रभावी हो सकता है।

५. सर्दियों के मौसम में हिमालय में होने वाला हिमपात –

हिमालय में सर्दियों में होने वाले हिमपात की मात्रा और उसी वर्ष होने वाली भारत की मानसूनी वर्षा में गहरा सम्बन्ध देखने में आया है। यदि जनवरी-मार्च में हिमालय में अधिक हिमपात होता है तो वर्षा कम होती है।

६. जेटधारा का प्रभाव –

सर्दियों में हिमालय के ऊपर क्षोभमण्डल में उच्चस्तरीय उपोष्ण पछुवा जेटधारा ११-१३ कि०मी० की ऊँचाई पर बहती है, गर्मियों में यह उत्तर को खिसक जाती है। इस जेटधारा के उत्तर की ओर खिसकने और भारत में मानसून प्रवेश करने के बीच गहरा सम्बन्ध है। जब उच्चस्तरीय उपोष्ण पछुवा जेटधारा उत्तर को स्थानान्तरित नहीं होती है तब मानसून भारत में प्रवेश नहीं कर पाता है।

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी मानसूनी वर्षा को प्रभावित करते हैं। जैसे हिन्दमहासागर एवं प्रशान्त महासागर में वायुदाब की मात्रा वर्षा को प्रभावित करती है, इसी प्रकार बसन्त ऋतु में उत्तर पश्चिम यूरोप में प्रतिचक्रवात की स्थापना का भारतीय मानसून के आगमन से गहरा सम्बन्ध ा है। स्थिरमंडल में दिसम्बर-जनवरी में ध्रुवीय निशा भँवर (Polar Night Vortex) की उत्पत्ति तथा जून-जुलाई में इसी प्रकार पर प्रतिचक्रवात की उत्पत्ति को भी मानसून घटना स्वीकार किया गया है। इन महत्वपूर्ण घटनाओं एवं प्रभावकारी कारकों में थोड़ा बहुत भी गड़बड़ी मानसून वर्षा को प्रभावित करती है। मानसूनी पवन को यदि पर्वत आदि भौगोलिक अवरोध न मिले तो वर्षा नहीं हो पाती है।

५. पूर्वानुमान की स्थिति

मानसून के पूर्वानुमान का अभिप्राय इसके अभ्युदय की तिथि तथा मानसून से होने वाली वर्षा की मात्रा के पूर्वानुमान से है। मौसमविज्ञान की भाषा में इसे दीर्घावधि पूर्वानुमान कहते है। भारतीय सन्दर्भ में मानसून पूर्वानुमान का अभिप्राय भारत के समूचे क्षेत्र के पूर्वानुमान से न होकर केवल भारत के दो क्षेत्रों के पूर्वानुमान से है। ये दो क्षेत्र जिनके लिए भारतीय मौसम वैज्ञानिक मानसून का पूर्वानुमान करते हैं, निम्नलिखित हैं –

१. **भारत का उत्तर पश्चिमी क्षेत्र** – इसमें जम्मूकश्मीर, हिमाचल, पंजाब, दिल्ली, हरियाणा, चंडीगढ़, पश्चिमी उत्तरप्रदेश तथा राजस्थान को शामिल किया जाता है।

२. **मध्यदक्षिणी भारत** – इस क्षेत्र में मुख्य रूप से गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तर–मध्य कर्नाटक, तटवर्ती आंध्रप्रदेश, तटवर्ती कर्नाटक तथा तेलंगाना शामिल हैं।

भारत के उपर्युक्त दोनों क्षेत्रों के लिए मानसून का पूर्वानुमाना लगाया जाता है, क्योंकि भारत में ये ही दो क्षेत्र हैं जहाँ मानसून से होने वाली वर्षा की मात्रा में काफी भिन्नता देखने में आती है। भारत के शेष भागों में वर्षा की मात्रा में बहुत कम हेर–फेर होता है।[१] मानसून पूर्वानुमान के सम्बन्ध में एक बात का ध्यान रखना नितांत आवश्यक है कि मानसून का समय पर अभ्युदय तथा मानसून से होने वाली वर्षा की कुल मात्रा के बीच कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है अर्थात् मानसून का अभ्युदय समय पर ही हो, तो भी मानूसनी वर्षा की कुल मात्रा सामान्य से कम या अधिक हो सकती है। मानसून द्वारा होने वाली कुल वर्षा की मात्रा जानने के लिए मौसम वैज्ञानिक १६ पैरामीटर्स (प्रभाव डालने वाले कारकों) का प्रयोग करते हैं जिनमें निम्न प्रमुख हैं[२]–

१. जलवायु विज्ञान, एस.एल.गुप्ता, पृ. १७५

२. जलवायु विज्ञान, एस.एल.गुप्ता, पृ. १७६–१७९

१. भारत का औसत न्यूनतम तापमान

२. दक्षिण अमरीका में उपस्थित वायुदाब की स्थिति।

३. विषुवतीय क्षेत्र पर उपस्थित वायुदाब की स्थिति

४. अलनीनो प्रभाव

५. हिमालय में सर्दियों के मौसम में होने वाला हिमपात

६. जेटधारा का प्रभाव

७. हिन्दमहासागर व प्रशान्त महासागर पर वायुदाब स्थिति

८. मार्च में उत्तर पश्चिमी यूरोप में प्रतिचक्रवात की स्थिति

९. स्थिर मण्डल में दिसम्बर जनवरी में ध्रुवीय निशा भंवर की उत्पत्ति एवं जून जुलाई में इसी स्तर पर प्रतिचक्रवात की उत्पत्ति, आदि जिनका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

मौसम पूर्वानुमान[१]—

वायुमण्डल की वर्तमान अवस्था के ज्ञान से, जो हमें धरातलीय तथा उच्चतर वायु प्रेक्षणों द्वारा प्राप्त होता है, उसके भविष्य की अवस्था की प्रागुक्ति ही मौसम पूर्वानुमान का तात्पर्य है जिस क्षेत्र के लिए पूर्वानुमान तैयार करना हो, उसके चारों ओर बहुत बड़े क्षेत्र के मानचित्र पर समकालीन प्रेक्षण अर्थात् वायुदाब, तापमान एवं ओसांक, हवा, आर्द्रता, मेघाच्छन्नता, दृश्यता, वर्तमान एवं पिछला मौसम आदि अंकित एवं विश्लेषित होने के बाद वायुमण्डल की वर्तमान अवस्था का सारांश प्रस्तुत करते हैं, जिनसे उच्च और निम्नदाब क्षेत्र, वायुमण्डलीय आर्द्रता तथा जेट धाराओं आदि की वर्तमान स्थिति स्पष्ट हो जाती है। ये प्रणालियाँ प्राय: गतिशील होती हैं और समय

१. मौसमविज्ञान, आर.सी.बनर्जी एवं डी.एस. उपाध्याय, पृ. २६१

तथा स्थान के प्रति परिवर्तित होती रहती हैं।[१] मौसम पूर्वानुमान करने हेतु निम्न अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है।[२]

(१) समकालीन चार्टों का विश्लेषण

(२) दाब प्रणालियों का पूर्वानुमान।

(३) मौसम पूर्वानुमान तैयार करना।

मौसम पूर्वानुमान के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्त्व समय है, विभिन्न उपयोगों के लिए अलग-अलग अवधि के पूर्वानुमान तैयार किए जाते हैं, मौसम प्रणालियों की अनियमितताओं के कारण यह स्वाभाविक है कि पूर्वानुमानों की यथार्थता अवधि बढ़ाने के साथ तेजी से घटती जाती है। अवधि के दृष्टिकोण से पूर्वानुमान निम्न प्रकार के होते हैं[३]—

(१) अल्पावधि पूर्वानुमान

यह तीन से अठारह घण्टों की अवधि के लिए तैयार किया जाता है, जो वैज्ञानिक सेवाओं के लिए घातक मौसम घटनाओं—तडित झंझा, ओले, आंधी मेघाच्छन्नता आदि का पूर्वानुमान प्रदान करता है। इनके यथार्थ होने की सर्वाधिक सम्भावना होती है।

(२) दैनिक अवधि पूर्वानुमान

१२ से ४८ घण्टे की अवधि के लिए प्राय: स्थानीय क्षेत्रों के लिए दिया जाता है। इसमें मौसम घटमाओं, मेघाच्छन्नता तथा तापमान को विशेष महत्व दिया जाता है।

---

१. मौसम विज्ञान – आर.सी. बनर्जी एवं डी.एस उपाध्याय, पृ. २६१

२. वहीं. पृ. २६२

३. वहीं., पृ. २६७

(३) मध्यम अवधि पूर्वानुमान

इस पूर्वानुमान की अवधि ३ से ७ दिन की होती है। इसकी आवश्यकता कृषि कार्यों, सैनिक तथा आर्थिक योजनाओं तथा हाइड्रोलोजिकल चेतावनियों आदि के लिए निरन्तर बढ़ती गई है। इसके लिए मुख्य रूप से सांख्यिकीय विधियाँ ही प्रयोग में लाई जाती हैं।

(४) दीर्घावधि पूर्वानुमान

७ दिन से लम्बे समय के लिए पूर्वानुमान 'दीर्घावधि पूर्वानुमान' कहलाता है। मासिक अथवा ऋतुनिष्ठ पूर्वानुमान कृषि योजनाओं, बाढ़ या सूखा चेतावनियों, दीर्घकालीन सैनिक गतिविधियों आदि के क्षेत्र में उपयोगी हो सकती हैं। इस अनुमान के लिए आधुनिक वैज्ञानिक सह सम्बन्ध के सिद्धान्त एवं एनालाग विधि का प्रयोग करते हैं।

मौसम पूर्वानुमान की विधियाँ—

मौसम का पूर्वानुमान एक अत्यन्त जटिल प्रक्रिया है। आधुनिक वैज्ञानिक एवं मौसम केन्द्र मौसम के पूर्वानुमान हेतु अनेक प्रविधियाँ अपनाते हैं, जिनमें से निम्न विधियों का प्रमुखता से मौसम पूर्वानुमान हेतु मौसम वैज्ञानिक उपयोग करते हैं[१]—

१. सिनाप्टिक मौसम पूर्वानुमान

२. संख्यात्मक विधि

३. सांख्यिकीय विधि

१. सिनाप्टिक मौसम पूर्वानुमान

मौसम की भविष्यवाणी करने का यह पारम्परिक उपागम है। सिनाप्टिक शब्द का अर्थ होता है कि एक निश्चित समय पर मौसम के

---

१. जलवायु विज्ञान—डी.एस.लाल., पृ. ३९६

विभिन्न तत्वों का निरीक्षण एवं अवलोकन। अत: कोई भी मौसम मानचित्र जो किसी निश्चित समय की वायुमण्डलीय दशाओं को प्रदर्शित करता है एक मौसमविद् की दृष्टि में 'सिनाप्टिक चार्ट होता है। नियमित रूप से सिनाप्टिक चार्टों को तैयार करने के लिए हजारों मौसमसूचक केन्द्रों से प्राप्त मौसम सम्बन्धी आंकड़ों को संग्रहित कर सूक्ष्म विश्लेषण होता है। मौसम के बदलते हुए प्रतिरूप की जानकारी करने के लिए आधुनिक मौसम केन्द्रों पर प्रतिदिन कई 'सिनाप्टिक चार्ट' तैयार किए जाते हैं।

२. संख्यात्मक विधि

पारम्परिक सिनाप्टिक उपागम के अतिरिक्त अन्य विधियों के द्वारा अधिक सही ढंग से मौसम का पूर्वानुमान किया जा सकता है। संख्यात्मक विधि में अधिकाधिक मात्रा में गणित का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक मौसमविद् 'अंकात्मक मौसम फलकथन' (Numerical Weather Prediction) की तकनीकों का प्रयोग करता है। इस विधि की आधारभूत मान्यता है कि वायुमण्डल गैसें अनेक भौतिक सिद्धान्तों का अनुसरण करती हैं, अत: यदि वायुमण्डलीय वर्तमान दशाएं विदित हों तो भौतिक नियमों के आधार पर भावी मौसम का पूर्वानुमान किया जा सकता है।

३. सांख्यिकीय विधि

मौसम पूर्वानुमान के लिए सांख्यिकीय विधि का प्रयोग सदैव संख्यात्मक विधि के साथ किया जाता है। वास्तव में यह विधि संख्यात्मक विधि का सम्पूरक है। सांख्यिकीय विधि में विगत मौसम के अभिलेखों का इस मान्यता के आधार पर उपयोग किया जाता है कि भावी मौसम में विगत मौसम की पुनरावृत्ति होगी। विगत मौसम के आँकड़ों के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य मौसम के उन पहलुओं का पता लगाना होता है जिनसे भविष्य के मौसम का स्पष्ट संकेत मिल सके। इन अन्त:सम्बन्धों को निश्चित करने के उपरान्त सही–सही आंकड़ों के प्रयोग द्वारा मौसम के व्यापक स्वरूप का ही पूर्वानुमान

किया जा सकता है। इस विधि की सर्वाधिक उपयोगिता किसी एक समय मौसम के किसी एक पक्ष के पूर्वानुमान के लिए है। इसमें पवन की दिशा एवं वेग, मेघाच्छन्नता की मात्रा, आर्द्रता तथा वर्षा की ऋतु विशेष के साथ तापमान के सम्बन्धों के सांख्यिकीय आंकड़ों का संकलन करके चार्टों पर उनका आलेखन किया जाता है। इस प्रकार तैयार किए गए चार्ट वर्तमान दशाओं के आंकड़ों से किसी विशेष दिन के उच्चतम तापमान का अनुमान प्रस्तुत करते हैं।

नवम अध्याय

प्राचीन एवं नवीन सिद्धान्तों का समन्वयम

सामान्यतया पृथ्वीस्थ जीवन यह विचार करता है कि पृथ्वी पर मेरे उपयोग की वस्तुयें तो अनन्तकाल तक के लिए पर्याप्त हैं। सभी जीवों में मनुष्य ही बुद्धि सम्पन्न प्राणी है। इस लिए उसने यह सोचना आदि काल से ही प्रारम्भ कर दिया कि यदि ये पृथ्वी की समस्त वस्तुयें समाप्त हो जाय तो तब क्या होगा? मानव की इसी जिज्ञासा ने उसे हर वस्तु के मूल कारण तक जाने को बाध्य किया है। मूल कारण को जाने बिना हम किसी का भी पूर्वानुमान नहीं कर सकते हैं। मनुष्य ने अपने चिन्तन से यह पाया कि किसी भी घटना का कार्य कारण भाव सम्बन्ध ही उसके पूर्वानुमान में सर्वाधिक सहायक होता है।

जीवन को जीने के लिए पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश की उत्तरोत्तर प्रबल आवश्यकता होती है। इन तत्त्वों के समिश्रण का नाम ही भौतिक सृष्टि है। पृथ्वी एवं आकाश में कहीं तेज, वायु और जल के बिना जीवन की कल्पना करना सम्भव नहीं है। जल, तेज एवं वायु के सामाञ्जस्य का ही नाम वृष्टि है। आदि में जब मनुष्य ने वृष्टि के कार्य–कारण भाव को समझने का प्रयास किया तो उसने पाया कि इस सन्दर्भ में पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश ही विशेष रूप में विचारणीय हैं। आज भी मौसम विज्ञान प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से इन्हीं बिन्दुओं पर विचार करता है। वृष्टि को प्रभावित करने वाले बिन्दु पृथ्वी एवं आकाश में ही कहीं विद्यमान होगें। ऐसे बिन्दु कभी तो पृथ्वीस्थ आकाश में ही मिल जाते है और कभी ये बिन्दु दूरस्थ आकाश में भी विद्यमान होते हैं, जिससे हमारी पृथ्वीस्थ वृष्टि प्रभावित होती है। पृथ्वीस्थ आकाश के बिन्दुओं एवं घटना चक्र को तो आज का मौसम

विज्ञान स्वीकार करता है परन्तु दूरस्थ आकाश के घटना चक्र एवं स्थिति को वह स्पष्टतया स्वीकार नहीं कर पा रहा है। भारतीय चिन्तकों (ऋषियों) ने वृष्टि के सन्दर्भ में पृथ्वीस्थ आकाश एवं दूरस्थ आकाश में स्थित उन सभी बिन्दुओं पर विशेष विचार किया है। उसमें भी उन्होंने यह स्वीकार किया है कि पृथ्वीस्थ आकाश एवं पृथ्वी की हर घटना के पीछे दूरस्थ आकाश में दिखाई देने वाले ज्योतिर्ष्मान पिण्ड, जिनको हम नक्षत्र, तारे एवं ग्रह कहते हैं, वे सभी सम्मिलित हैं। प्राचीन चिन्तकों ने इस दृष्टि से वृष्टि का विचार किया और उन्हें अनुकूल परिणाम मिले, जिसके साक्ष्य के रूप में हमारे सामने एक प्रचुर साहित्य विद्यमान है। आज आवश्यकता उस विधि को पुन: समुचित परि–शोधन कर प्रतिष्ठापित करने की है।

सम्प्रति मौसम विज्ञान वृष्टि के लिए वायु, वायुदाव, तापमान, मेघ एवं भूमि की बनावट को मुख्य घटक के रूप में मानता है और इन्हीं घटकों के द्वारा वह मौसम का पूर्वानुमान करता है। वायु एवं वृष्टि का अटूट सम्बन्ध है। इस सन्दर्भ में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूभौतिकी विभाग के प्रोफेसर वृजरतनदास गुप्त का कहना है कि– ''वायु एवं वृष्टि का परस्पर अनन्य सम्बन्ध है। वृष्टि के लिए हवा में पर्याप्त मात्रा में जल वाष्प कणों का होना आवश्यक है, वहीं उपयुक्त प्रकार की वायु का होना भी अनिवार्य है। हवा में पर्याप्त मात्रा में जल वाष्प हो परन्तु उपयुक्त प्रकार की वायु न हो तो न तो मेघों की उत्पति ही हो सकती है और नहीं वृष्टि की। मेघों के बनने के लिए यह आवश्यक है कि जल वाष्प युक्त हवा ऊपर की ओर उठे अर्थात् उसमें मुख्य रूप से ऊर्ध्व वायु हो। उर्ध्ववायु के प्रभाव से जब आर्द्र हवा ऊपर उठती है तब एवं शीतलन के दौरान एक स्थिति ऐसी भी आती है जब उसकी सापेक्ष आर्द्रता शतप्रतिशत हो जाती है और वह हवा संतृप्त हो जाती है। संतृप्त हवा उसके बाद भी यदि ऊर्ध्व वायु के प्रभाव से और ऊपर उठती है तो उसके अतिरिक्त जल वाष्प का संघनन होता जाता है जो मेघ कणों के रूप में दृश्य होने लगता है। संघनन की प्रक्रिया के दौरान कुछ गुप्त ऊष्मा

भी नि:सरित होती है जो ऊर्ध्व वायु को और प्रबल कर उपरोक्त संतृप्त हवा को और ऊपर उठाती है तथा अधिकाधिक संघनन के द्वारा अधिक संघन मेघों का निर्माण होता है। मेघ कणों का वर्षा कणों में विकसित होने के लिए भी ऊर्ध्व वायु की आवश्यकता होती है अत एव चाहे वृष्टि स्थानीय हो, क्षेत्रीय हो, व्यापक स्तर की हो या धुवाँधार हो, वायु एवं वृष्टि के अनन्य सम्बन्ध को ध्यान में रख कर ही वृष्टि की भविष्यवाणी की जा सकती है।[१]" इनके विचार से ज्ञात होता है कि वायु का ही सर्वाधिक समन्वय वृष्टि है। वायु उद्भव के विभिन्न कारणों से वृष्टि की और सटीक भविष्यवाणी की जा सकती है।

मौसम पूर्वानुमान की वैज्ञानिक विधि के सन्दर्भ में डॉ. युगलदास चट्टोपाध्याय का कहना है कि मौसम के भविष्य की अवस्था की प्रागुक्ति को मौसम पूर्वानुमान कहा जाता है। विभिन्न उपयोगों के लिए अलग–अलग अवधि के पूर्वानुमान तैयार किये जाते हैं। पूर्वानुमानों की यथार्थता अवधि बढ़ने के साथ घटती जाती है। इसका कारण मौसम प्रणालियों की अनियमितता है। मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार अवधि के आधार पर पूर्वानुमान तीन प्रकार के होते हैं।[२]

१. अल्पावधि पूर्वानुमान–

यह ३ से ४८ घंटे की अवधि के लिए तैयार किया जाता है। यह पूर्वानुमान प्राय: विमान सेवाओं के लिए उपयोगी होता है। इसमें विशेषकर उड़ानों के लिए मौसम की घातक घटनाओं जैसे– तड़ित झंझा, आंधी, झोंके, चक्रवात, ओले, विक्षोभ, पर्वत तरंग, दृश्यता, मेघाच्छन्नता, उच्चतरवायुगति एवं तापमान का पूर्वानुमान किया जाता है।

इसके लिए हमें जिस क्षेत्र का पूर्वानुमान करना होता है उसमें चारों ओर के क्षेत्र के मौसम की तात्कालिक स्थिति का ज्ञान आवश्यक होता है।

---

१. वायुवृष्टिविज्ञानम् ज्योतिष विभाग, का. हि. वि. वि. वाराणसी पृ. १–४
२. वही पृष्ठ– १२

इस लिए हर १०० से २०० कि. मी. की दूरी पर भारत सरकार ने मौसम केन्द्र खोले हुए हैं, जहाँ दिन में दो बार प्रात: ८:३० बजे और सायं ५:३० बजे भारतीय मानक समय के अनुसार वायुदाव, तापमान, वायु की दिशा एवं गति, आर्द्रता, मेघाच्छन्नता, दृश्यता, वर्षा आदि का प्रेक्षण किया जाता है। ये समस्त क्षेत्रीय सूचनायें यथा–शीघ्र केन्द्रीय मौसम वेधशाला में भेज दी जाती है। इसके बाद यह समकालीन प्रेक्षण बड़े क्षेत्र के मानचित्र पर अंकित करके विश्लेषण किया जाता है इसके बाद उच्च एवं निम्नदाव, आर्द्रता आदि का पता लगाया जा सकता है इससे वायुमण्डल की वर्तमान अवस्था का पता चलता है। किसी भी क्षेत्र के अल्पावधि पूर्वानुमान तैयार करने के लिए उस क्षेत्र के महत्वपूर्ण दाव प्रणालियों की पिछली और वर्तमान स्थिति, तीव्रता तथा पिछले मापन के आधार पर स्थान एवं तीव्रता में परिवर्तन की दर निश्चित करते हैं। इस परिवर्तन दर से भविष्य में किसी निश्चित अवधि के पश्चात् दाव प्रणालियों की स्थिति और तीव्रता का आङ्कलन किया जाता है। इस आधार पर दाव प्रणाली का पूर्वानुमान चार्ट तैयार किया जाता है। इस चार्ट की सहायता से मौसम विशेषज्ञ अपने अनुभव एवं जलवायु ज्ञान के आधार पर मौसम का पूर्वानुमान तैयार करते हैं।

२. मध्यम अवधि पूर्वानुमान –

इसकी अवधि ३ से १० दिन तक की होती है। इसकी आवश्यकता कृषि कार्यों में बुआई एवं कटाई की प्रक्रियाओं में होती है। जिससे प्रतिकूल मौसम से बचा जा सके और अनुकूल का लाभ उठाया जा सके। कृषि कार्य के अतिरिक्त बाढ़ आदि की चेतावनी में भी इस पूर्वानुमान का उपयोग किया जा सकता है।

३. दीर्घावधि पूर्वानुमान –

दस दिन से अधिक समय के पूर्वानुमान को दीर्घावधि पूर्वानुमान कहा जाता है। यह एक माह, एक ऋतु अथवा एक वर्ष का भी हो सकता है। इस

प्रकार के पूर्वानुमान क्षेत्रीय कृषि एवं बाढ़ के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। आधुनिक मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार भारत में मानसून अभ्युदय का समय तथा वर्षा का परिमाण सांख्यिकीय एवं गणितीय विधियों के आधार पर तैयार किया जाता है। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम किये गये प्रयासों का श्रेय वैज्ञानिक गिलवर्ट वाकर (१९१४) को जाता है। वाकर के अनुसार भारत की मानसूनी वर्षा विषुवत् रेखीय निम्न दाब, दक्षिण अमेरिकी उच्यदाब, हिमालय में तुषार का संग्रह, डच हर्वर का तापमान, जंजीवार एवं जावा में वर्षा आदि तत्वों पर आधारित होती है। इन सभी सम्बन्धों के आधार पर उन्होंने ६ समाश्रय समीकरण तैयार किये और उनके सह सम्बन्ध गुणाङ्क के मानकों की भी गणना की। इससे यह पाया गया कि ये समीकरण लगभग ५ से १० वर्ष के लिए उपयोगी हो सकते हैं। इसके बाद पुनः नये समीकरण तैयार करने पड़ेंगे। सम्प्रति जिस समीकरण से भारतीय मौसम विभाग द्वारा भारतीय मौसम का पूर्वानुमान किया जाता है, उसमें उपयोग होने वाले तत्त्वों में से वाकर द्वारा स्थापित मात्र दो तत्त्व ही समाहित हैं।

सम्प्रति भारतीय मौसम विज्ञान द्वारा जून के प्रथम सप्ताह में समाश्रय समीकरण द्वारा भारतीय मौसम का पूर्वानुमान किया जाता है। मौसम पूर्वानुमान की दृष्टि से भारत को दो क्षेत्रों में विभक्त किया जाता है। ये दो क्षेत्र है उत्तर–पश्चिम भारत तथा दक्षिण भारत। मौसम की दृष्टि से उत्तर, पश्चिम भारत में जम्मू–कश्मीर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, दिल्ली, चण्डीगढ़ एवं राजस्थान तथा दक्षिण भारत में महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, तेलङ्गाना, उत्तरी कर्णाटक, तटवर्ती कर्णाटक एवं तटीय आंध्र प्रदेश को लिया है। भारत के इन दो क्षेत्रों के लिए ही विशेषकर मौसम का पूर्वानुमान किया जाता है क्यों इन दो क्षेत्रों के मौसम में प्रति वर्ष काफी परिवर्तन दिखाई देता है, जबकि देश के अन्य भागों की स्थिति इससे भिन्न है। अन्य भागों में प्रतिवर्ष मानसून की पर्याप्त वर्षा होने के कारण पूर्वानुमान की आवश्यकता नहीं होती है।

भारतीय मौसम के पूर्वानुमान की विधियाँ–

भारतीय मौसम का पूर्वानुमान समाश्रय समीकरण के आधार पर किया जाता है। इस समीकरण में पूर्वानुमान किये जाने वाले वर्ष के आंकड़ों पर आधरित निम्नलिखित ५ तत्त्वों का उपयोग किया जाता है।

१. जिस वर्ष की मानसूनी वर्षा का पूर्वानुमान करना हो उस वर्ष के मार्च महीने का जैसलमेर, जयपुर तथा कलकत्ता का औसत निम्न तापमान लिया जाता है। इसमें यह पाया गया है कि जिस वर्ष इन स्थानों का तापमान औसत तापमान से अधिक हो उस वर्ष मानसून की वर्षा दक्षिण भारत में सामान्य से अधिक होती है।

२. अभीष्ट वर्ष में लुधियाना का अप्रैल मास की वायु का तापमान लिया जाता है। इसमें यह पाया गया कि जिस वर्ष औसत तापमान अधिक होता है उस वर्ष उत्तर भारत में मानसून की वर्षा सामान्य से अधिक होती है। इसके विपरीत यदि वायु का तापमान औसत से कम हो तो वर्षा भी कम ही होती है।

३. अभीष्ट वर्ष में डारविन, सेचिलिस एवं जकार्ता का जनवरी से मई तक के विषुवत रेखीय निम्न दाव का मध्यमान लिया जाता है। इसमें यह पाया गया कि जिस वर्ष दाव औसत से कम होता है उस वर्ष मानसूनी वर्षा उत्तर पश्चिम भारत में सामान्य से अधिक होती है। इसके विपरित जिस वर्ष दाव मध्यमान अधिक होता है उस वर्ष वर्षा सामान्य से कम होती है।

४. अपेक्षित अभीष्ट वर्ष में दक्षिणी अमेरिका के तीन स्थानों **कार्डोवा, सेन्टियागों** एवं **वुयनस एडरस** का अप्रैल तथा मई के दाव का मध्यमान लिया जाता है। इसमें यह पाया गया है कि जिस वर्ष यह मध्यमान (तत्त्व) औसत से कम होता है उस वर्ष सम्पूर्ण भारत में मानसून की वर्षा सामान्य से अधिक होती है। इससे भिन्न जिस वर्ष

यह मध्यमान औसत से अधिक होता है उस वर्ष मानसून भी वर्षा औसत से कम होती है।

५. अपेक्षित इष्ट वर्ष में अप्रैल मास का उच्चस्तरीय कटक अक्ष ७५° पूर्व देशान्तर रेखा पर स्थित होता है। इसमें यह पाया गया कि जिस वर्ष यह कटक अक्ष १४.२५° उत्तर अक्षांश के उत्तर में होता है उस वर्ष मानसून की वर्षा समग्र भारत में सामान्य से अधिक होती है। इसके विपरीत अर्थात् कटक के १४.२५ उत्तर आक्षांश से दक्षिण में होने पर वर्षा सामान्य से कम होती है।

आधुनिक मौसम विज्ञान के अनुसार जनवरी से मई तक उक्त चार विधियों के द्वारा निर्दिष्ट स्थानों के आंकड़े लिए जाते हैं और इसके पश्चात् जून में भारतीय मानसून का पूर्वानुमान किया जाता है मुख्य रूप से निर्दिष्ट स्थानों का **ताप** और **दाब** लिया जाता है। अत: कह सकते है कि इस विधि में स्थान (**भूमि** या कोई विशिष्ट क्षेत्र) **वायुदाव** एवं **तापमान** का प्रयोग किया गया है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। अत एव भारत में मानसून के आगमन का समय एवं उसकी तीव्रता के विषय में पूर्वानुमान प्राप्त करने की जिज्ञासा आदि काल से ही चली आ रही है। जिसका विस्तृत उल्लेख वैदिक एवं वैदिकेत्तर साहित्य में प्रचुर रूप में उपलब्ध होता है। वैदिक काल से ही भारत कृषि प्रधान देश रहा है एवं आदि काल से आज तक भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल कृषि ही रही है। कृषि का आधार पूर्ण रूप से वृष्टि ही है। अच्छी वृष्टि होने से कृषकों के साथ सभी देशवासी प्रसन्नचित हो जाते हैं और उनमें खुशी की लहर सी फैल जाती है। कृषि की असफलता ही देश का भारी वृत्तीय संकट दर्शाता है। इस लिए प्राचीन काल से ही भारतीय मनीषियों ने सर्वाधिक प्रयत्न वृष्टि के पूर्वानुमान पर किया है। जिसके प्रमाण के रूप में हमें वेदों पुराणों एवं ज्योतिष के संहिता ग्रन्थों में इस सन्दर्भ की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। वेदों को भारत में अनादि, विभिन्न ज्ञान–विज्ञान

का उद्गम तथा भण्डार स्वीकार किया गया है। वेदों में अनेक भौतिक विद्याओं के वर्णन के प्रसंग में ही मेघ वृष्टि एवं जल विज्ञान का भी वर्णन पर्याप्त रूप में मिलता है।

वृष्टि विज्ञान के सम्बन्ध में सर्वप्रथम वायु का तापमान पृथ्वी को प्राप्त होने वाली सौर ऊर्जा पर निर्भर है। वायु का तापमान ही वायु को जलवाष्प ग्रहण करने की शक्ति प्रदान करता है। यदि वायु का तापमान बढ़ता है तो वायु अधिक जलवाष्प अपने में रख सकती है और यदि वायु का तापमान कम हो तो वायु की जलवाष्प रखने की क्षमता कम हो जाती है ऋग्वेद में मेघ और वर्षा के विषय में कुछ इस तरह का वर्णन मिलता है – '' इन्द्र ने जलों को रोककर रखने वाले मेघों को बरसाया तथा पर्वतों की चोटियों पर बैठकर जलरूपी धन को रोककर रखने वाले आवरणशील मेघों को नीचे गिराया। जब इन्द्र ने शक्ति से वृत्त को मारा, इसके बाद सूर्य ने अपना प्रकाश फैलाया''।[1] इस में मेघ का वर्णन है जो समग्र आकाश को आच्छादित करता है परन्तु बरसता नहीं है। इन्द्र यहाँ विद्युत का रूप है; जो मेघों को बरसाकर आकाश साफ करता है और सूर्य को चमकाता है। यह एक वैज्ञानिक घटना का ही वर्णन प्रतीत होता है। इसी प्रकार मेघ का वर्णन ऋग्वेद की एक अन्य ऋचा में भी मिलता है जिसका अभिप्राय है।[2]– '' मरूत् मेघों को गतिशील बना देते हैं; इस लिए वर्षा का प्रारम्भ होता है और जल समूह से समूची पृथ्वी आर्द्र हो उठती है।'' इत्यादि वर्णन ऋग्वेद के बहुत स्थलों पर उपलब्ध होता है।[3] अत: कह सकते है कि ऋग्वेद काल में भी आर्यो का मेघ एवं वृष्टिज्ञान काफी उन्नत अवस्था में था।

---

१. त्वमपामविधानावृणोरपाऽधारय: पर्वते दानुमत् वसु। वृत्तं यदिन्द्र शवसारवधीरहिमादित् सूर्य दिव्यारोहयो दृशे। – ऋग्वेद १/५१/०४

२. प्र यद् रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रि मरुतो रंहयन्त:। उत्तारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम।। – ऋग्वेद १/८५/५

३. ऋग्वेद १/८५/०५, १/८५/१०, १/८५/०२, १/८५/०५, १०/७५/५

पुराणों में सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पञ्चलक्षणों के वर्णन के अतिरिक्त इनमें गोल और ज्योतिष जैसे महत्वपूर्ण शास्त्रों के वर्णन भुवनकोश प्रकरण के अन्तर्गत वर्णित हैं। भुवनकोश के अन्तर्गत ही वृष्टि सम्बन्धित विचार भी मिलते हैं। विशेषकर **वायु, ब्रह्म, मत्स्य, विष्णु, लिङ्ग** एवं **ब्रह्माण्ड पुराणों** में वृष्टि विषयक विचार एवं वर्णन मिलते है। वराहमिहिर की बृहत्संहिता (५५० ई.) में वृष्टि का विशेष वर्णन उपलब्ध होता है। स्वयं बहारमिहिर ने ही अपने पूर्व के आचार्यो के मतों को उद्धृत किया है जिनमें गर्ग, पराशर, वसिष्ठ, नारद, कश्यप, वृद्धगर्ग आदि प्राचीन आचार्य हैं। भटोत्पल ने बृहत्संहिता की टीका करते हुए कुछ अन्य आचार्यों के नामों का उल्लेख भी किया है जिनमें सिद्धसेन, ऋषिपुत्र आदि प्रमुख हैं। अतः यह निश्चित् कह सकते है कि इन आचार्यो ने अवश्य वृष्टि से सम्बन्धित गहन विचार अपने समय में किया होगा। भारतीय वृष्टिविज्ञान की एक सुदृढ़ परम्परा रही है। जिसे उत्तरवर्ति काल में विचारकों द्वारा कदाचित् अन्देखा कर दिया गया।

प्राचीन भारत में वृष्टि के पूर्वानुमान की दो विधियाँ प्रचलित थी, पह्ली निमित्त परीक्षण विधि और दूसरी गणितीय सैद्धान्तिक विधि। निमित्त परीक्षण विधि के अन्तर्गत **वातावरणीय परिवर्तन, जैविक हलचल, रासायनिक परिवर्तन, भौतिक परिवर्तन** एवं **आकाशीय परिवर्तन** समाहित हैं, जबकि गणितीय सैद्धान्तिक विधि के अन्तर्गत **ग्रह–नक्षत्र से वृष्टिज्ञान, सूर्य संक्रमण** से वृष्टि ज्ञान, **चन्द्र नक्षत्र** से वृष्टि ज्ञान, **नाडीचक्रों** से वृष्टिज्ञान एवं **दशतपा सिद्धान्त** से वृष्टिज्ञान, का विचार किया गया है। इसके अतिरिक्त निमित्त परीक्षण सिद्धान्त एवं गणितीय सिद्धान्त के अनुसार **दीर्घावधि, मध्यमावधि** एवं **अल्पावधि वृष्टिज्ञान** के पूर्वानुमान के तत्त्वों पर भी विस्तृत विचार किया गया है। दीर्घावधि के रूप में वार्षिक वृष्टि के तत्त्वों का, मध्यमावधि के रूप में मासिक एवं पाक्षिक वृष्टि के तत्त्वों का तथा अल्पावधि के रूप में दैनिकवृष्टि के तत्त्वों (हेतुओं) का विचार विस्तृत रूप में किया है। प्राचीन भारतीय वृष्टि के आधारभूत सभी सिद्धान्तों का वर्णन एवं विवेचन पर्याप्त रूप में

उपलब्ध होता है।

प्रस्तुत शोधयोजना के अन्तर्गत वृष्टि का विचार आधुनिक एवं प्राचीन दोनों विधियों से किया गया। इन दोनों विधियों के विचारोपरान्त यह शोध इस निष्कर्ष पर पहूँचा कि वृष्टि विज्ञान की दृष्टि से चार तत्त्व महत्व पूर्ण हैं – **वायु, मेघ, ग्रहचार एवं भूमि।** इन में से आधुनिक मौसम वैज्ञानिक ग्रहचार को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं करते हैं। ये मात्र सूर्य के ही प्रभाव को तापमान के रूप में स्वीकार करते हैं अन्य ग्रहों का प्रभाव आधुनिक मौसम वैज्ञानिकों की दृष्टि में पृथ्वी पर कुछ भी नहीं होता है। अतः कह सकते है कि सूर्यचार ही मात्र मौसम को आधुनिकों की दृष्टि में प्रभावित करता है। प्राचीन भारतीय मौसम विज्ञान की दृष्टि में ग्रहचार जिसमें सूर्यचार भी समाहित है, वृष्टि विज्ञान का एक महत्वपूर्ण घटक है जिसे वृष्टि के पूर्वानुमान में ग्रहण किया जाता है। आधुनिकों ने सूर्यचार को मात्र ताप के रूप में स्वीकार किया है। प्राचीन भारतीय चिन्तकों ने सूर्य के नक्षत्र एवं राशिचार के आधार पर वृष्टि की विस्तृत विवेचना की है। सूर्य से सम्बन्धित एक वैज्ञानिक विवेचना पुराणों में उपलब्ध होती है एवं उसे भी वृष्टि के सन्दर्भ में आदि काल से ही महत्पूर्ण माना गया है, वह है सूर्य की सुषुम्ना हरिकेश आदि सात रश्मियाँ, जिनसे क्रमशः चन्द्र, नक्षत्र, बुध, शुक्र, भौम, गुरु एवं शनि ग्रह प्रभावित होते हैं । इन्हीं ग्रहों को ग्रहचार में वृष्टि के एक घटक के रूप में प्राचीन आचार्यो ने स्वीकार किया है। ग्रहचार के अतिरिक्त अन्य तीन प्रधान घटकों को आधुनिक एवं प्राचीन दोनों समान रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रस्तुत शोध योजना में आधुनिक एवं प्राचीन दोनों विधियों से उक्त घटकों पर विस्तृत विचार विमर्श, एक प्रामाणिक रूप में किया गया है। पुनः यहाँ पर सिंहावलोक की दृष्टि से वायु, मेघ, ग्रहचार एवं भूमि का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है जो समीक्षा में सहायक है।

वायु–

पञ्च महाभूतों में वायु का एक महत्वपूर्ण स्थान हैं। जो सर्वत्र व्याप्त रहती है। वायु का उद्‌भव आकाश से कहा गया है। इन पञ्च महाभूतों को इनकी तन्मात्राओं से ही समझा जा सकता है। जैसा कि सिद्धान्त शिरोमणि में भास्कराचार्य ने कहा है– **अहंकारोऽभूत् खकशिखिजलोर्व्यस्ततः संहतेश्च।**[१] अर्थात् अहंकार से ही पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति हुई और उसके पश्चात् क्रमशः आकाश–वायु–अग्नि–जल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। अहङ्कार से शब्द तन्मात्रा की, शब्दतन्मात्रा से आकाश की, आकाश से स्पर्श तन्मात्रा की, स्पर्श तन्मात्रा से वायु की, वायु से रूप तन्मात्रा की, रूप तन्मात्रा से तेज की, तेज से रस तन्मात्रा की, रस से जल की, जल से गन्ध तनमात्रा की और गन्ध से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इस सन्दर्भ में मनु ने कहा है कि विकारोत्पादक इस आकाश से सर्वविध गन्धों को धारण करने वाली, पवित्र एवं शक्तिशाली वायु उत्पन्न होती है। वह स्पर्श गुण वाली मानी गयी है।[२] तन्त्रामात्राओं के माध्यम से विषयी को पञ्चमहाभूतों का ज्ञान होता है। अपने पूर्व–पूर्व के गुणों (तन्त्रामात्राओं) को धारण करने के कारण वायु में शब्द और स्पर्श तन्मात्रा विद्यमान है।[३] इस लिए वायु को समझने और जानने के लिए शब्द और स्पर्श की नितान्त आवश्यतकता होती है। शब्द और स्पर्श क्रमशः श्रवण और त्वक् इन्द्रियों के विषय हैं। अत इन्हीं के द्वारा वायु का ज्ञान हो सकता है अन्यथा नहीं। वायु के कई भेद माने गये हैं। जैसे जीवन के लिए पाँच प्रकार की वायु महत्वपूर्ण है– प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान। पृथ्वी के चारों तरफ वायु के सात आवरण माने जाते हैं– १. आवह, २. प्रवह, ३. उद्वह, ४. संवह, ५. सुवह (विवह) ६. परिवह, एवं ७. परावह।[४] ये सात वायु के आवरण

१. सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय भुवनकोश श्लो ०१

२. आकाशात्तु विभुर्वानात्सर्वगन्धवहः शुचि। वलवाञ्जायेत वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः।। – मनुस्मृति १/७६

३. वही. १/७८

४. सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय, मध्यमयगतिवासना श्लो. ०१

पृथ्वी के चारों तरफ क्रमशः आवृत्त होते हैं। इन्हीं को आधुनिक मौसम वैज्ञानिक ५ भागों में विभक्त करते हैं[1]— १. अधोमण्डल (Troposphere), २. समताप मण्डल (Stratosphere), ३. मध्य–मण्डल (Mesosphere), ४. आयन मण्डल (Ionosphere) ५. आयतन मण्डल (Exosphere)। महाभारत[2] वायुपुराण,[3] ब्रह्माण्डपुराण[4] में वायु के विषय में विस्तृत चर्चा की गयी है। उपर्युक्त सातों आवरणों की पृथक् विवेचना पुराणों में प्रर्याप्त रूप में उपलब्ध होती है।

वृष्टि विज्ञान के सन्दर्भ में भारतीय मनीषियों ने वायु को तीन रूपों में प्रतिपादित किया। जैसे— १. पावक (भानक), २. स्थापक एवं ३. ज्ञापक।[5] पावक नाम की वायु मेघों को उत्पन्न करती है। स्थापक नाम की वायु मेघों को आकाश में स्थित एवं इधर–उधर भ्रमण कराते हुए वृष्टि के लिए सम्प्रेरित करती है। ज्ञापक नाम की वायु से भविष्य में कब वर्षा होगी और कितनी होगी, इस सूचना के साथ ही यह भी सूचना मिलती है कि आगे सुभिक्ष होगा या दुर्भिक्ष। यह स्पष्ट है कि मेघों का आकाश में इधर उधर संचरण करने में प्रधान कारण वायु ही है। अतः वृष्टि के पूर्वानुमान ज्ञान के लिए वायु का अपेक्षित ज्ञान आवश्यक है।[6] मेघों के जल–आधान (गर्भाधान) काल में वायु की अनुकूलता परम आवश्यक है वराहमिहिर ने मेघों के गर्भाधान काल में पूर्व और ईशान से समुत्पन्न मन्द अह्लादकारी शीतल वायु को अनुकूल माना

---

१. भूगोल के भौतिक आधार पृ. २९८–३०१ उद्धृत शोधप्रभा वर्ष दिसम्बर १९९८, पृष्ठ १२५–१२६

२. महाभारत शा. पर्व ३२८/३६–५२

३. वायुपुराण ४९/१६३

४. ब्रह्माण्डपुराण १/२१/२५–२७, १/२२/३९,५०

५. वातस्तु त्रिविधः प्रोक्तः पावकः स्थापको।
तृतीयो ज्ञापको वृष्टेः स्थानाङ्गो मध्यसंग्रहात्।।— वृष्टि प्रबोध पृ. ४१ श्लो १९४

६. ज्ञेयो वातश्च योगेन देशे वर्षं शुभाऽशुभम्।
तेनायं बलवान् सर्वे जलयोगेभ्य इष्यते।। — वृष्टि प्रबोध पृ. ४१ श्लो १९३

है।[1] आधान काल में यदि तीव्र, रुक्ष वायु चलती है तो गर्भधारण नहीं होता है अर्थात् बादल अपने में जल का संग्रह नहीं कर पाते हैं।

कृषि के विवेचन प्रसंग में महर्षि पराशर ने केवल वायु के आधार पर ही वार्षिक वृष्टि ज्ञान की एक अच्छी और अद्‌भुत विधि दी है। इनके अनुसार **पौष महिने के** रात–दिन की प्रति घण्टे की वायु की दिशा एवं गति का ज्ञान **संग्रहित कर** सम्पूर्ण वर्ष की वृष्टि का पूर्वानुमान किया जा सकता है। यहाँ **अमान्त पौष** मास ग्रहण किया गया है। इसमें पौष शुक्ल पक्ष और माघ कृष्ण **पक्ष को अमान्त** पौष मास कहा गया है। अमान्त मास के अनुसार माघ कृष्ण **पक्ष ही पौष** कृष्ण पक्ष है, को ग्रहण कर पराशर ने गणना की है[2]। यथा– **पौष मास** के शुक्ल+कृष्ण पक्ष की ३० तिथियाँ=१२ मास, अर्थात् सम्पूर्ण वर्ष।

३० तिथियों को सम्पूर्ण वर्ष के दिनों में विभाजित करने पर–

३० ÷ १२ = २.५ दिन = १५० घटी = १ मास

१५० घटी ÷ १ मास (३० दिन) ५ घटी

अत: ५ घटी = २ होरा (घंटा) = १ दिवस (अहोरात्र)

२.५ घटी = १ होरा (घंटा) = दिवस २.५ घटी = १ होरा (घंटा) = रात्रि

इस प्रकार पौष मास के ३० दिनों अर्थात् ३० तिथियों को वर्ष के १२ मासों के प्रत्येक दिन (तिथियों) में विभाजित करने पर प्रत्येक दिन ५ घटी = २ घंटे का होगा। इसमें भी पहला घंटा दिन का तथा दूसरा घंटा रात्रि का द्योतक होता है। पौष मास के प्रत्येक घंटे की वायु की दिशा एवं गति का मापन कर वर्ष भर की वृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है। जैसे– पौष मास का २.५ दिनात्मक प्रथम भाग **चैत्र मास** का द्योतक है, अर्थात् पौष शुक्ल प्रतिपदा से तृतीया तिथि की ३० घटी (तृतीया का आधा) तक का आसन्न मान का काल चैत्र मास का बोधक है। इसमें भी कुल काल २.५ दिन के

---

१. बृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्याय श्लो. १४

२. सार्द्धं दिनद्वयं मानं कृत्वा पौषादिना बुधः।
गणयेन्मासिकीं वृष्टिमवृष्टिं वानिलक्रमात्।।– कृषिपराशर २/२१

१५० घट्यात्मक काल को सम्पूर्ण चैत्र मास में विभाजित करने पर एक दिन ५ घटी का होगा। ५ घटी में भी २.५ घटी (१ घंटा) दिन का तथा २.५ घटी (१घंटा) रात्रि का बोधक होगा। यह विधि बहुत ही अद्भूत एवं उपयोगी है। इस विधि के अनुसार उत्तर और पश्चिम की वायु वृष्टि की तथा पूर्व एवं दक्षिण की वायु अवृष्टि की सूचक होती है। निर्वात होने पर वृष्टि की क्षति एवं अव्यवस्थित वायु के होने से निर्दिष्ट दिवसों में अव्यवस्थित वृष्टि को ही कहना चाहिए।[1]

पौष मास की वायु के मापन के अतिरिक्त प्रत्येक मास की वायु का परीक्षण करके भी वर्ष भर की वृष्टि का विचार करते हुए श्रावण मास तक कृषि हेतु वृष्टि का एक अच्छा विचार किया है। इसी सन्दर्भ में कहते हैं कि श्रावण मास में रोहिणी के समय यदि वर्षा न हो तो कृषि कर्म प्रारम्भ करने का परिश्रम व्यर्थ होता है।[2] इस सन्दर्भ में घाघ की उक्तियाँ भी विचारणीय हैं।[3] इस ग्रन्थ में वायु के प्राचीन एवं आधुनिक पृष्ठ भूमि की विशेष विवेचना की गयी है।

मेघ—

मेघ के स्वरूप एवं उद्भव के सम्बन्ध में महाकवि कालिदास अपने मेघदूत नामक खण्डकाव्य में कहते है कि मेघ की उत्पत्ति धूम, ज्योति, सलिल एवं मरुत के संयोग से होती है। यथा— **धूमज्योतिः सलिलमरूतां सन्निपात**

---

१. सौम्यवारुणयोर्वृष्टिरवृष्टिः पूर्वयाम्ययोः।
निर्वाते वृष्टिहानिः स्यात्संकुले संकुलं जलम्।।— कृषिपराशर २/२२

२. श्रावणे मासि रोहिण्यां न भवेद्वर्षणं यदि।
विफलारम्भसंक्लेशास्तदा स्युः कृषिवृत्तयः।।,— कृषिपराशर २/५५

३. माघ पूस जो दखिना चलै। तो सावन के लच्छन भले।
पानी बरसे आधे पूस। आधा गेहूँ आधा भूस।।
जब बरसेगाा उत्तरा। नाज न खाने कुत्तरा।
पूस में दूना माघ सवाई। फागुन बरसे घर से जाई।।
घाघ की कहावते पृ. ३४—३५

क्व मेघः[१] प्रमुख रूप में मेघ की उत्पत्ति में सलिल और ज्योति ही मुख्य घटक हैं। इन दोनों घटकों के संघर्षण से निर्गत धूम (वाष्प) वायु से प्रेरित होकर ऊर्ध्व आकाश में जाकर ठण्डा होने पर घनीभूत होता है वही मेघ हैं। पुराणों में मेघ शब्द का अर्थ मेहन करना कहा गया है। जो सद्यः वर्षा करते हैं। मेघ शब्द की व्युत्पत्ति **''मेहतीति वर्षं जलम् इति''**[२] अर्थात् जो बरसता है उसे मेघ कहा जाता है। भगवान् व्यास ने कहा है कि सूर्य अपनी रश्मियों से जल को परिशोष कर मेघों को देता है, इसके अनन्तर मेघ वायु के द्वारा ताड़ित होकर उसी जल को पुनः पृथ्वी में बरसाते हैं।[३] इस तरल का वर्णन ज्योतिषशास्त्र के संहिता ग्रन्थों एवं पुराणों में भी पर्याप्त रूप में मिलता है।

भारतीय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार मेघ चार प्रकार के माने जाते हैं, १. संवर्त्तक, २. आवर्त्तक, ३. पुष्कर एवं ४. द्रोण।[४] इसमें भी संवर्त्तक बहुत जल वाला, आवर्त्तक विना जल वाला, पुष्कर अल्प जल वाला तथा द्रोण कृषि योग्य उपयुक्त जल प्रदान करने वाला होता है।[५] कृषि पराशर में भी कुछ भिन्न परन्तु प्रायः इसी तरह का वर्णन मिलता है, जैसे– आवर्त्त एकदेश में तथा संवर्त्तक सर्वत्र वृष्टि करता है, जबकि पुष्कर में अल्पवृष्टि एवं द्रोण मेघ अति वृष्टि का कारक होता है।[६] कुछ अन्य आचार्यों के अनुसार ९ प्रकार के मेघों का वर्णन भी मिलता है जिनका फल इस प्रकार कहा गया है– १.

१. मेघदूत श्लो. ०६
२. शब्द कल्पद्रुम भाग ३, पृष्ठ ७७६
३. आदित्यपीतं सूर्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम्।
नाडीभिर्वायुमुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्तते।।
यत सोमात् स्रवत सूर्यस्तदभ्रेष्ववतिष्ठते।
मेघवायुनिघातेन विसृजन्ति जलं भुवि।। —वायुपुराण ५१/९–१०
४. कृषिपराशर २/१५
५. आवर्त्तो निजलो मेघः संवर्त्तश्च बहूदकः।
पुष्करो दुष्करजलो द्रोणो सस्य प्रपूरकः।।, शब्दकल्पद्रुम ३/७७६
६. एकदेशेन चावर्त्तः संवर्त्रः सर्वतो जलम्।
पुष्करे दुष्करं वारि द्रोणे बहुजलामही।।, कृषिपराशर २/१६

आवर्त्त मेघ अल्प वर्षा, २. संवर्त्त वायु पीड़ा, ३. पुष्कर मन्दवर्षा, ४. द्रोण अच्छी वर्षा, ५. कालक अल्पवर्षा, ६. नील शीघ्र वर्षा, ७. वरुण अधिक वर्षा, ८. वायु वर्षा का अभाव एवं ९. तम नामक मेघ वर्षा के अभाव के कारक हैं।[1] पुराणों के वर्णन के अनुसार संवर्त्तक मेघ अतिशय वृष्टि की क्षमता रखता है। यह मेघ प्रलयकारी वृष्टि भी करता है। अत: कह सकते हैं कि इस मेघ से सम्पूर्ण पृथ्वी जल से आप्लावित रहती है। इसके अतिरिक्त पुराणों में तीन प्रकार के मेघो का भी वर्णन मिलता है। ये मेघ हैं **आग्नेय, पक्षज एवं ब्रह्मज। आग्नेय**– ये वे मेघ हैं जो अग्नि या ताप से उत्पन्न होते हैं अर्थात् जो वाष्प (evaporation) के द्वारा बनते हैं। ये वायु एवं जल से युक्त होते हैं इन्ही की एक शाखा जीवमूत नामक मेघों की है जिनसे जीवन अनुप्राणित होता है। ये मेघ प्रवह वायु के अधीन होत हैं।[2] इनके बरसने की सीमा डेढ़ योजन तक होती है। **ब्रह्मज**– ये वे मेघ हैं जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के नि:श्वास से हुई है। ऐसे मेघों (बादलों) से विद्युत् और ज्योति उत्पन्न होती है।[3] **पक्षज**– इन्हें पुराणों में पुरावर्तक भी कहा गया है। पर्वतों के पंख के रूप में इनका वर्णन मिलता है। इन मेघों का सम्बन्ध पर्वतों से विशेषकर होता है। ये प्रलय कालीन मेघ कहे गये हैं जो प्रभूत जल बरसाने वाले होते है।[4] इनके अतिरिक्त मूक बादलों का भी उल्लेख मिलता है जो जल विहीन होते हैं। विद्युत् गुण के कारण ये मेघ आवह वायु के अधीन होते हैं। ये अधिकतर पर्वतों की उपत्यकाओं में बरसते हैं। इसके बरसने की सीमा आधे से एक

---

१. प्रा०भा० ऋतुविज्ञान, पृ० २७

२. आग्नेयास्त्वर्णजा प्रोक्तास्तेषां तस्मात् प्रवर्तनम्।।, वायुपुराण ५१/२०
जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवनसंभवा।। वही ५१/३१
एतेयोजनमात्राच्च सार्धार्धान्निष्कृतादपि।। वही ५१/ मस्त्य १२४/... १०

३. ब्रह्मजा नाम ते मेघा ब्रह्मनिश्वास संभवा।।– वायुपुराण ५१/३४–३५

४. पुष्करावर्तका नाम ये मेघा: पक्षसम्भवा:।
द्वितीयं प्रवहं वायुं मेघास्ते तु समाश्रिता।।
पुष्करा नामते मेघा वृहन्तस्तोयवत्सरा।।
– वायुपुराण ५१/३७–४२, मत्स्यपुराण १२४/११–१६

कोश तक होती है। इनके अतिरिक्त पर्जन्य और दिग्गज नाम के दो मेघ और हैं। ये दोनों मेघ हेमन्त ऋतु में कृषि के लिए तुषार की वृष्टि करते हैं।[१] वृष्टि कारक मेघों में जलाधान नियत समय पर होता है और मेघों में जलाधान होने के बाद नियत समय पर ही प्रसव (वृष्टि) भी होता है। इस जलाधान की प्रक्रिया को ज्योतिष के संहिता ग्रन्थों के ''मेघगर्भ'' के नाम से जाना जाता है।

मेघों का गर्भधारण काल मार्गशीर्ष मास होता है। इस सन्दर्भ में वराहमिहिर कहते हैं– मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा के बाद जब चन्द्र पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के स्थित हो उस समय से मेघगर्भ के लक्षण जानने प्रारम्भ करने चाहिए।[२] सभी 'मेघ गर्भाधान के समय गर्भधारण जलाधान नहीं करते हैं। विशेष लक्षणों से सम्पन्न मेघ ही जलाधान (गर्भाधान) करने में समक्ष होते हैं। जैसे– मोती या चाँदी के समान श्वेत, तमाम वृक्ष, नीलकमल, या अञ्जन के सदृश अतिकृष्ण, जलचर प्राणी के समान कान्ति वाले, गर्भकालिक मेघ बहुत वृष्टि देने वाले होते हैं। अतितीव्र सूर्य किरणों से तापित, अल्पवायु से युक्त गर्भकालिक मेघ १९५ वें दिन में रुष्ट की तरह अतिवृष्टि करते हैं।[३] कृष्ण, नील, रक्त, पीत, शुक्ल और स्निग्ध मेघ ही जलधान काल के १९५वें दिन में जिस नक्षत्र में आधान होता है उसी नक्षत्र में जल बरसाते हैं।

ग्रहचार –

संहिता ग्रन्थों में वर्णन मिलता है कि सभी ग्रहों के नक्षत्रचार के

---

१. पर्यन्यो दिग्राजाश्चैव हेमन्ते शीतसंभवा:।
तुषारं वृष्टिं वर्षन्ति सर्वस्य विवृद्धये।।
— वायुपुराण ५१/४३–४९, मत्स्ययपुराण १२४/२०–२५

२. बृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्याय श्लो.६३

३. मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभास:।
जलचरसत्वकारा गर्भेषु घना: प्रभूतजला:।।
तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिता मन्दमारूता जलदा:।
रूषिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यम्भ: प्रसवकाले।।
— बृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्याय श्लोक २३–२४

अनुसार एवं ग्रहयुतिवशात् वृष्टिज्ञान होता है। यह विदित है कि सभी ग्रह सूर्य रश्मियों से ही प्रदीप्त होते हैं। सूर्य की सात रश्मियों से ग्रह एवं नक्षत्र अलग–अलग पोषित एवं दीप्त होते हैं।[1] यथा –

सूर्य की रश्मियाँ	पोषितग्रह
१. सुषुम्ना	चन्द्र
२. हरिकेश	नक्षत्र
३. विश्वकर्मा	बुध
४. विश्वव्यचा	शुक्र
५. संयद्वस्तु	भौम
६. अर्वावसु	गुरु
७. स्वराड्	शनि

सूर्य की इन रश्मियों में भी प्रत्येक रश्मि में वृष्टिसर्जना, हिमसर्जना एवं घर्मसर्जना तीन नाड़ियाँ होती हैं। वृष्टि सर्जना नाड़ी में ४००, हिमसर्जना नाडी में ३००, एवं घर्मसर्जना नाडी में ३००, कुल मिलाकर सूर्य की एक रश्मि में (१०००) एक सहस्र रश्मियाँ होती है। इनमें से वृष्टि सर्जना नाड़ी अपने–अपने ग्रह से परवर्तित होकर भूमि, स्थावर, जङ्गम, वायुमण्डल एवं मेघों को प्रभावित करती है इसका उल्लेख संहिता ग्रन्थों में प्रचुर मात्रा में मिलता है। इस प्रकार के अनेक योग हैं जिनके आधार पर वृष्टि एवं अवृष्टि का पूर्णज्ञान किया जा सकता है। एक अलग विधि के अनुसार २७ नक्षत्रों में

---

१. सुषुम्नो हरिकेशाश्च विश्वकर्मा तथैव च।
विश्वव्यचा पुनश्चान्यः संयद्वसुरतः परः।।
अर्वावसुरिति ख्यातः स्वराडन्यः प्रकीर्तितः।
सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु पुष्णाति शिशिरद्युतिम्।।– कूर्मपुराण १/४१/३–४

से १४ नक्षत्र चन्द्र के तथा १३ नक्षत्र सूर्य के होते हैं। यदि सूर्य एवं चन्द्र दोनों सूर्य के नक्षत्र में स्थित हों तो वायु प्रचलित होती है और यदि ये दोनों चन्द्र नक्षत्र में स्थित हो तो वृष्टि का अभाव होता है। यदि एक सूर्य नक्षत्र में और दूसरा चन्द्र नक्षत्र में हो तो सुवृष्टि होती है।[1] स्पष्ट ज्ञानार्थ सूर्य एवं चन्द्र के नक्षत्र इस प्रकार हैं–

सूर्यनक्षत्र –

१. रोहिणी	८. विशाखा
२. मृर्गशीर्ष	९. अनुराधा
३. पूर्वाफाल्गुनी	१०. ज्येष्ठा
४. उत्तराफाल्गुनी	११. मूल
५. हस्त	१२. शतभिषा
६. चित्रा	१३. पूर्वाभाद्रपदा

चन्द्रनक्षत्र –

१. अश्विनी	८. मघा
२. भरणी	९. पूर्वाषाढ़ा
३. कृतिका	१०. उत्तराषाढ़ा
४. आर्द्रा	११. श्रवण
५. पुनर्वसु	१२. धनिष्ठा
६. पुष्य	१३. उत्तराभाद्रपदा
७. आश्लेषा	१४. रेवती

१. वही १/४१/११–१२

पुराणों में उल्लिखित विचार इस सन्दर्भ में वैदिक विचारों के निकट हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है कि वृष्टि सूर्य के अधीन है।[१] मनु ने भी सूर्य से ही वृष्टि होने की बात कही है।[२] हिम, ऊष्म एवं वर्षा के कारण भगवान सूर्य ही हैं।[३] पुराणों में सृष्टि वर्णन के प्रसंग में कहा गया है कि भगवान् नारायण ही शिंशुमारचक्र के आधार हैं। शिंशुमार चक्र ध्रुव का, ध्रुव नक्षत्र और सूर्यादि ग्रहों का तथा सूर्य वृष्टि के आधार हैं। सूर्य के ही आश्रित समस्त सुर असुर एवं मानव है।[४] पुराणों के अनुसार ही सूर्य का स्रोत बिन्दु ध्रुव है और सभी ग्रहोपग्रहों के प्रभाव भी ध्रुव से ही प्रभावित होते हैं। ग्रहों का ही नक्षत्रादि चार, उनका भेद, ग्रहों का उदय और अस्त, गोलायन भेद से घटने वाले उत्पात, ग्रहवर्ण, वर्षा, घर्म, हिम, रात्रि, संध्या, दिन एवं प्रजाओं का शुभाशुभत्व सब कुछ ध्रुव से ही प्रवर्तित होता है।[५] सूर्य आठ मास तक अपनी रश्मियों से रसरूप जल को ग्रहण करता है और चार मासों में उसे बरसाता है।[६] सूर्य

---

१. सूर्य एव तु वृष्टिना स्रष्टा समुयदिश्यते। मत्स्यपुराण १२४/२४
साापि निष्पाद्यते वृष्टिः सविता मुनि सत्तम।
— विष्णु २/९/२३, वायुपुराण ५१/५१

२. आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः। मनुस्मृति ३/७६

३. हिमोष्णवारिवर्षाणां कारणं भगवान् रविः।
— अग्निपुराण १२०/३२, विष्णुपुराण २/१०/२२

४. आधारः शिंशुमारस्य सर्वाध्यक्षो जनार्दनः।
ध्रुवस्य शिंशुमारस्तु ध्रुवं भानुर्व्यवस्थितः।।
तदाधारं जगच्चेदं सदेवा सुरमानुषम्। विष्णुपुराण—२/९/६—७

५. सूर्याचन्द्रमसौतारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह।
तेषां योगश्च भेदाश्च कालचारस्तथैव च।।
अस्तोदयो तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे।
विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्वं प्रवर्तते।।
— वायुपुराण ५१/८—१०, मत्स्यपुराण १२४/६—९

६. विवस्वान् अष्टभिर्मासैरादायापो रसात्मिका।
वर्षत्यम्बु ....।। विष्णुपुराण २/९/८
सूर्यः किरणजसलेन वायुयुक्तेन सर्वशः।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तयाः।। वायुपुराण—५१/२३

द्वारा शोषित जल नदियों, समुद्रों, कूपों, स्थावर, जङ्गम, वापी और तड़ागों से सम्बन्धित बताया गया है।[१] सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा शोषित जल वायु के माध्यम से आकाश में ले जाता है और चन्द्रमा उस जल का पोषण करता है, पोषण के बाद ही जल मेघों तक पहूँचता है।[२] वायु के आघात से यह जल पुन: पृथ्वी पर बरसता है।[३] सोम (चन्द्र) की रश्मियों के पोषण के बिना यह वाष्पीभूत जल वर्षण के लिए उपयुक्त नहीं बन पाता है। अत: सूर्य—सोम का परस्पर सम्बन्ध वृष्टि में विचारणीय है।[४]

पुराणों एवं ज्योतिष के संहिता ग्रन्थों में ग्रहचार एवं अन्य प्रसंगों में वृष्टि के पूर्वानुमान की विस्तृत चर्चा उपलब्ध होती है। जल का कभी भी नाश नहीं होता है एक ही जल परिवर्तन क्रम से बरसता रहता है। सूर्यादि ग्रह ही इस प्रक्रिया के मूलभूत कारण हैं।

भूमि —

भूमि की बनावट एवं वातावरण के कारण वृष्ट्यादि लक्षण होने पर भी सर्वत्र समान रूप में वृष्टि नहीं होती है। इस लिए गुण—धर्म के अनुरूप प्राचीन भारतीय मनीषियों ने भूमि को तीन भागों में विभक्त किया है। जिसमें १. अनूप, २. जाङ्गल एवं ३. मिश्र है।[५]

नदी, जलाशय, पल्लव, वन, शैल एवं मधुरवायु व ताप से युक्त देश एवं प्रदेश को ही अनूप देश कहते हैं। यह क्षेत्र अधिक जल वाला होता

---

१. नादेयी चैव सामुद्रीः कूपाश्चैव तथाघनाः।
स्थावरा जङ्गमाश्चैव वापीकुल्यादिका अपः।। लिङ्गपुराण—१/५७/२३

२. वायुपुराण ५१/१४

३. वही ५१/१६

४. विष्णुपुराण २/९/१५—१६

५. अनूपो जाङ्गलो मिश्रस्त्रिधा देशो बुधैर्गतः।
तत्तत्स्वभावं विज्ञाय जलवृष्टिं निवेदयेत्।।— दृष्टि प्रबोध पृ.६, श्लोक २२

है यहाँ वर्षा अधिक होती है।[1] कम जल वाला क्षेत्र, तृण युक्त भूमि, प्रचण्ड वायु एवं अधिक ताप से आतप भूमि, बहुत धन–धान्य से युक्त भूमि को ही जाङ्गल देश कहा जाता है।[2] यह अल्प जल वाला प्रदेश होता है। जाङ्गल देश में वर्षा कम ही होती है।[3] शीत, ऊष्ण एवं हवा की समानता वाला प्रदेश मिश्र देश कहलाता है।[4] यह मिश्र देश अनूप और जाङ्गल दोनों के गुण धर्मों का मिश्रण होता है। अनूप देश में अधिक वर्षा होती है। जाङ्गल में अल्प एवं मिश्र देश में मध्यम वृष्टि कही गयी है।[5] आधुनिक मौसम वैज्ञानिक भी वर्षा का विचार भूमि की बनावट, वन, पर्वत एवं वनस्पति के आधार पर करते हैं।

प्राचीन एवं आधुनिक दोनों विधियों से यह ज्ञात होता है कि वृष्टि के पूर्वानुमान में **वायु, मेघ** (बादल) एवं **भूमि की बनावट** का सर्वाधिक महत्व है। आधुनिक वैज्ञानिक वायु के दाव, ताप एवं दिशा के साथ ही पृथक् से ताप एवं दाव पर सर्वाधिक विचार करते हैं। प्राचीन दृष्टि से वृष्टि के सन्दर्भ में ताप का वर्णन ग्रहचार प्रकरण में सूर्य चार के अन्तर्गत बहुत मिलता है। जैसा कि इससे पूर्व के अध्यायों में वर्णन भी किया गया है परन्तु दाब का पृथक् से वर्णन दृष्टि गोचर नहीं होता है। यह भी सूर्य के ताप के कारण ही उद्भूत होता है। दाव का उद्भव और विकार वायु एवं वायुमण्डल के अन्तर्गत समाहित है

---

१. नदीपल्लवशैलाढ्य: मृदुवाता तपान्वित:।
अनेकवनशस्याढ्य: सोऽनूपो देश उच्येत।।– दृष्टिप्रबोध पृ.६, श्लोक. २३
बहूदकस्त्वनूप: स्यात्– कादम्बिनी ४/३४३,
अनूपे भूयसा वृष्टि:,– वही ३४६

२. स्वल्पोदकतृणो यस्तु प्रवात: प्रचुरातप:।
स ज्ञेयो जांगलो देशो बहुधान्यादि संयुत:।।– वृष्टिप्रबोध पृ.६, श्लोक. २४

३. कादमिबनी २/३४३

४. संसृष्टलक्षणो यस्तु देश: साधारणो मत:।
समा साधारणे वृष्टि यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुत:।।– वृष्टिप्रबोध पृ.६, श्लोक. २५

५. वृष्टि प्रवोध पृ. २६३

क्योंकि प्राचीन चिन्तकों ने वायुमण्डल को ७ भागों में विभक्त कर विस्तृत विचार किया है। वायु के सन्दर्भ में आर्वाचीन चिन्तकों की अपेक्षा प्राचीन भारतीय चिन्तकों के विचार एवं प्रयास अधिक विस्तृत एवं प्रासंगिक लगते है क्यों कि उन्होंने मेघ के गर्भ धारण से लेकर वृष्टि (प्रसव) तक वायु एवं वृष्टि पर सतत दृष्टि रखी है। आज भारतीय प्राचीन चिन्तकों के विचार एवं दृष्टियाँ उपेक्षित पडी हैं क्यों कि आज के वैज्ञानिक प्राय: प्राचीन भारतीय ज्ञान विज्ञान से अपरिचित से रहते हैं तथा उन्हें हर स्तर पर यह समझाने का प्रयास किया जाता है कि प्राचीन दृष्टि से मौसम विज्ञान का विचार नहीं किया जा सकता है। आज का मौसम विज्ञान सांख्यकीय एवं गणितीय आंकड़ों के आधार पर मौसम का पूर्वानुमान करता है यदि प्राचीन भारतीय वृष्टि विज्ञान को भी सांख्यकीय एवं गणितीय आधार पर देखा जाय तो पूर्वानुमान अधिक सत्य हो सकते हैं। इस तरह के प्रयास अभी तक प्राय: देश एवं विदेश में नमण्य ही हुए हैं।

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में वृष्टि का पूर्वानुमान कम से कम ६ मास पूर्व किया जाय तो उपयोगी होगा। वैदिक एवं वैदिकेतर साहित्य में वृष्टि मूलक प्रचुर वैज्ञानिक परिणाम उपलब्ध होते हैं। महर्षि पराशर आचार्य वराहमिहिर आदि ने कृषि और वृष्टि के वैज्ञानिक पक्षों का विश्लेषण पूर्ण प्रयत्न से किया है। कृषि के लिए वृष्टि की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए पूर्वानुमान एवं परीक्षण की बात कही है। इस सन्दर्भ में बराहमिहिर ने कहा है। यथा– **''संसार का प्राण अन्न है और अन्न वर्षा ऋतु के अधीन है अत: यत्नपूर्वक वर्षा ऋतु का परीक्षण करना चाहिए''**[१] महर्षि पराशर ने तो कृषि के लिए दृष्टि को स्वीकार करते हुए केवल पौष मास की वायु की दिशा एव गति के आधार पर सम्पूर्ण वर्ष की वृष्टि का पूर्वानुमान करने की एक अद्‌भुत

---

१. अन्नं जगत: प्राणा: प्रावृट् कालस्य चान्नमायत्तम्।
यस्मादत: परीक्ष्य प्रावृटकाल: प्रयत्नेन।।
—बृहत्सहिता गर्भलक्षण श्लो. ०१

विधि दी है। महर्षि पराशर ने भी वृष्टि के पूर्वानुमान के लिए सर्वाधिक प्रयत्न करने पर बल देते हुए कहा है कि– **''कृषि का मूल वृष्टि है कृषि पर जीवन आधारित है अत: जीवन का ही मूल वृष्टि है इसलिए प्रयत्न पूर्वक वृष्टि का ज्ञान करना चाहिए।**[1]''

आधुनिक विज्ञान ने कृषि को अनेक विधियों से विकसित किया है। कृषि के क्षेत्र में विज्ञान की प्रगति सराहनीय है परन्तु कृषि उपयोगी वृष्टि के लिए यह प्रगति अभी भी अपर्याप्त है क्यों कि २४ से ३६ घण्टे की पूर्व सूचना कृषि के लिए उपयुक्त नहीं है। इतने कम समय में कृषि प्रबन्धन की बात सोचना भी व्यर्थ है। आधुनिक वृष्टि विज्ञान के द्वारा कृषि को तभी सुव्यवस्थित किया जा सकता है जब वृष्टि का ठीक–ठीक पूर्वानुमान किया जा सके, इसके बाद ही हम सूखे और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं से बचने का उपाय करने का प्रयत्न कर सकते हैं। जैसा कि प्राय: किसान छोटे स्तर पर आज भी गाँवों में पञ्चाङ्गों के आधार पर अपना कृषि प्रबन्ध करते हैं। इस विधि के लिए ग्रहों की सम्यक आकाशीय स्थिति का आनयन कर पञ्चाङ्ग का निर्धारण करना आवश्यक है। बिना इसके ज्योतिषीय पूर्वानुमान नहीं किये जा सकते हैं। इस हेतु आकाशीय ग्रह स्थिति को पृथ्वी के सापेक्ष समझना आवश्यक है।

पञ्चाङ्ग आधारीत पूर्वानुमान –

प्राय: एक सौ वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ आधुनिक मौसम विज्ञान आज तक पूर्णरूप से भारतीय परिवेश में अपनी प्रामाणिकता स्थापित नहीं कर सका। जिसके कारण उत्पन्न बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या, उसके लिए निर्धारित अन्न, रहन सहन, यह सब अव्यवस्थित हो गया है। आधुनिक मौसम विज्ञान की वृष्टि विधा कृषि उपयोगी पूर्ण रूप से संतोषजनक नहीं है।

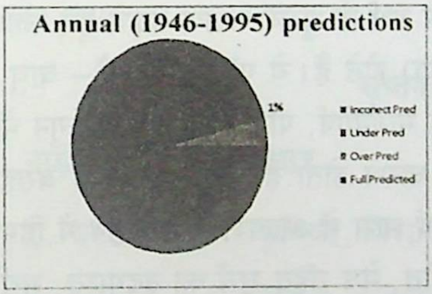
---

१. वृष्टिमूला कृषि: सर्वा वृष्टिमूलं च जीवनम्।
तस्मादादौ प्रयत्नेन वृष्टिज्ञानं समाचरेत्।। कृषिपराशर २/०१

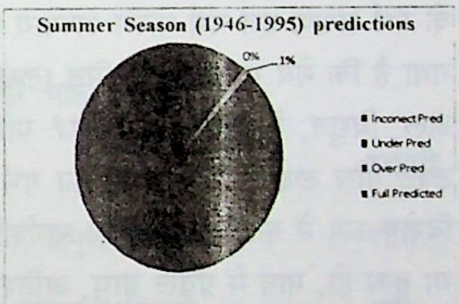
अत्याधुनिक मौसम विज्ञान में मौसम की भविष्यवाणियाँ वह अत्याधुनिक संगणकों द्वारा की जाती है जो कृषि के लिए पूर्णतया उपयोगी नहीं है। न्यूनतम कृषि उपयोगी १०–१५ दिन पूर्व के पूर्वानुमान में भी आधुनिक मौसम विज्ञान अभी तक पूर्ण रूप में सक्षम नही है। इस सन्दर्भ में यद्यपि कार्य हो रहा है परन्तु उसके परिणाम अभी तक सन्तोष जनक नहीं है। अत एव आधुनिक मौसम वैज्ञानिक भी प्राचीन भारतीय विधियों एवं उनके मौसम के पूर्वानुमान के लिए उपयोग के लाने के निमित्त चर्चा करते हुए दिख रहे हैं। यथा– **डॉ. डे.** एवं उनके सहयोगी जो सुप्रसिद्ध मौसम वैज्ञानिक हैं, ने मौसम नामक पत्रिका सन् २००४ में ''नक्षत्र आधारित वर्षा एवं मौसम (Nakshatra Based Rainfall climatology) पर विस्तृत चर्चा की है। कुछ और वैज्ञानिक भी इस क्षेत्र में वैज्ञानिक आधार पर भारतीय प्राचीन विधा को आधार मानकर कार्य कर रहे हैं। जैसे– **वेदमुर्ति केतन** काले के साथ **डॉ. टी. वेणुगोपाल** एवं उनके सहयोगी **यज्ञात् भवति पर्जन्यः** (Vedic Rain Induction Technology) नामक परियोजना पर कार्य कर रहे हैं। ये लोग प्रसिद्ध मौसम वैज्ञानिक हैं और Indian Institute of Tropical Meterology Pune नामक संस्था से जुड़े हुए हैं। प्राचीन विचारों एवं पृष्ठभूमि को देखकर एस. के. मिश्रा ने पंचाङ्ग पर आधारित मौसम की भविष्यवाणियों पर अपना शोध प्रबन्ध ''Weather forecasting in Almenacs relating to forming operetions and its relevnce in today's agriculture.'' को प्रो. वी. के. दूबे, अध्यक्ष–विस्तार शिक्षा (Extension Education), कृषि संस्थान के निर्देशन एवं प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय, अध्यक्ष ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, के सह निर्देशन में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के कृषि संस्थान में Ph.D. उपाधि हेतु प्रस्तुत किया। इस शोध प्रबन्ध ा पर उस समय काफी चर्चा हुई। इन्होंने पञ्चाङ्गों के सन् १९४६ से १९९५ तक के प्रतिदिन के मौसम के पूर्वानुमानों को आधुनिक आंकड़ों से तुलना करते हुए पाया कि पञ्चाङ्गों के ७५% पूर्वानुमान सही हैं। इन्होंने विभिन्न पञ्चाङ्गों द्वारा किये गये पूर्वानुमानों का अध्ययन किया तो पाया कि दृक् सिद्ध

पंचाङ्गों के पूर्वानुमान ही अधिक सर्वोतम घटित होते हैं।

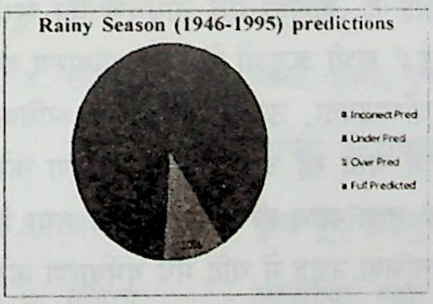
दृक्सिद्ध पंचाङ्ग द्वारा प्राप्त वर्षीय वर्षा का आधुनिक मौसम विज्ञान द्वारा प्राप्त वर्षा के आंकड़ो से तुलनात्मक अध्ययन करने से यह पाया गया कि दैनिक पंचाङ्ग से वर्षा परिणाम ७५ प्रतिशत सही है। इस अध्ययन में आधुनिक वर्षा को हाँ ना में ही प्रदर्शित किया गया है। इस सन्दर्भ का पूर्व चित्रण चित्र सं – १ में प्रदर्शित है। यह सम्मिलित चित्रण है। चित्र सं – २ ग्रीष्म को, एवं चित्र संख्या – ३ वर्षा ऋतु को प्रदर्शित करता है। स्पष्टता के लिए चित्र संलग्न है।



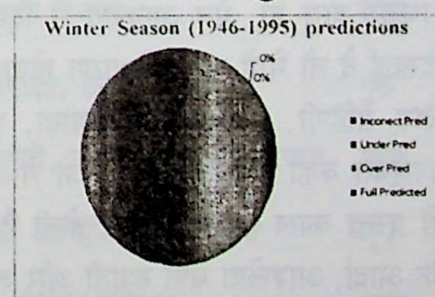
चित्र १– वार्षिक मापन



चित्र २– ग्रीष्मऋतु का मापन



चित्र ३– वर्षाऋतु का मापन



चित्र ४– शीतऋतु का

इनके अतिरिक्त आई.आई.टी. Indian Institute of Technology रूड़की के Water Resources Development and Man-

agement विभाग के आचार्य प्रो. एस.के. त्रिपाठी ने अपने एक शोध लेख "Rainfall Characterisation of Roorkee (UK) Using Nakshatra Period of Sun" में सम्पूर्ण सूर्य के नक्षत्र चार का अध्ययन एक वैज्ञानिक ढ़ंग से करते हुए इसके महत्व को प्रतिपादित किया है।

गर्भाधारण आधारित पूर्वानुमान –

प्राय: सभी संहिता ग्रन्थों में मेघ गर्भ धारण (मेघ जलाधान) के विषय में विस्तृत विचार उपलब्ध होते हैं। किस मास में मेघ के गर्भ धारण करने से कब वर्षा होगी ? इस पूर्वानुमान को आचार्य वराह प्रसव कहते है। बृहत्संहिता के गर्भ लक्षण एवं गर्भ धारण अध्याय में गर्भ के मुख्य लक्षण कहते हुए कहा गया है कि मेघ गर्भ के ५ निमित्त (लक्षण) होते हैं। ये पाँच लक्षण हैं– वायु, जल, विद्युत, मेघ गर्जन एवं मेघ।[१] यदि मार्गशीर्ष, पौष, माघ एवं फाल्गुन में उक्त पाँच लक्षण हो तो मेघों का गर्भ धारण होता है। इसी सन्दर्भ में वराह विशेष रूप में कहते हैं कि यदि मार्गशीर्ष मास में अल्पशीत हो, पौष में हिम या धुन्ध हो, माघ में प्रवल वायु, अतिशीत, मेघ रहित सूर्य का उदयास्त, सूर्य चन्द्र बिम्ब का हिम (तुषार) युक्त होकर मलिन दिखना तथा फाल्गुन में रूक्ष भयङ्कर वायु हो, मेघ आकाश में दिखाई दें, कपिल एवं ताम्रवर्ण का सूर्य दिखाई दे तो मेघों का गर्भ धारण होता है।[२] सभी ऋतुओं में मेघ गर्भाधारण के लिए रोहिणी, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा को अधिक उपयुक्त कहा गया है। इन नक्षत्रों में जब चन्द्र रहे और मेघ गर्भ धारण करे तो प्रसव काल में उत्तम दृष्टि होती है।[३] तथा साथ ही यह भी कहा गया है कि आर्द्रा, आश्लेषा मघा स्वाती और शतभिषा नक्षत्र में यदि मेघ गर्भधारण करे तो अधिक दिनों तक गर्भ पुष्ट रहता है और अच्छी वर्षा करता है। गर्भधारण के १९५वें दिन मेघ का प्रसव अर्थात् वृष्टि काल कहा जाता है। इस

१. बृहत्संहिता गर्भलक्षणाध्याय, श्लोक. ३७

२. वही श्लो. १९–२२

३. बृहत्संहिता गर्भलक्षण, श्लोक २८

आधार पर मेघ गर्भ धारण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त १० नक्षत्र उपलब्ध होते हैं जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। नरपतिजय चर्चा में श्रीयामलीय स्वरोदय के अनुसार सप्त नाड़ी चक्र के द्वारा वृष्टि ज्ञान की विधि कही गयी है।[1] अभिजित सहित कृत्तिका आदि २८ नक्षत्रों के द्वारा सप्तनाड़ी चक्र का निर्माण होता है। इस चक्र में नाड़ियों में ग्रहों के अनुसार वृष्टि का विचार किया गया है। इस सप्त नाड़ी चक्र में चण्डा, वाता, दहना सौम्य, नीरा, जल एवं अमृता नाड़ियाँ कही गयी हैं। इन नाड़ियों के क्रमशः शनि, सूर्य, सोम, गुरु, शुक्र, बुध एवं चन्द्र स्वामी कहे गये हैं। उक्त वर्णित वृष्टि के १० नक्षत्र वर्षा कारण नाड़ियों के ही हैं। स्पष्टता के लिए निम्नलिखित सप्तनाडी चक्र का अवलोकन करें। यथा –

सप्तनाडी चक्र

नाड़ी	नक्षत्र	स्वामी
१. चण्डा	कृतिका, विशाखा, अनुराधा, भरणी	शनि
२. वाता	रोहिणी, स्वाती, ज्येष्ठा अश्विनी	सूर्य
३. दहना	मृगशीर्ष, चित्रा, मूल, रेवती	सौम
४. सौम्या	आर्द्रा, हस्त, पूर्वाषाढ़ा, उत्तरभाद्रपदा	गुरु
५. नीरा	पुनर्वसु उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा पूर्वभाद्रपदा	शुक्र
६. जला	पुष्य पूर्वाफाल्गुनी, अभिजित्, शतभिषा	बुध
७. अमृता	आश्लेषा, मद्या, श्रवण, धनिष्ठा	चन्द्र

बराहमिहिर के द्वारा कहे गये १० वर्षा कारक नक्षत्रों में से रोहिणी

---

१. अथातः संप्रवक्ष्यामि चक्रं यत् सप्तनाडिकम्
यस्य विज्ञानमात्रेण वृष्टिं जानन्ति साधकाः।।
– नरपतिजयचर्या स्वरोदय, चक्रबन्धाधिकार सतनाडीचक्र, श्लो.१

स्वाती वाता नाडी में, आर्द्रा, पू. षा., उ. भा. सौम्या नाडी में, उ. षा. पू. भा, नीरा नाडी में, शतभिषा जलानाडी में तथा आश्लेषा, मघा अमृता नाडी में आते हैं। वाता नाडी का फल वायु की अधिकता, सौम्या एवं नीरा नाडी का फल मेघ का आगमन, जला और अमृता नाडी का फल अतिवृष्टि कहा गया है। मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदा से फाल्गुन कृष्ण अमावस्या तक वराह ने मेघों का गर्भधारण काल कहा है। यहाँ पर अमान्त चन्द्र मास ग्रहण किया गया है विशेषकर वृष्टि प्रकरण में सर्वत्र आमान्त चान्द्रमास ही ग्रहण किया है। संहिता ग्रन्थों के अनुसार जिस दिन अर्थात् जिस नक्षत्र में मेघ गर्भधारण (जलाधान) करता है उससे १९५वें दिन उसी नक्षत्र में मेघ का प्रसव अर्थात् वृष्टि होती है।

मेघ गर्भधारण सिद्धान्त को आधार मानकर सम्वत् २०११ (सन् १९८७–८८) में एक परीक्षण डॉ. सत्येन्द्र मिश्र, पंचाङ्ग विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, ने किया। इन्होंने अपने परीक्षण में यह देखने का प्रयत्न किया कि इन दश नक्षत्रों को वराह ने वृष्टि कारक कहा है उन नक्षत्रों के दिन मार्गशीर्ष से फाल्गुन तक प्रसव लक्षण होने पर १९५ वें दिन (सावन दिनमान के अनुसार) वर्षा हुई अथवा नहीं। इन सबके आंकलन हेतु इन्होंने एक सारिणी बनाई जिसमें गर्भकालिक नक्षत्रों के दिन गर्भ लक्षणों का अध्ययन किया। गर्भधारण के बाद इन्होंने पाया कि ५० नक्षत्रों के प्रसव दिनों में से १९५वें दिन के पश्चात् मात्र २० नक्षत्रों में ही प्रसव (वृष्टि) हुआ अर्थात् ५० में से २० दिनों में ही वर्षा हुई। इसमें मेघों का गर्भश्राव नहीं देखा गया था। यदि मेघों के गर्भश्राव का भी विचार किया जाए तो अधिक सटीक परिणाम मिलते। इस आधार पर यह परिणाम ४०% सही रहा। अन्य सभी घटकों का विचार किया जाय तो यह प्रतिशताङ्क बढ़ेगा।[१]

कृषि पराशर द्वारा किया गया पूर्वानुमान –

कृषि पराशर के पूर्वानुमान के सन्दर्भ में राष्ट्रपति सम्मानित प्रो.

१. वायुवृष्टिविज्ञानम्, ज्योतिषविज्ञान का.हि.वि.वि., वनारसी पृ. ४५–४८

रामचन्द्र पाण्डेय जी का कहना है कि यह एक अद्‌भुत विधि है। जैसा कि उन्होंने कृषि पराशर पुस्तिका के पुरोवाक् में कहा है कि "सन् १९६६–६७ में मैंने पराशरोक्त विधि से वायु का निरीक्षण तथा उसके आधार पर वृष्टि के अनुमान करने का प्रयोग काशी नरेश स्व. डॉ. विभूतिनारायण सिंह जी के निर्देश पर किया था। इस कार्य में सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. धुनीराम त्रिपाठी ने अत्यधिक उत्साह दिखाते हुए मेरा मार्गदर्शन किया। इतना ही नहीं आदरणीय डॉ. त्रिपाठी ने विश्वविद्यालय की छत्त पर टेण्ट लगाकर रात्रि कालीन वायु का समयानुसार प्रतिघण्टे की वायु का आङ्कन भी किया। इस कार्य को मैंने रामनगर चौक स्थित महाराजा साहब के भवन (जो डॉ. आनन्द स्वरूप गुप्त जी का आवास था) पर सम्पन्न किया। दोनों स्थानों के वायु विवरण की हम लोगों ने समीक्षा की तथा उसके आधार पर पूरे वर्ष की वृष्टि का निर्देश करते हुए एक तालिका बनाई। उस तालिका में प्रतिदिन की आकाशीय स्थिति, वृष्टि, अनावृष्टि आदि का परीक्षण किया गया। इनके परिणाम अत्यन्त सन्तोष जनक रहे। वायु परीक्षण विधि से ही वार्षिक वृष्टि का आङ्कलन उस वर्ष ७६% सत्य रहा"। इस आधार पर इसके पश्चात् वृष्टि का पूर्वानुमान प्राय: किसी ने नहीं किया। इस अध्ययन में इस विधि को भी ग्रहण किया गया है एवं आगे विवरण दिया जायेगा।

सम्वत् २०६२ (सन् २००५) के वर्षा का पञ्चाङ्ग आधारित पूर्वानुमान–

इस वर्ष के पञ्चाङ्गस्थ विवरणानुसार प्राच्य विधियों पर आधारित वर्षा का पूर्वानुमान वर्षा के उद्देश्य में उत्साह वर्धक पाया गया जिसका विवरण एवं विधि इस प्रकार है– जैसा कि समाचार पत्रों एवं प्रत्यक्ष में देखा गया कि इस वर्ष वर्षा बहुत कम हुई परन्तु जहाँ कई राज्यों में वर्षा कम हुई वहीं यह भी पाया गया कि बहुत कम की समयावधि की वर्षा से ही मुम्बई, गुजरात में बाढ़ आयी, जिससे बहुत जन एवं धन हानि हुई है जबकि वैज्ञानिकों का पूर्वानुमान इस तरह का नहीं था। जब हम प्राच्य विधियों पर ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि मौसम के लक्षण प्राय: वैसे ही दिखाई दिये जैसे कि आचार्यों द्वारा ग्रन्थों में वर्णित किये गये हैं।

प्रत्येक वर्ष ग्रह परिषद् के राजा, मन्त्री, सस्येश, धान्येश, मेघेश, रसेश आदि के अनुसार वृष्टि, अल्पवृष्टि एवं अतिवृष्टि का पूर्वानुमान किया जाता है। इस वर्ष का राजा शनि एवं मेघेश (मेघ का अधिपति) मंगल है। इन दोनों का फल वृष्टि के सन्दर्भ में इस प्रकार मिलता है कि – यदि राजा शनि हो तो एक ही वार वर्षा होती है जनता भयङ्कर रोगों एवं भूख से जन समुदाय पीड़ित होता है।[1] कृषिपराशर में भी कहा गया है कि **''पृथिवी धूलिसम्पूर्णा वृष्टि हीना शनौ भवेत्''**[2] आर्थात् शनि के राजा होने पर पृथ्वी धूल से पूर्ण एवं वृष्टि से रहित होती है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि वृष्टि कम होती है। इस वर्ष मेघेश मंगल के विषय में कहा गया है कि– **''क्वचिदपि प्रचुरं जलमल्पकं क्वचिदपि प्रचुरं बहुतापदम्''**[3] अर्थात् कहीं अल्प और कहीं अधिक वर्षा सन्तापदायक होती है। इस वर्ष में देखा गया कि कहीं प्रचुर वर्षा से बाढ़ आयी और कहीं सूखा पडा।

प्राच्य विधि के अनुसार आर्द्रा नक्षत्र को वर्षा का प्रथम नक्षत्र कहा गया है। संवत्सरारम्भ में वर्षा सम्बन्धी काल आर्द्रा नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश काल के आधार पर किया जाता है जिस ग्रह के वार में सूर्य आर्द्रा नक्षत्र में प्रवेश करता है उसे वर्षा का अधिपति कहा जाता है। जैसे इस वर्ष वर्षा का अधिपति मंगल है। जिसका फल इसके पूर्व में लिखा जा चुका है। इस वर्ष ११ जून २००५ से १ सितम्बर २००५ तक बुध ने अनादृष्टि योग बनाया था, क्यों कि कहा गया है कि यदि बुध आर्द्रा से मघा नक्षत्रों में रहने से अनादृष्टि योग होता है उक्त दिनाङ्कों में बुध इन्हीं नक्षत्रों में संचरण कर रहा था। इस सन्दर्भ में बृहत्संहिता में कहा गया है कि – यदि आर्द्रा से मघा तक के पाँच नक्षत्रों में से किसी भी नक्षत्र में बुध का संचार हो तो अनादृष्टि आदि अनेक

१. शनिश्चरे भूमिपतौ सकृज्जलं प्रभूतारोगैः परिपीड़िताः जनाः।
युद्धं नृपाणां बहुतस्कराद्भयं भवति लोका क्षुधया प्रपीडिता।।
– सम्वत्सरावली पद्धतिः राजाफलम्, श्लो. ७

२. कृषिपराशर पुरोवाक् २/५

३. सम्वत्सरावली पद्धतिः राजाफलम्, श्लो. ७

दु:खों से प्रजा को पीड़ा होती है।[1] इस मत का समर्थन वृद्ध गर्ग ने भी किया है।

पुरुष स्त्री एवं नपुंसक संज्ञक नक्षत्रों के अनुसार वर्षा ज्ञान विधि–

मूल, पू. षा., उ. षा., श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पू. फा., उ. भा. रेवती अश्विनी, भरणी, कृतिका रोहिणी, मृगशीर्ष, ये १४ नक्षत्र पुरुष संज्ञक हैं आर्द्रा से स्वाती तक के १० नक्षत्र स्त्री संज्ञक है। विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा ये तीनों नक्षत्र नपुंसक संज्ञक हैं।[2] इस वर्ष १२ सितम्बर २००५ को दिल्ली में अच्छी वर्षा हुई जिसका कारण हम उक्त नक्षत्रों के आधार पर ज्ञात करें तो मिलता है कि ११ सितम्बर की रात्रि को चन्द्र मूल नक्षत्र में प्रवेश करता है और सूर्य पहले से ही पू. फा. नक्षत्र में चल रहा था। यह वर्षा का योग बना रहा था, उल्लेखनीय है कि यदि सूर्य–चन्द्र, स्त्री–पुरुष अथवा पुरुष–स्त्री नक्षत्रों में हो तो वर्षा होती है। उक्त दिनाङ्क १२ सितम्बर के पूर्व चन्द्र नपुंसक नक्षत्रों में था। सूर्य–चन्द्र दोनों स्त्री संज्ञक या पुरुष संज्ञक नक्षत्रों में हो तो वर्षा नहीं होती है। साथ ही जैसा कि इससे पूर्व में कहा गया कि १ सितम्बर तक बुध ने अनादृष्टि योग बनाया था। अत: देखा गया कि १२ सितम्बर २००५ तक सर्वाधिक कम वृष्टि हुई अथवा नहीं हुई। १२ सितम्बर के पश्चात् वृष्टि योग बना था जो कुछ दिनों तक चला। पुन: कुछ दिनों बाद (५ अक्टूवर से १२ नवम्बर २००५ तक) शुक्र ने अनादृष्टि योग बनाया।

---

१. रौद्रादीनि मघान्तान्युपाश्रितेचन्द्रजे प्रजापीड़ा।
शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापै: ॥
—बृहत्संहिता बुधचाराध्याय श्लो.०३

२. आर्द्रादिदशकस्त्रीणां विशाखात्रि नपुंसकम्।
मूलाचतुर्दश: पुंसां नक्षत्राणि क्रमाद्बुधै:॥
वायुर्नपुंसके भे च ज्ञत्रीणां भे चाभ्रदर्शनम्।
स्त्रीणां पुरुषसंयोगे वृष्टिर्भवति निश्चितम्॥
— नरपतिजयचर्या चक्रबन्धाध्याय स्त्रीपुंनक्षत्राणि १—२

अत: कह सकते हैं कि पञ्चाङ्ग एवं ग्रहों के आधार पर इस वर्ष का पूरा पूर्वानुमान घटित हुआ। पञ्चाङ्गकार प्रतिवर्ष अपने पञ्चाङ्गो में वृष्टि का पूर्वानुमान देते हैं। जो लगभग ७०–८० प्रतिशत तक सही होता है जैसा कि वाराणसी के १९४६–१९९५ के पञ्चाङ्गों के आंकड़ो के आधार पर एस. के. मिश्रा ने अपने शोध प्रबन्ध में दर्शाया है। आधुनिक मौसम वैज्ञानिकों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए। यदि मिलकर प्रयास किया जाय तो अवश्य ही चमत्कारिक परिणाम मिल सकते हैं।

कृत् कार्य का विवरण एवं प्रगति –

प्रस्तुत अध्ययन भी उपर्युक्त किये गये प्रयत्नों पर ही आधारित है। इस कार्य का उद्देश्य प्राच्य उत्कृष्ट विधियों द्वारा मौसम (वृष्टि) का पूर्वानुमान कर आधुनिक आंकड़ों से तुलना करना है। इस सन्दर्भ में प्राच्य भारतीय विधियों में से तीन विधियों के द्वारा प्रायोगिक आधार पर मौसम का पूर्वानुमान करने का प्रयत्न किया गया है। ये तीन विधियाँ हैं –

१. ग्रहचार ।

२. स्त्री पुंयोग।

३. पौष मास के वायु की दिशा।

इन तीन विधियों से मौसम पूर्वानुमान हेतु निम्नांकित ढंग से आंकड़े तैयार किये गये।

१. ग्रहचार –

दृक्सिद्ध पञ्चाङ्गीय ग्रहस्थिति द्वारा प्राच्य विधियों के आंकड़े तैयार किये गये। दृक्सिद्ध पंचाङ्ग के रूप में श्री ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठ, नई दिल्ली का "विद्यापीठ पञ्चाङ्ग" और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी का ''दृक्सिद्ध पञ्चाङ्ग'' को प्रयोग में लिया गया है। इस योजना के अन्तर्गत प्रयोग के लिए दो स्थानों का चयन किया गया। वे दो स्थान हैं

दिल्ली और वाराणसी। इन दोनों स्थानों के संवत् २०५८ (सन् २००१–२००१), संवत् २०५९ (सन् २००२–२००३), संवत् २०६० (सन् २००३–२००४) एवं सम्वत् २०६१ (सन् २००४–२००५) के पञ्चाङ्गीय आंकड़ों के द्वारा आवश्यक प्रयुक्त होने वाली तालिकाओं को तैयार किया गया।

विवरण—

ग्रहचार द्वारा मौसम पूर्वानुमान हेतु प्रत्येक मास के प्रति पक्ष के ग्रहों के नक्षत्रचार को ग्रहण किया गया। इस तालिका में संवत्, मास, पक्ष, स्थान, ख्रीष्टाब्द (सन्), ख्रीष्टाब्द मास एवं समय को शीर्षक विवरण में दिखाया गया है। इस तालिका में तिथि वार के अनुसार प्रत्येक ग्रह के नक्षत्र, नक्षत्र चरण एवं नक्षत्र की पुरुष, स्त्री एवं नपुंसक संज्ञा अंकित की गयी है। तिथि को TITHI, वार को DAY , सूर्य को SUN, नक्षत्र को NK, नक्षत्र चरण को CH, नक्षत्र की पुंस्त्रीनपुंसक संज्ञा (लिङ्ग) को NKJ, चन्द्र को MON, मंगल को MAR, बुध को MER गुरु को JUP, शुक्र को VEN, शनि को SAT, पुलिङ्ग को M, स्त्रीलिङ्ग को F एवं नपुंसकलिंग को CG लिखा गया है। इस तालिका में सूर्य–चन्द्रमा के नक्षत्र संज्ञाओं के द्वारा होने वाली वृष्टि को Y एवं न होने वाली वृष्टि को N में दिखाया गया है। इसी प्रकार सभी ग्रहों के नक्षत्र द्वारा सूचित वृष्टिफल को Y एवं N में दिखाया गाय है। जहां जिस नक्षत्र में खाली जगह जिस ग्रह के नीचे दिखाई गयी है उसका अभिप्राय है कि इस नक्षत्र के वृष्टिफल के सन्दर्भ में ज्योतिष शास्त्र में कुछ भी नहीं कहा गया है। ग्रहों के नक्षत्र चार में वृष्टि के पूर्वानुमान को PRF लिखा गया है। जिस दिन वास्तविक वृष्टि हुई उसको ARF लिखा गया है। ARF के कालम में जो वृष्टि के आंकड़े दर्शाये गये हैं, वे भारतीय मौसम विभाग के डाटा सेन्टर पूणे से लिए गये हैं । आंकड़ों के अनुसार ही आगे वृष्टि का आंकलन दिखाया गया है। अवलोकनार्थ तालिका का प्रारुप संलग्न है। यथा–

Prachya Pratichya Drishtya Vrishti Vigyan ka Parishilan

Samvat 2058 Mas Chaitra Paksh Shukla (Delhi) Year 2001 Month March/April Time 6:27AM																																						
DATE	TITHI	DAY	SUN	NK	CH	NKJ	MON	NK	CH	NKJ	MAR	NK	CH	NKJ	MER	NK	CH	NKJ	JUP	NK	CH	NKJ	VEN	NK	CH	NKJ	SAT	NK	CH	NKJ	PRFद्व अं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	ARF	Remark
26	1	MO	12	उ.भा.	3	M	12	रे.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	श.	4	F	2	रो.	1	M	12	रे.	1	M	2	कृ.	2	F	N	N	N					
27	2	Tu	12	उ.भा.	3	M	1	अरि.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	श.	4	M	2	रो.	1	M	12	रे.	1	M	2	कृ.	3	M	N	N	N					
28	3	We	12	उ.भा.	4	M	1	भ.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	पू.भा.	1	M	2	रो.	1	M	12	रे.	1	M	2	कृ.	3	M	N	N	N					
29	4	Th	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	पू.भा.	1	M	2	रो.	1	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	3	M	N	N	N				0.9	
30	5	Fr	12	उ.भा.	4	M	2	रो.	4	M	8	ज्ये.	3	cg	11	पू.भा.	2	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	3	M	N	N	N				1.3	
31	6-7	Sa	12	उ.भा.	4	M	2	मृग.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	पू.भा.	2	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	3	M	N	N	N				3.00	
1	8	Su	12	रे.	1	M	3	आ.	2	F	8	ज्ये.	4	cg	11	पू.भा.	3	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	3	M	Y	N	N					
2	9	Mo	12	रे.	1	M	3	पुन.	2	F	8	ज्ये.	4	cg	11	पू.भा.	3	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	3	M	Y	N	N					
3	10	Tu	12	रे.	1	M	4	पुन.	3	F	8	ज्ये.	4	cg	12	पू.भा.	4	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	3	M	Y	N	N					
4	11	We	12	रे.	2	M	4	अरि.	3	F	8	ज्ये.	4	cg	12	पू.भा.	4	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	3	M	Y	N	N					
5	12	Th	12	रे.	2	M	5	मघा	3	F	8	ज्ये.	4	cg	12	उ.भा.	1	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	3	M	Y	N	N					
6	13	Fr	12	रे.	2	M	5	पू.फा.	4	F	8	ज्ये.	4	cg	12	उ.भा.	1	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	3	M	Y	N	N				0.8	
7	14	Sa	12	रे.	3	M	6	उ.फा.	4	F.	8	ज्ये.	4	cg	12	उ.भा.	2	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	3	M	Y	N	N					
8	15	Su	12	रे.	3	M	6	ह.	4	F	8	ज्ये.	4	cg	12	उ.भा.	2	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	3	M	Y	N	N					

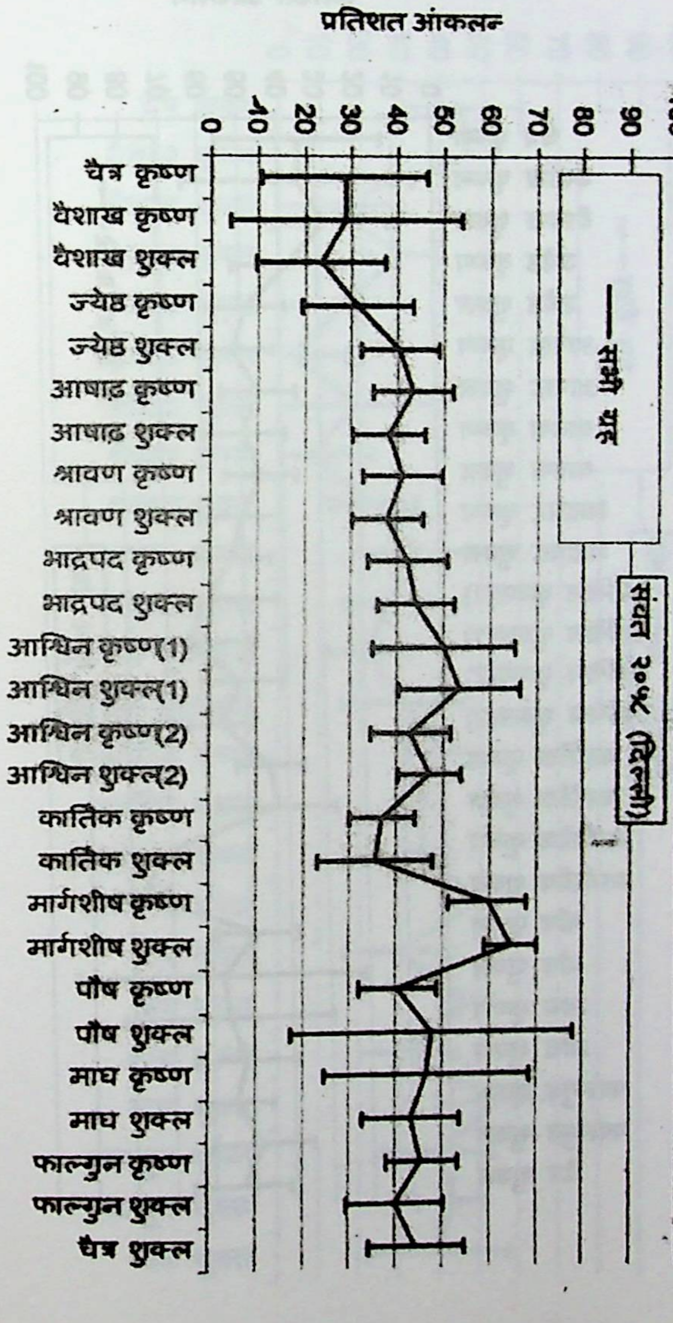
Prachya Pratichya Drishtya Vrishti Vigyan ka Parishilan

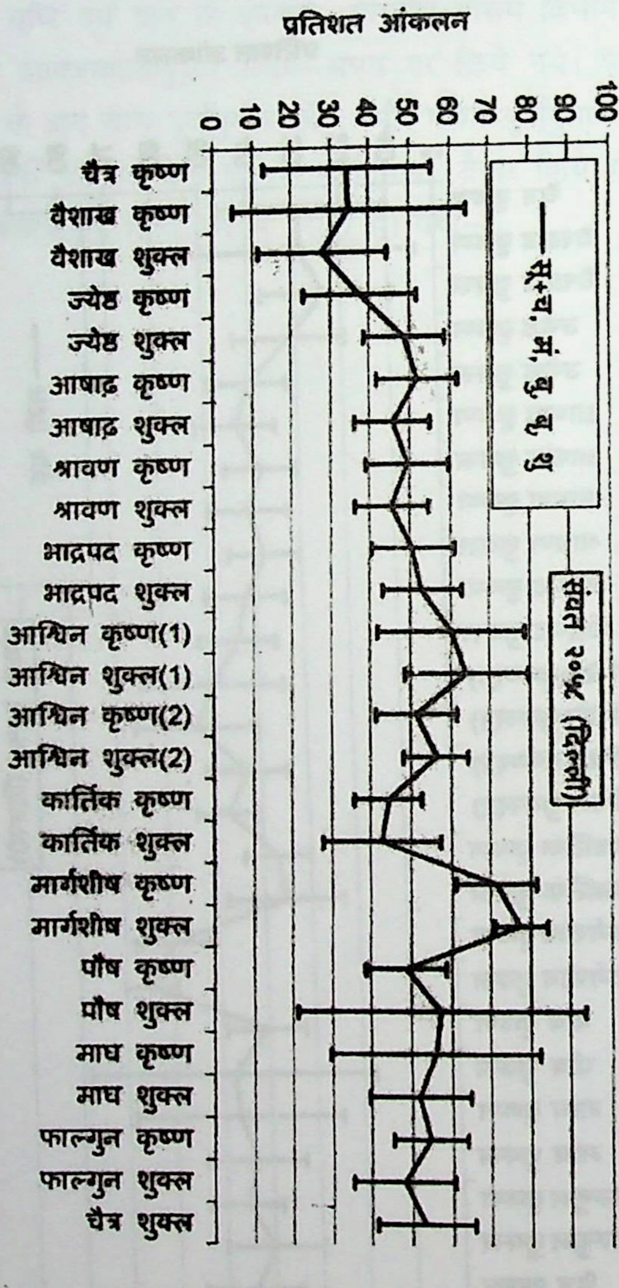
Samv-at 2058 Mas CHETRA SHUKLA Varanasi Year 2001 Month MARCH/APRIL Time 5:29AM

DATE	TITHI	DAY	SUN	NK	CH	NKJ-	MON	NK	CH	NKJ-	MAR	NK	CH	NKJ-	MER	NK	CH	NKJ-	JUP	NK	CH	NKJ-	VEN	NK	CH	NKJ-	SAT	NK	CH	NKJ-	PRF सू.+चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	ARF	Remark
26	1	M	12	उ.भा.	3	M	12	रे.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	शत.	4	M	2	रो.	1	M	12	रे.	1	M	2	कृ.	1	M	N	N	N					
27	2	T	12	उ.भा.	3	M	1	अ.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	शत.	4	M	2	रो.	1	M	12	रे.	1	M	2	कृ.	1	M	N	N	N					
28	3	W	12	उ.भा.	4	M	1	भ.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	पू.भा.	1	M	2	रो.	1	M	12	रे.	1	M	2	कृ.	1	M	N	N	N					
29	4	T	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	पू.भा.	1	M	2	रो.	1	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	1	M	N	N	N					
30	5	F	12	उ.भा.	4	M	2	रो.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	पू.भा.	2	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	1	M	N	N	N					
31	6-7	S	12	रे.	1	M	2	मृ.	2	M	8	ज्ये.	3	cg	11	पू.भा.	2	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	1	M	N	N	N					
1	8	Su	12	रे.	1	M	3	आ.	2	F	8	ज्ये.	4	cg	11	पू.भा.	3	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	1	M	Y	N	N					
2	9	M	12	रे.	1	M	3	पुन.	2	F	8	ज्ये.	4	cg	11	पू.भा.	3	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	4	M	2	कृ.	1	M	Y	N	N					
3	10	T	12	रे.	1	M	4	पुन.	2	F	8	ज्ये.	4	cg	12	पू.भा.	4	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	1	M	Y	N	N					
4	11	W	12	रे.	2	M	4	आश.	3	F	8	ज्ये.	4	cg	12	पू.भा.	4	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	1	M	Y	N	N					
5	12	T	12	रे.	2	M	5	म.	3	F	8	ज्ये.	4	cg	12	उ.भा.	1	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	1	M	Y	N	N					
6	13	F	12	रे.	2	M	5	पू.फा.	4	F	8	ज्ये.	4	cg	12	उ.भा.	1	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	1	M	Y	N	N					
7	14	S	12	रे.	3	M	6	उ.फा.	4	F	8	ज्ये.	4	cg	12	उ.भा.	2	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	1	M	Y	N	N					
8	15	Su	12	रे.	3	M	6	ह.	4	F	8	ज्ये.	4	cg	12	उ.भा.	2	M	2	रो.	2	M	12	उ.भा.	3	M	2	कृ.	1	M	Y	N	N					

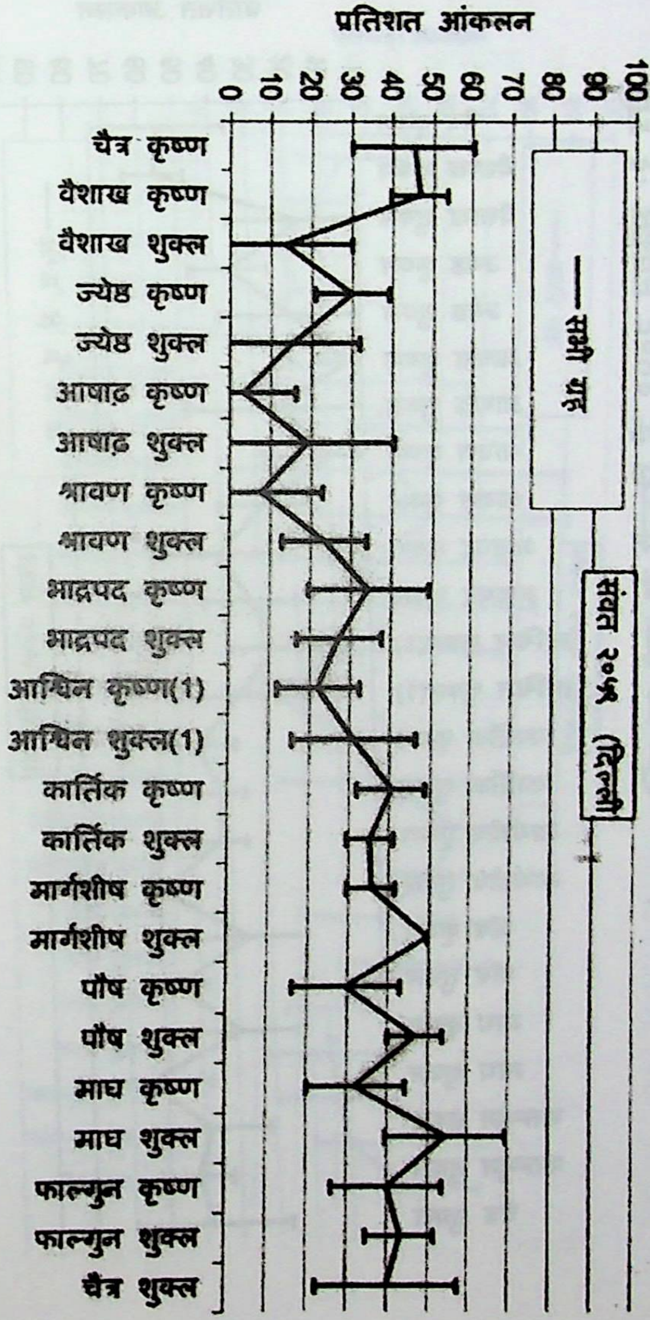
वर्षा का आंकलन

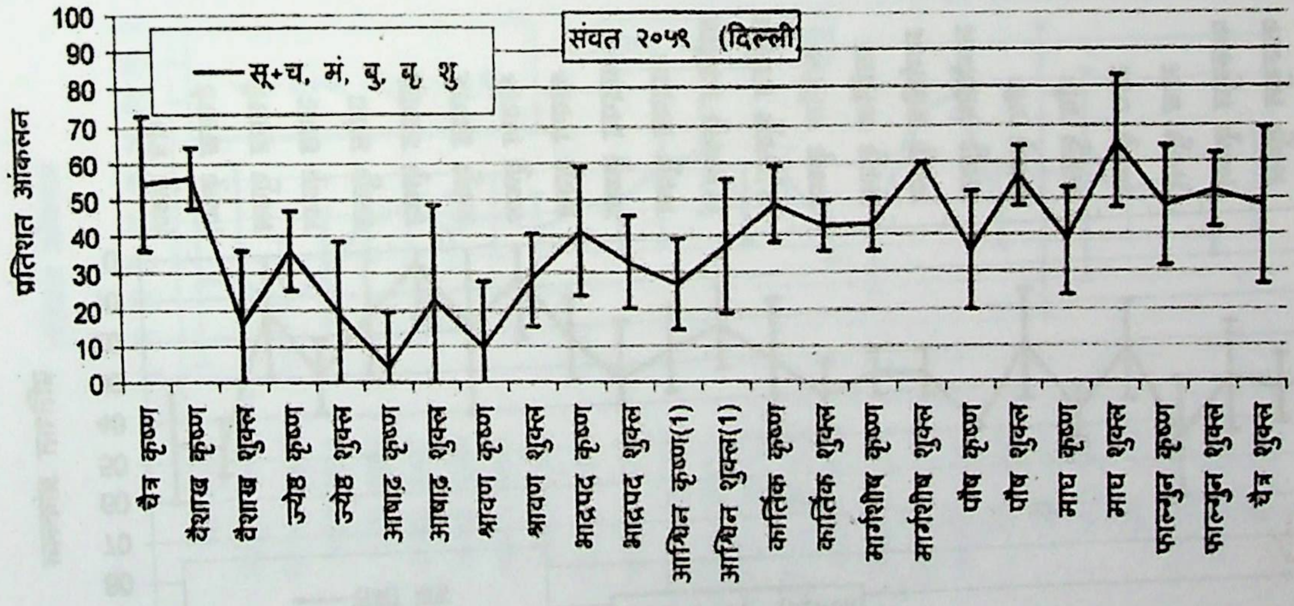
वास्तविक वृष्टि एवं वायु के आंकड़े भारतीय मौसम विभाग के डाटा सेन्टर पूणे से आवश्यकतानुसार समय–समय पर लिये गये। समग्र तालिका तैयार होने के बाद सत्य पूर्वानुमान को १ और गलत पूर्वानुमान को ० में लिखकर आंकडों के द्वारा प्रति वर्ष के पूर्वानुमान तैयार किये गये। जिनका विवरण अवलोकनार्थ निम्न रूप में प्रस्तुत है। यथा–


प्रतिशत आंकलन
0
10
20
30
40
50
60
70
80
90
100
चैत्र कृष्ण
वैशाख कृष्ण
वैशाख शुक्ल
ज्येष्ठ कृष्ण
ज्येष्ठ शुक्ल
आषाढ़ कृष्ण
आषाढ़ शुक्ल
श्रावण कृष्ण
श्रावण शुक्ल
भाद्रपद कृष्ण
भाद्रपद शुक्ल
आश्विन कृष्ण(1)
आश्विन शुक्ल(1)
आश्विन कृष्ण(2)
आश्विन शुक्ल(2)
कार्तिक कृष्ण
कार्तिक शुक्ल
मार्गशीष कृष्ण
मार्गशीष शुक्ल
पौष कृष्ण
पौष शुक्ल
माघ कृष्ण
माघ शुक्ल
फाल्गुन कृष्ण
फाल्गुन शुक्ल
चैत्र शुक्ल
— सभी ग्रह
संवत २०५८ (दिल्ली)

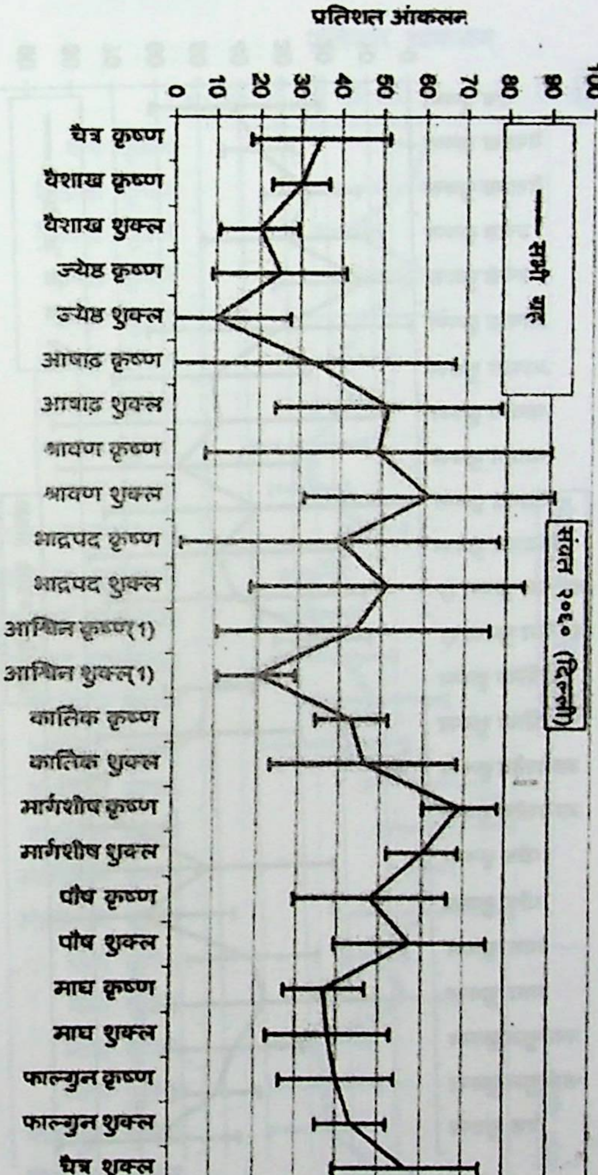


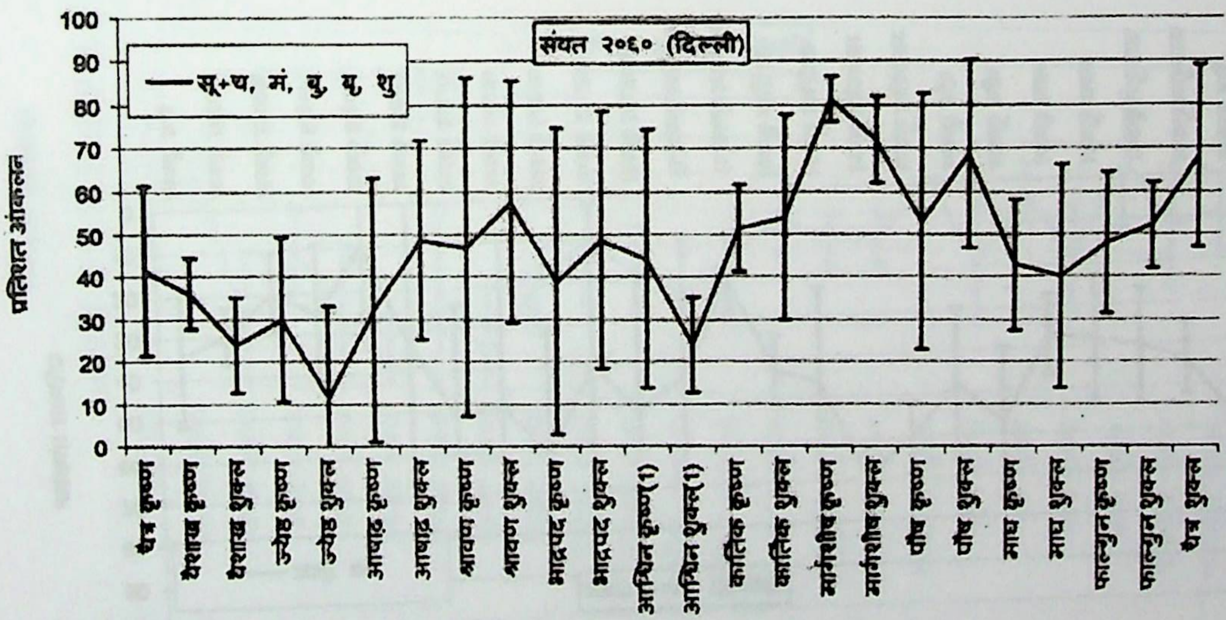
चित्र 1: सम्वत २०५८ में दिल्ली के वर्षा का प्रतिशत आंकलन 'सभी ग्रह' व 'सू, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति एवम शुक्र' के आधार पर ।


प्रतिशत आंकलन
0
10
20
30
40
50
60
70
80
90
100
चैत्र कृष्ण
वैशाख कृष्ण
वैशाख शुक्ल
ज्येष्ठ कृष्ण
ज्येष्ठ शुक्ल
आषाढ़ कृष्ण
आषाढ़ शुक्ल
श्रावण कृष्ण
श्रावण शुक्ल
भाद्रपद कृष्ण
भाद्रपद शुक्ल
आश्विन कृष्ण(1)
आश्विन शुक्ल(1)
कार्तिक कृष्ण
कार्तिक शुक्ल
मार्गशीष कृष्ण
मार्गशीष शुक्ल
पौष कृष्ण
पौष शुक्ल
माघ कृष्ण
माघ शुक्ल
फाल्गुन कृष्ण
फाल्गुन शुक्ल
चैत्र शुक्ल
—— सभी ग्रह
संवत २०५५ (दिल्ली)

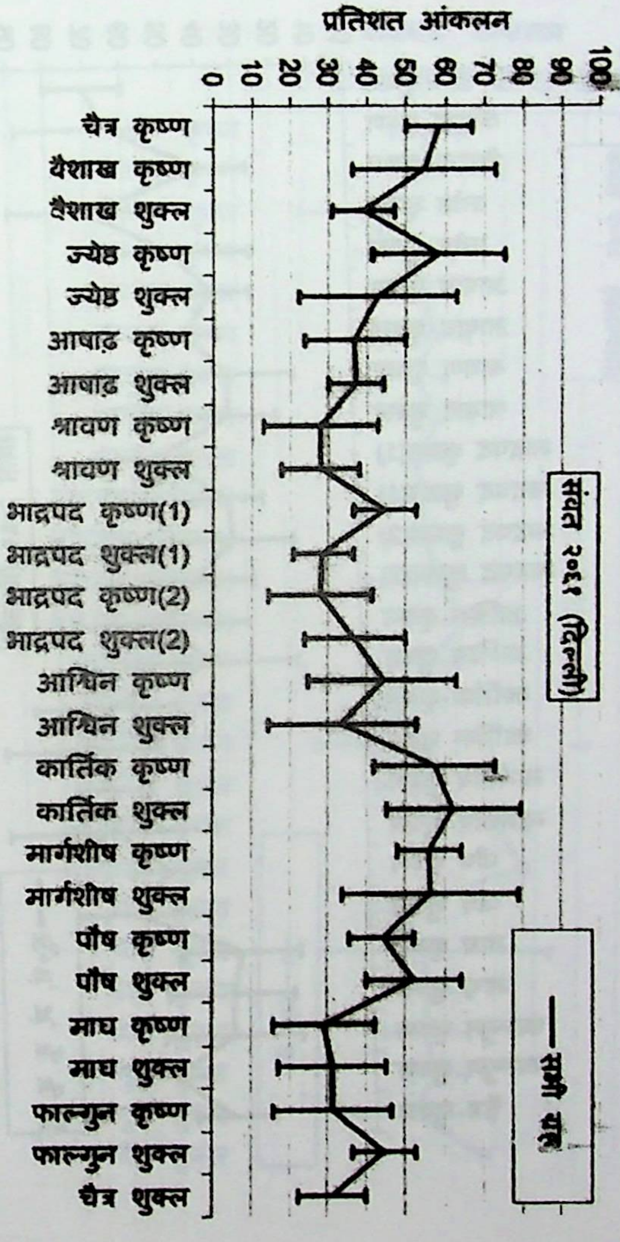


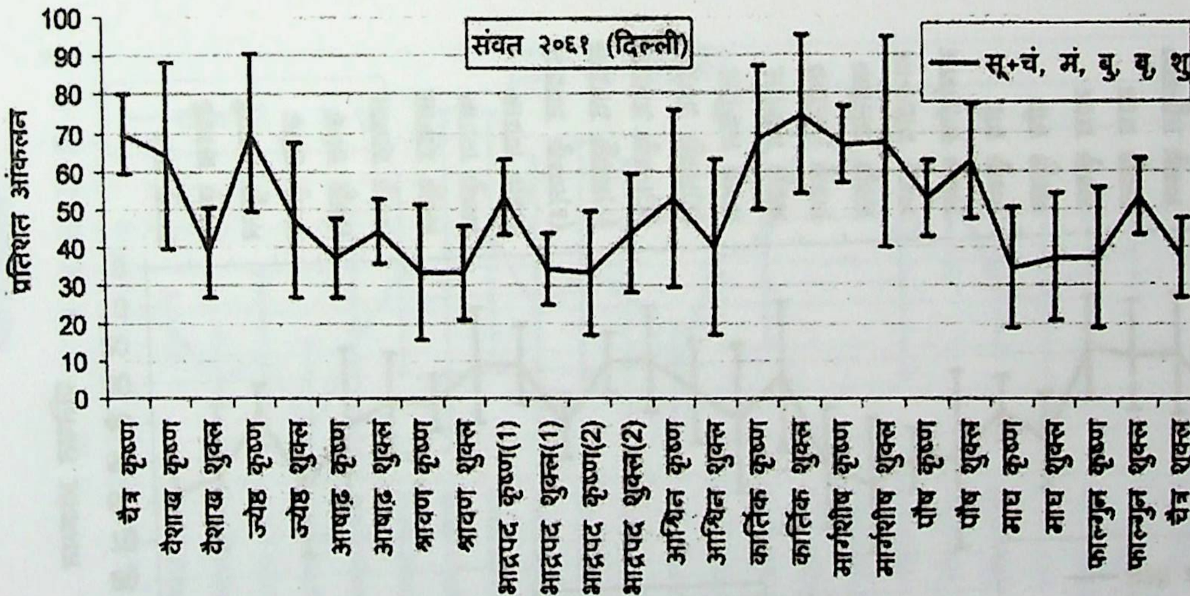
चित्र २: सम्वत २०५९ में दिल्ली के वर्षा का प्रतिशत आंकलन 'सभी ग्रह' व 'सू, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति एवम शुक्र' के आधार पर ।


प्रतिशत आंकलन
0
10
20
30
40
50
60
70
80
90
100
चैत्र कृष्ण
वैशाख कृष्ण
वैशाख शुक्ल
ज्येष्ठ कृष्ण
ज्येष्ठ शुक्ल
आषाढ़ कृष्ण
आषाढ़ शुक्ल
श्रावण कृष्ण
श्रावण शुक्ल
भाद्रपद कृष्ण
भाद्रपद शुक्ल
आश्विन कृष्ण(1)
आश्विन शुक्ल(1)
कार्तिक कृष्ण
कार्तिक शुक्ल
मार्गशीष कृष्ण
मार्गशीष शुक्ल
पौष कृष्ण
पौष शुक्ल
माघ कृष्ण
माघ शुक्ल
फाल्गुन कृष्ण
फाल्गुन शुक्ल
चैत्र शुक्ल
सभी वर्ष
संवत् २०६० (दिल्ली)

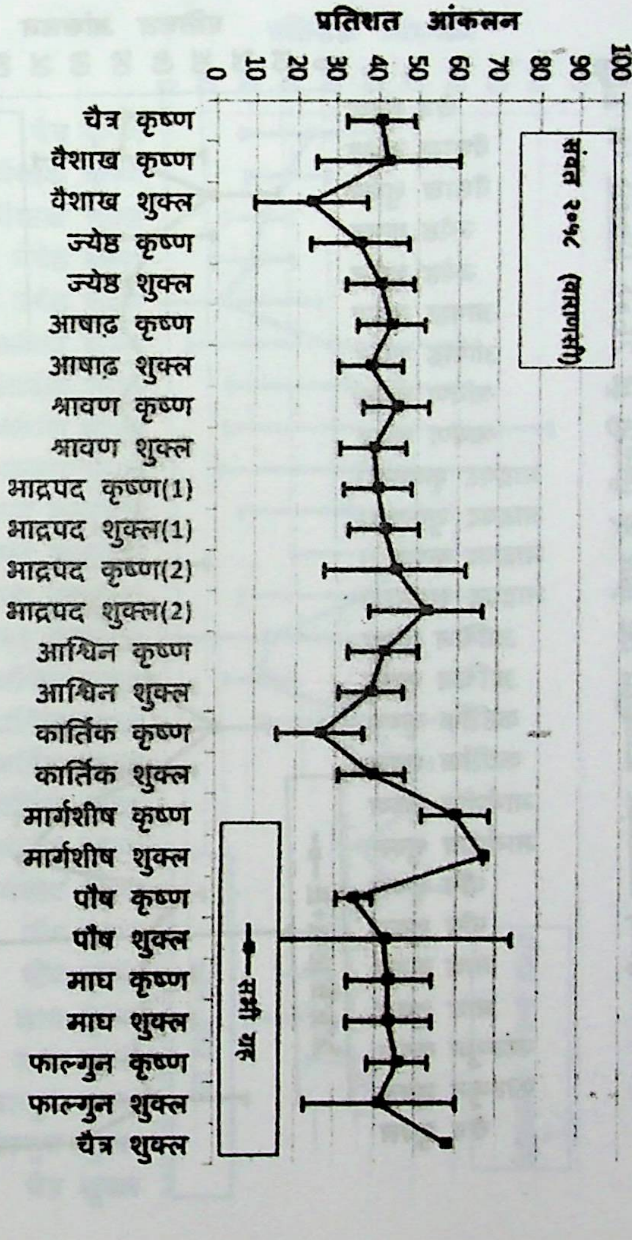


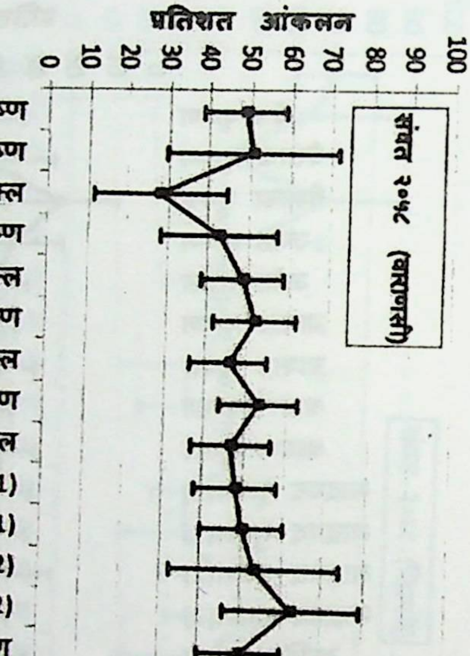
चित्र ३: सम्वत २०६० में दिल्ली के वर्षा का प्रतिशत आंकलन 'सभी ग्रह' व 'सू, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति एवम शुक्र' के आधार पर ।


प्रतिशत आंकलन
0
10
20
30
40
50
60
70
80
90
100
चैत्र कृष्ण
वैशाख कृष्ण
वैशाख शुक्ल
ज्येष्ठ कृष्ण
ज्येष्ठ शुक्ल
आषाढ़ कृष्ण
आषाढ़ शुक्ल
श्रावण कृष्ण
श्रावण शुक्ल
भाद्रपद कृष्ण(1)
भाद्रपद शुक्ल(1)
भाद्रपद कृष्ण(2)
भाद्रपद शुक्ल(2)
आश्विन कृष्ण
आश्विन शुक्ल
कार्तिक कृष्ण
कार्तिक शुक्ल
मार्गशीष कृष्ण
मार्गशीष शुक्ल
पौष कृष्ण
पौष शुक्ल
माघ कृष्ण
माघ शुक्ल
फाल्गुन कृष्ण
फाल्गुन शुक्ल
चैत्र शुक्ल
संवत २०६१ (दिल्ली)
सभी ग्रह

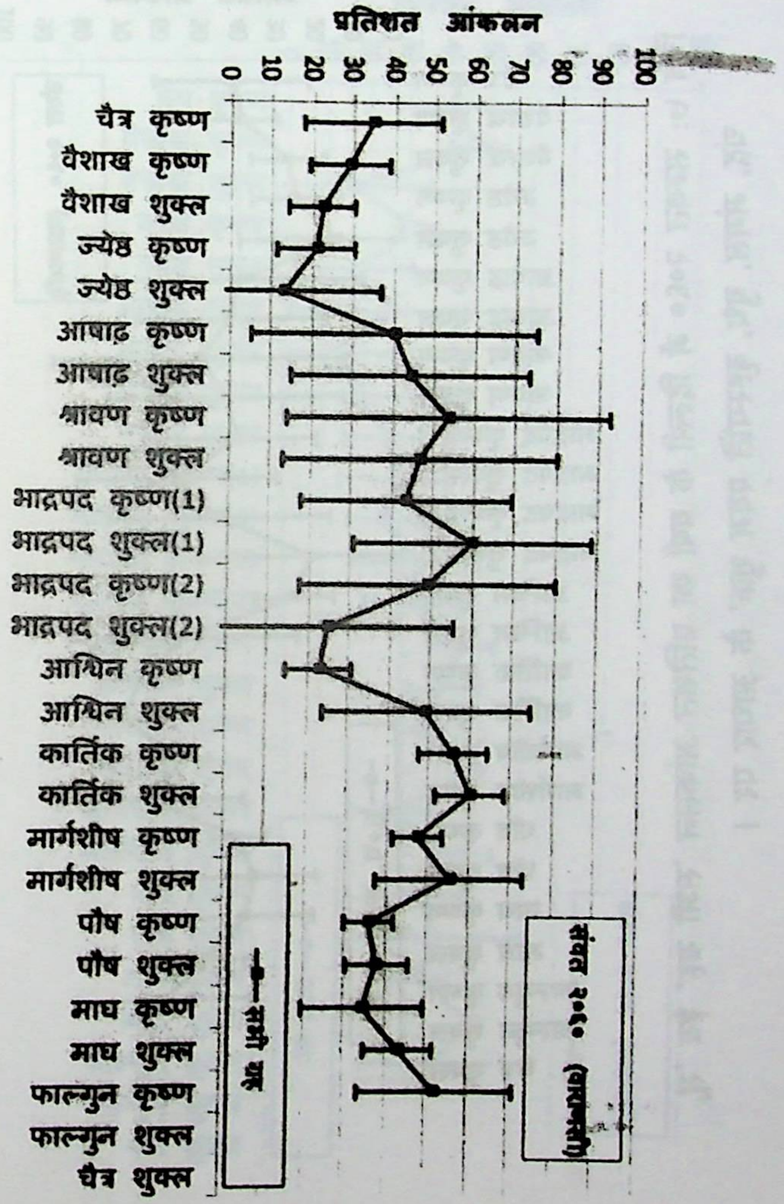


चित्र ४: सम्वत २०६१ में दिल्ली के वर्षा का प्रतिशत आंकलन 'सभी ग्रह' व 'सू, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति एवम शुक्र' के आधार पर ।

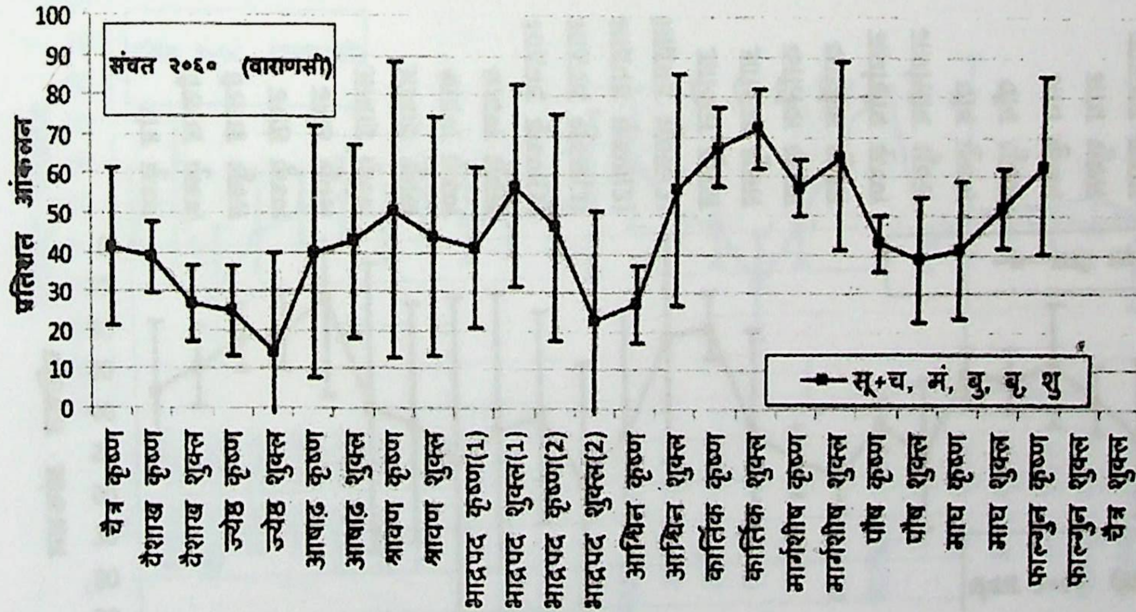

प्रतिशत आंकलन
0
10
20
30
40
50
60
70
80
90
100
संवत २०५८ (वाराणसी)
चैत्र कृष्ण
वैशाख कृष्ण
वैशाख शुक्ल
ज्येष्ठ कृष्ण
ज्येष्ठ शुक्ल
आषाढ़ कृष्ण
आषाढ़ शुक्ल
श्रावण कृष्ण
श्रावण शुक्ल
भाद्रपद कृष्ण(1)
भाद्रपद शुक्ल(1)
भाद्रपद कृष्ण(2)
भाद्रपद शुक्ल(2)
आश्विन कृष्ण
आश्विन शुक्ल
कार्तिक कृष्ण
कार्तिक शुक्ल
मार्गशीष कृष्ण
मार्गशीष शुक्ल
पौष कृष्ण
पौष शुक्ल
माघ कृष्ण
माघ शुक्ल
फाल्गुन कृष्ण
फाल्गुन शुक्ल
चैत्र शुक्ल
सभी ग्रह



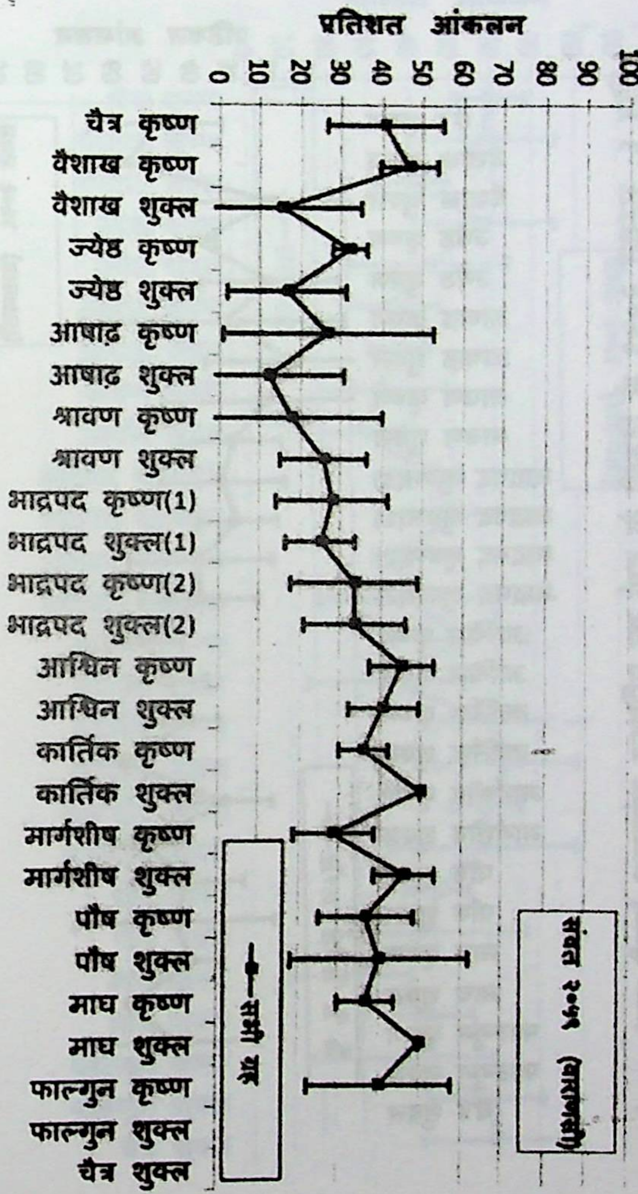
चित्र ५: सम्वत २०७८ में दिल्ली के वर्षा का प्रतिशत आंकलन 'सभी ग्रह' व 'सू, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति एवम शुक्र' के आधार पर।

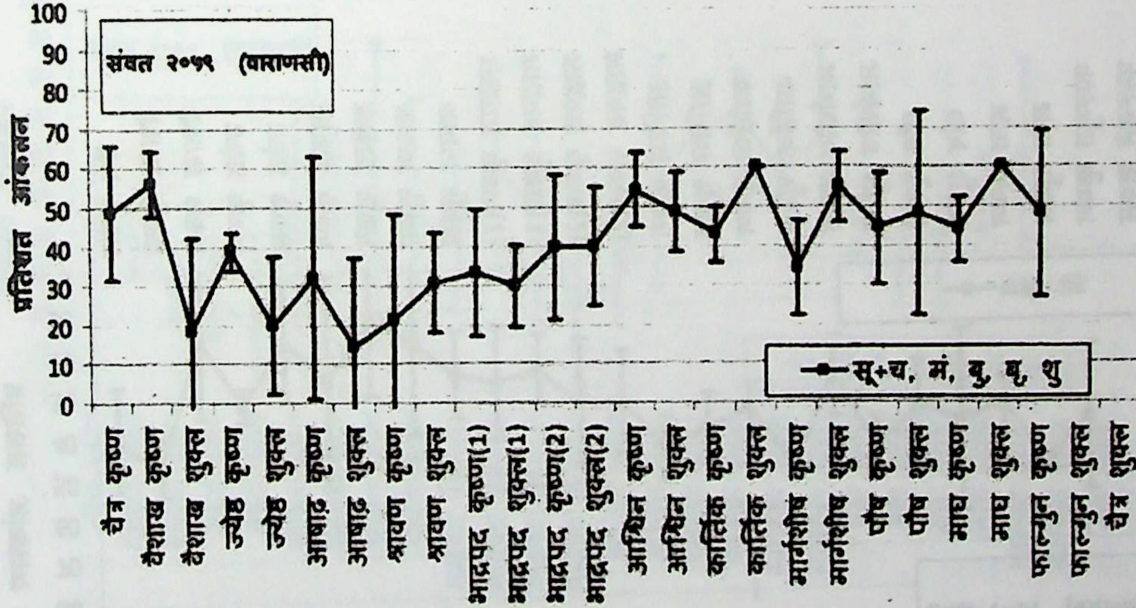


प्रतिशत आंकलन
0 10 20 30 40 50 60 70 80 90 100
चैत्र कृष्ण
वैशाख कृष्ण
वैशाख शुक्ल
ज्येष्ठ कृष्ण
ज्येष्ठ शुक्ल
आषाढ़ कृष्ण
आषाढ़ शुक्ल
श्रावण कृष्ण
श्रावण शुक्ल
भाद्रपद कृष्ण(1)
भाद्रपद शुक्ल(1)
भाद्रपद कृष्ण(2)
भाद्रपद शुक्ल(2)
आश्विन कृष्ण
आश्विन शुक्ल
कार्तिक कृष्ण
कार्तिक शुक्ल
मार्गशीष कृष्ण
मार्गशीष शुक्ल
पौष कृष्ण
पौष शुक्ल
माघ कृष्ण
माघ शुक्ल
फाल्गुन कृष्ण
फाल्गुन शुक्ल
चैत्र शुक्ल
सभी वर्ष
संवत २०६० (वाराणसी)

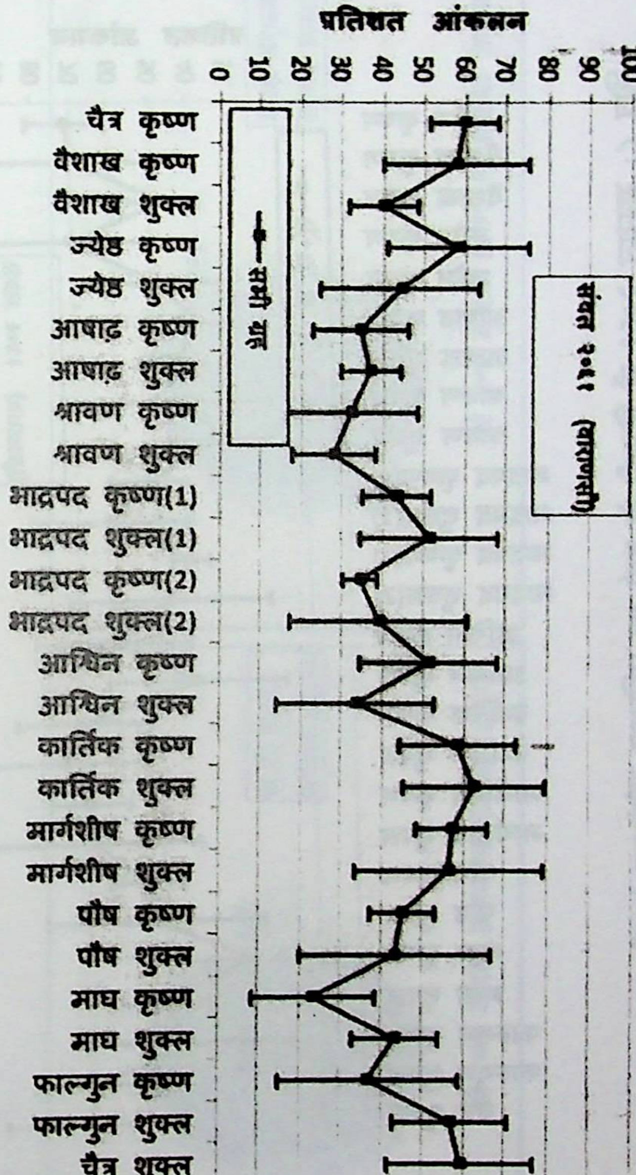


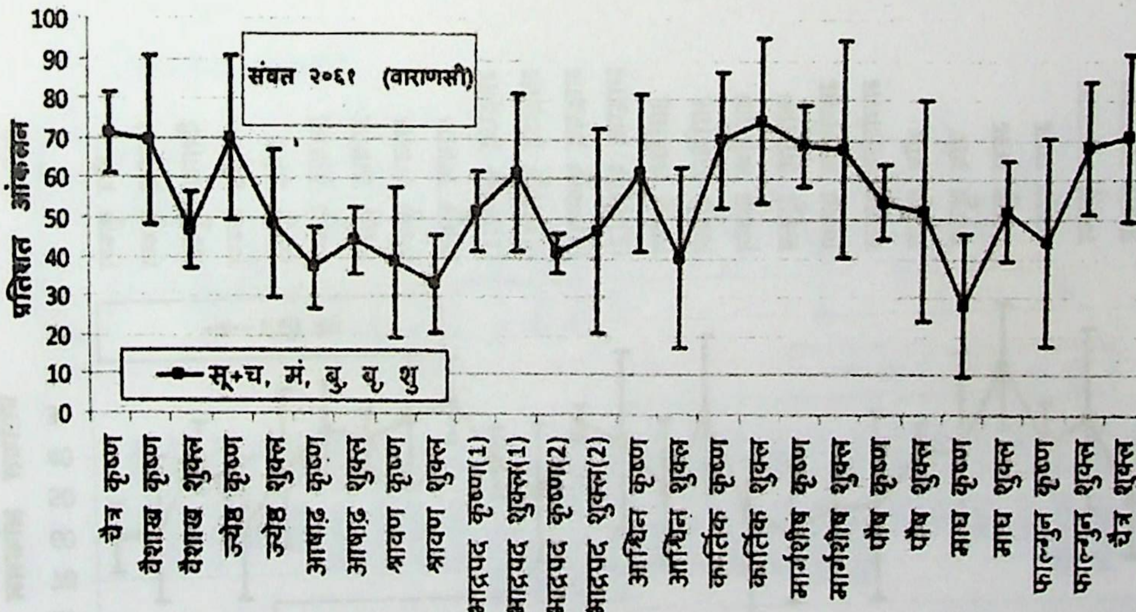
चित्र ७: सम्वत २०६० में दिल्ली के वर्षा का प्रतिशत आंकलन 'सभी ग्रह' एव 'सू, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति एवम शुक्र' के आधार पर ।


प्रतिशत आंकलन
0
10
20
30
40
50
60
70
80
90
100
चैत्र कृष्ण
वैशाख कृष्ण
वैशाख शुक्ल
ज्येष्ठ कृष्ण
ज्येष्ठ शुक्ल
आषाढ़ कृष्ण
आषाढ़ शुक्ल
श्रावण कृष्ण
श्रावण शुक्ल
भाद्रपद कृष्ण(1)
भाद्रपद शुक्ल(1)
भाद्रपद कृष्ण(2)
भाद्रपद शुक्ल(2)
आश्विन कृष्ण
आश्विन शुक्ल
कार्तिक कृष्ण
कार्तिक शुक्ल
मार्गशीष कृष्ण
मार्गशीष शुक्ल
पौष कृष्ण
पौष शुक्ल
माघ कृष्ण
माघ शुक्ल
फाल्गुन कृष्ण
फाल्गुन शुक्ल
चैत्र शुक्ल
सभी ग्रह
संवत २०७१ (वाराणसी)

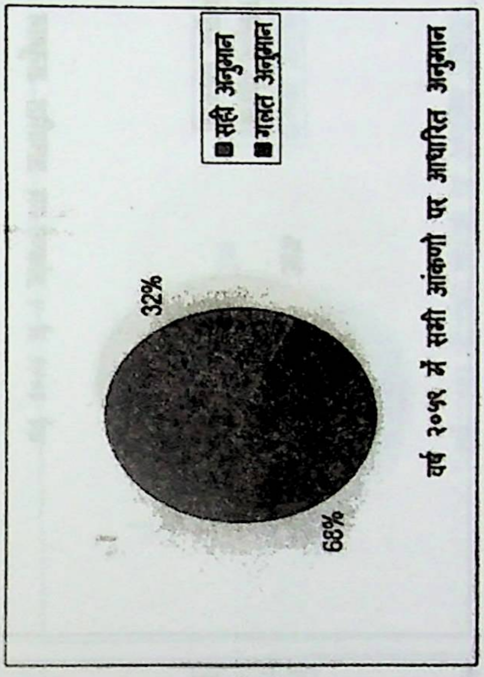


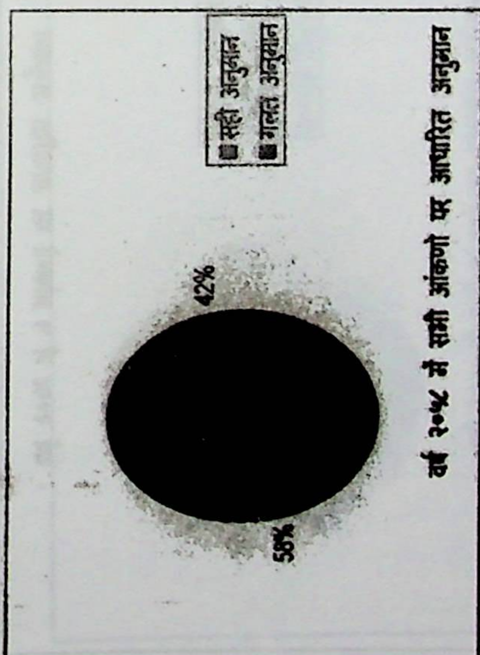
चित्र ६: सम्वत २०५९ में दिल्ली के वर्षा का प्रतिशत आंकलन 'सभी ग्रह' व 'सू, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति एवम शुक्र' के आधार पर ।

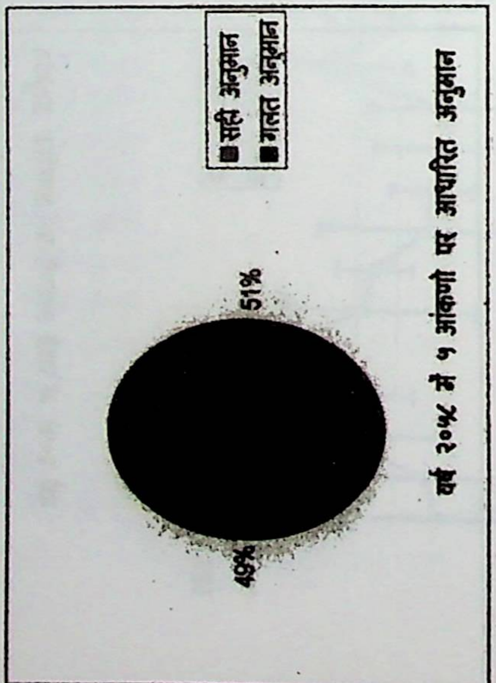

प्रतिशत आंकलन
0
10
20
30
40
50
60
70
80
90
100
सभी ग्रह
संवत २०६१ (वाराणसी)
चैत्र कृष्ण
वैशाख कृष्ण
वैशाख शुक्ल
ज्येष्ठ कृष्ण
ज्येष्ठ शुक्ल
आषाढ़ कृष्ण
आषाढ़ शुक्ल
श्रावण कृष्ण
श्रावण शुक्ल
भाद्रपद कृष्ण(1)
भाद्रपद शुक्ल(1)
भाद्रपद कृष्ण(2)
भाद्रपद शुक्ल(2)
आश्विन कृष्ण
आश्विन शुक्ल
कार्तिक कृष्ण
कार्तिक शुक्ल
मार्गशीष कृष्ण
मार्गशीष शुक्ल
पौष कृष्ण
पौष शुक्ल
माघ कृष्ण
माघ शुक्ल
फाल्गुन कृष्ण
फाल्गुन शुक्ल
चैत्र शुक्ल

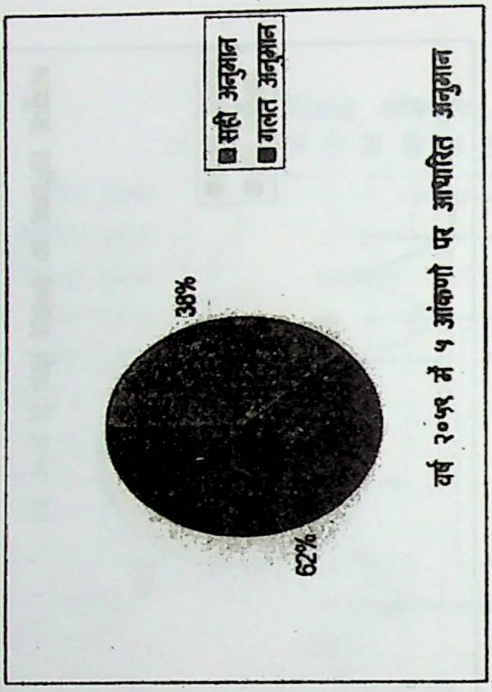


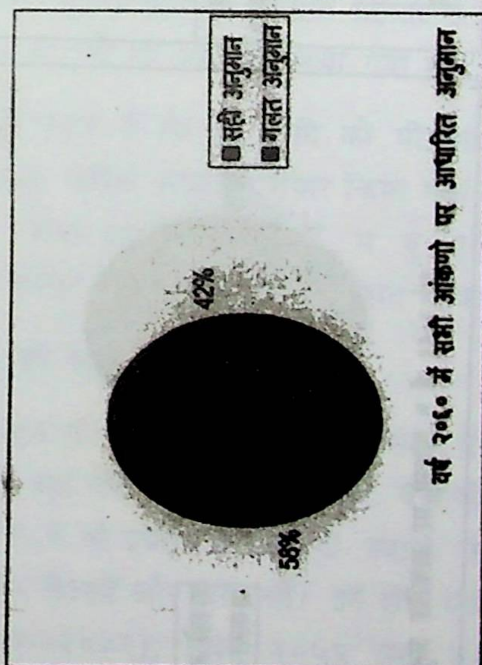
चित्र ८: सम्वत २०६१ में दिल्ली के वर्षा का प्रतिशत आंकलन 'सभी ग्रह' व 'सू, चंद्र, मंगल, बुध, बृहस्पति एवम शुक्र' के आधार पर ।

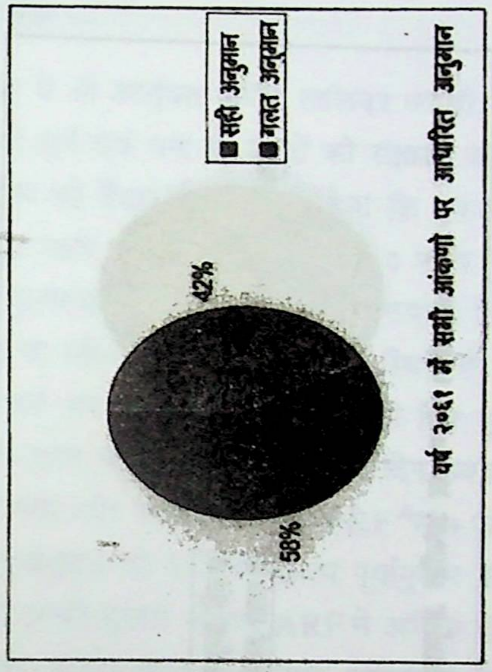

32%
68%
सही अनुमान
गलत अनुमान
वर्ष २०५९ में सभी आंकणो पर आधारित अनुमान

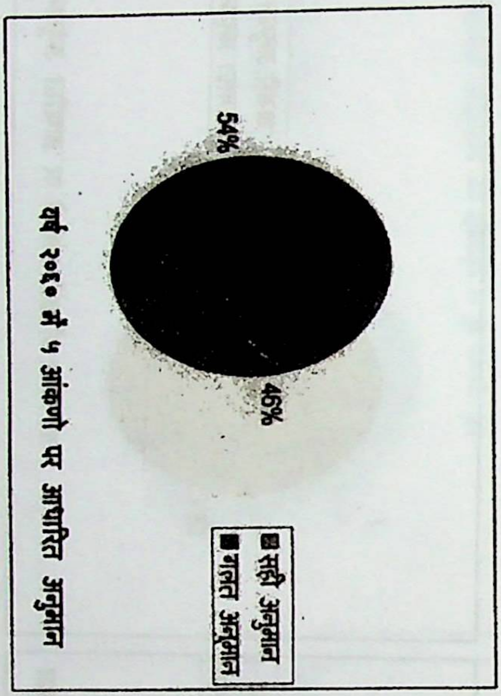

42%
58%
सही अनुमान
गलत अनुमान
वर्ष २०५८ में सभी आंकणो पर आधारित अनुमान

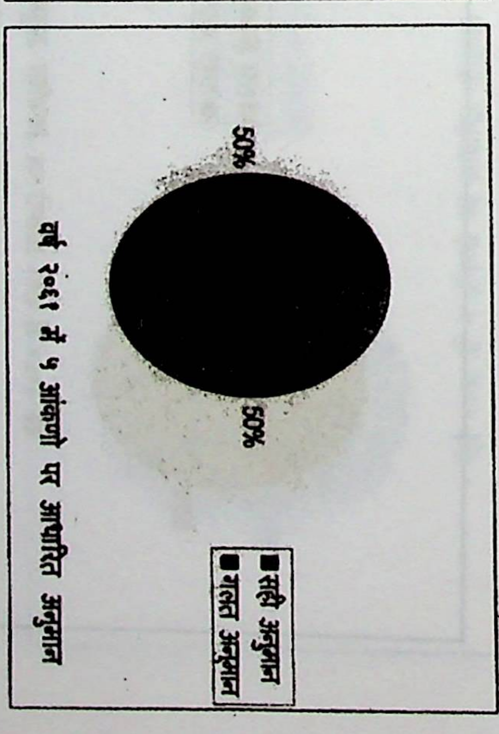

वर्ष २०५८ में ९ आंकणों पर आधारित अनुमान
51%
49%
सही अनुमान
गलत अनुमान


वर्ष २०५९ में ५ आंकणों पर आधारित अनुमान
38%
62%
सही अनुमान
गलत अनुमान


सही अनुमान
गलत अनुमान
42%
58%
वर्ष २०६० में सभी आंकणो पर आधारित अनुमान


सही अनुमान
गलत अनुमान
42%
58%
वर्ष २०६१ में सभी आंकणो पर आधारित अनुमान


वर्ष २०६० में ५ आंकणों पर आधारित अनुमान
54%
46%
सही अनुमान
गलत अनुमान


वर्ष २०६१ में ५ आंकणों पर आधारित अनुमान
50%
50%
सही अनुमान
गलत अनुमान

२. स्त्री–पुंयोग –

इस विधि में भी उपर्युक्त वर्णित तालिका का ही प्रयोग किया गया। इस तालिका से ही सूर्य एवं चन्द्र के नक्षत्रों की संज्ञाओं को जान कर मौसम (वृष्टि) के पूर्वानुमान को तैयार किया गया। जैसा कि इस विधि में कहा गया है कि आर्द्रा से १० नक्षत्र स्त्रीसंज्ञक, विशाखा से ३ नक्षत्र नपुंसकसंज्ञक तथा मूल से १४ नक्षत्र पुरुषसंज्ञक हैं। इस विधि में कहा गया है कि यदि सूर्य–चन्द्र क्रमश: पुरुष–स्त्री या स्त्री–पुरुष संज्ञक नक्षत्रों में स्थित हों तो वर्षा होती है। उक्त तालिका में वर्ष भर यह देखा गया कि जिस दिन सूर्य–चन्द्र क्रमश: पुरुष–स्त्री या स्त्री–पुरुष संज्ञक नक्षत्रों में थे; उस दिन उक्त आधार पर वर्षा का अनुमान किया गया और उसे तालिका के PRF “सू + च” नामक कालम में वृष्टि के सत्य पूर्वानुमान को Y और असत्य पूर्वानुमान को N में दर्शाया गया है। इसके बाद इसकी तुलना कालम ARF में अंकित वास्तविक वर्षा के आंकड़ों से की गयी। तुलना करने के उपरान्त ग्रहचार में दिये गये प्रतिशत आंकलन में ‘सू + च’ को भी समाहित किया गया है।

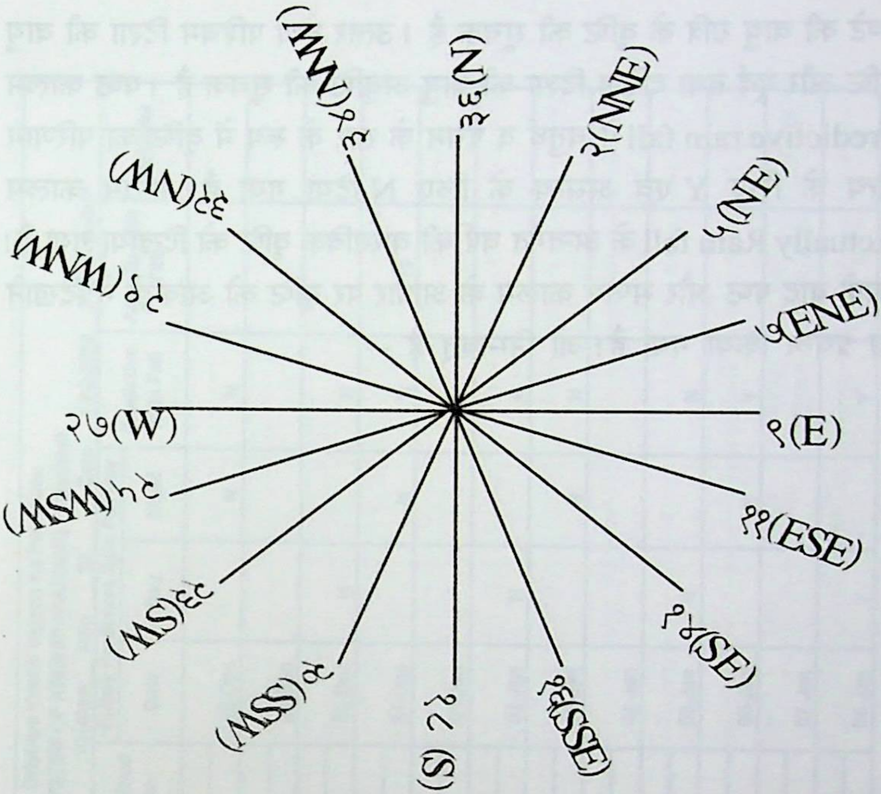
अत: कह सकते हैं कि इस विधि को भी ग्रहचार के साथ ही समाहित कर वृष्टि का वार्षिक आंकलन तैयार किया गया है जो ग्रहचार के अन्तर्गत दिये गए ‘‘सभी ग्रह एवं ‘सू. + च., म. बु. बृ. शु.’ के संवत २०५८ से २०६१ दिल्ली एवं वाराणसी के प्रतिशत आंकलन दिये गए हैं।

३. पौष मास की वायु की दिशा –

इस परियोजना के तहत प्रथम दृष्ट्या कृषिपराशर में प्रदत्त, पौष मास की वायु की दिशा एवं गति के आधार पर चार वर्षों के आंकडे तैयार किये गये। इस विधि में भी प्रयोग के लिए दो स्थानों का चयन किया गया। वे दो स्थान हैं– दिल्ली और वाराणसी। इन दोनों स्थानों के भी संवत् २०५८ (सन् २००१–२००२), संवत् २०५९ (सन् २००२–२००३), संवत् २०६० (सन् २००३–२००४), संवत् २०६१ (सन् २००४–२००५)

के पंचाङ्गों के सूर्योदय के आधार पर आवश्यक प्रयोग के लिए तालिकाओं को तैयार किया गया।

इस विधि से पूर्वानुमान के लिए तालिका तैयार करने में सर्वप्रथम अमान्त पौष मास को ग्रहण किया गया। अमान्त पौष मास की ३० तिथियों को पूरे वर्ष भर में बॉटा गया। इस आधार पर जैसा कि पहले वर्णन किया गया है, एक तिथि (दिन) को २४ घण्टे में बॉटा गया। वर्ष का एक दिन (अहोरात्र) पाँच घटी के बराबर हुआ। पांच घटी को दो भागों में बाटने पर २.५, २.५ घटी के अहोरात्र के दिन और रात हुए। अत: पौष मास की एक तिथि के २४ घण्टे में वर्ष के १२ दिन समाहित होते हैं। इस तालिका के प्रथम कालम Every hour from Sunrise में १–२४ घण्टे दिखाये गये हैं। द्वितीय कालम Sunrise to Sunrise (Every hour begining time) में दिन का प्रारम्भ सूर्योदय से होता है इसलिए घण्टे का प्रारम्भ समय सूर्योदय से मानते हुए २४ घंटे में तिथि को प्रदर्शित किया गया है। तृतीय कालम "Wind direction" में हवा की दिशा को दिखाया गया है। निर्दिष्ट दिशा का संकेत यह बताता है कि इस दिशा में हवा वह रह थी । इस कालम में O(CALM) का अभिप्राय है कि हवा किसी भी दिशा में नहीं बह रही थी। इस कालम में अङ्क के साथ उसकी दिशा भी लिखी गयी है। अंक दिशा का कोड है । इसके आगे आंगल भाषा में दिशा के प्रथम अक्षर को कोष्ठक में लिख गया है । इस कालम में स्थित ९(E) से पूर्व का, १८(S) से दक्षिण का, २७(W) से पश्चिम का, ३६(N) से उत्तर का, २(NNE) से उत्तर उत्तर पूर्व का, ५(NE) से उत्तर पूर्व का, १४(SE) दक्षिण पूर्व का, १६(SSE) से दक्षिण–दक्षिण–पूर्व का, २०(SSW) से दक्षिण–दक्षिण पश्चिम का, २३(SW) से दक्षिण पश्चिम का, २५(WSW) से पश्चिम–दक्षिण–पश्चिम का, २९(WNW) से पश्चिम–उत्तर–पश्चिम का, ३२(NW) से उत्तर पश्चिम का, ३४(NNW) से उत्तर–उत्तर–पश्चिम का, ज्ञान होता है। इसे निम्न चक्र से स्पष्टतया जाना जा सकता है। यथा –



इस विधि के अनुसार मौसम पूर्वानुमान में प्रति घंटे की हवा की दिशा की आवश्यकता होती है परन्तु हमें पूना स्थित भारतीय मौसम विभाग के डाटा सेन्टर से जो हवा का डाटा मिला उसे इस कालम में समय के अनुसार उसी रूप में दर्शाया गया है। चतुर्थ कालम् Result of Wind direction में हवा की दिशा का पराशरोक्त फल वृष्टि होगी के लिए Y, वृष्टि नही होगी के लिए N तथा कुछ नही के लिए O दिखाया गया है। पंचम कालम "Future Predictive Rain Fall Day" को तीन भागों में बाँटा गया है। प्रथम भाग Date में वर्ष का उपर्युक्त विभाजन क्रम के अनुसार पड़ने वाले दिन दिनाङ्क में दिया है इसके आगे दिनाङ्क को दिन Day और रात्रि को Night के रूप में दिखाया गया है। दो घण्टे में पहला घण्टा दिन का तथा दूसरा घण्टा रात्रि का सूचक होता है । प्रथम घण्टे की वायु दिन की तथा दूसरे

घण्टे की वायु रात्रि के वृष्टि की सूचक है । उत्तर तथा पश्चिम दिशा की वायु वृष्टि और पूर्व तथा दक्षिण दिशा की वायु अवृष्टि की सूचक है । षष्ठ कालम Predictive rain fall में चतुर्थ व पंचम के सार के रूप में वृष्टि का परिणाम सत्य के लिए Y एवं असत्य के लिए N दिया गया है। सप्तम कालम Actually Rain fall के अन्तर्गत वर्ष की वास्तविक वृष्टि को दिखाया गया है। इसके बाद षष्ठ और सप्तम कालम के आधार पर वृष्टि को आंकड़ो में दिखाने का प्रयत्न किया गया है। जो निम्नवत् है –

Prachya Pratichya Drishtya Vrishti Vigyan Ka Parishilan
(RAIN PREDICTION SYSTEM OF KRISHIPARASHAR) Paushadi

Samvat-2058 Mas Magh + Paush Paksh Krishan Tithi 30 Date 12-2-2002 Place - Delhi

Every Hour from to Sunrise	Sunrise to Sunrise (Every Hour Beginning Time)	Wind direction	Result of Wind direction	Future Predictive Rain Fall Day			Predictive Rain Fall	Actually Rain Fall	Remarks
				Date	Day	Night			
1	07:07								
2	08:07	0(CALM)	0	28-Dec		N	N		
3	09:07								
4	10:07			29-Dec					
5	11:07	20(SSW)	N						
6	12:07			30-Dec	N		N		
7	13:07								
8	14:07	14(SE)	N	31-Dec		N	N	13	
9	15:07								
10	16:07			01-Jan					
11	17:07	0(CALM)	0						
12	18:07			02-Jan	N		N		
13	19:07								
14	20:07	0(CALM)	0	03-Jan		N	N		
15	21:07								
16	22:07			04-Jan					
17	23:07	0(CALM)	0						
18	00:07			05-Jan	N		N		
19	01:07								
20	02:07	23(SW)	Y	06-Jan		Y	Y		
21	03:07								
22	04:07			07-Jan					
23	05:07	27(W)	Y						
24	06:07			08-Jan	Y		Y		

Prachya Pratichya Drishtya Vrishti Vigyan Ka Parishilan
(RAIN PREDICTION SYSTEM OF KRISHIPARASHAR) Cheitradi

Samvat-2058 Mas Paush Paksh Shukla Tithi 01 Date 14-1-2002 Place - Delhi

Every Hour from to Sunrise	Sunrise to Sunrise (Every Hour Beginning Time)	Wind direction	Result of Wind direction	Future Predictive Rain Fall Day			Predictive Rain Fall	Actually Rain Fall	Remarks
				Date	Day	Night			
1	07:20			13-Apr		N	N		
2	08:20	14(SE)	N						
3	09:20			14-Apr					
4	10:20								
5	11:20	14(SE)	N	15-Apr	N		N		
6	12:20								
7	13:20			16-Apr		N	N		
8	14:20	14(SE)	N						
9	15:20			17-Apr					
10	16:20								
11	17:20	14(SE)	N	18-Apr	N		N		
12	18:20								
13	19:20			19-Apr		N	N		
14	20:20	14(SE)	N						
15	21:20			20-Apr					
16	22:20								
17	23:20	18(S)	N	21-Apr	N				
18	00:20								
19	01:20			22-Apr		N	N		
20	02:20	14(SE)	N						
21	03:20			23-Apr					
22	04:20								
23	05:20	14(SE)	N	24-Apr	N		N		
24	06:20								

Prachya Pratichya Drishtya Vrishti Vigyan Ka Parishilan
(RAIN PREDICTION SYSTEM OF KRISHIPARASHAR) Paushadi

Samvat-2058 Mas Paush Paksh Shukla Tithi 01 Date 14-1-2002 Place - Varanasi

Every Hour from to Sunrise	Sunrise to Sunrise (Every Hour Beginning Time)	Wind direction	Result of Wind direction	Future Predictive Rain Fall Day			Predictive Rain Fall	Actually Rain Fall	Remarks
				Date	Day	Night			
1	06:48			14-Jan					
2	07:48								
3	08:48	0		15-Jan	N		N		
4	09:48								
5	10:48			16-Jan					
6	11:48								
7	12:48			17-Jan					
8	13:48								
9	14:48			18-Jan				0.1	
10	15:48								
11	16:48			19-Jan		N	N		
12	17:48	11							
13	18:48			20-Jan				15.2	
14	19:48								
15	20:48			21-Jan				0.3	
16	21:48								
17	22:48			22-Jan					
18	23:48								
19	00:48			23-Jan					
20	01:48								
21	02:48			24-Jan					
22	03:48								
23	04:48			25-Jan					
24	05:48								

Prachya Pratichya Drishtya Vrishti Vigyan Ka Parishilan
(RAIN PREDICTION SYSTEM OF KRISHIPARASHAR) Chaitradi

Samvat-2058 Mas Paush Paksh Shukla Tithi 01 Date 14-1-2002 Place - Varanasi

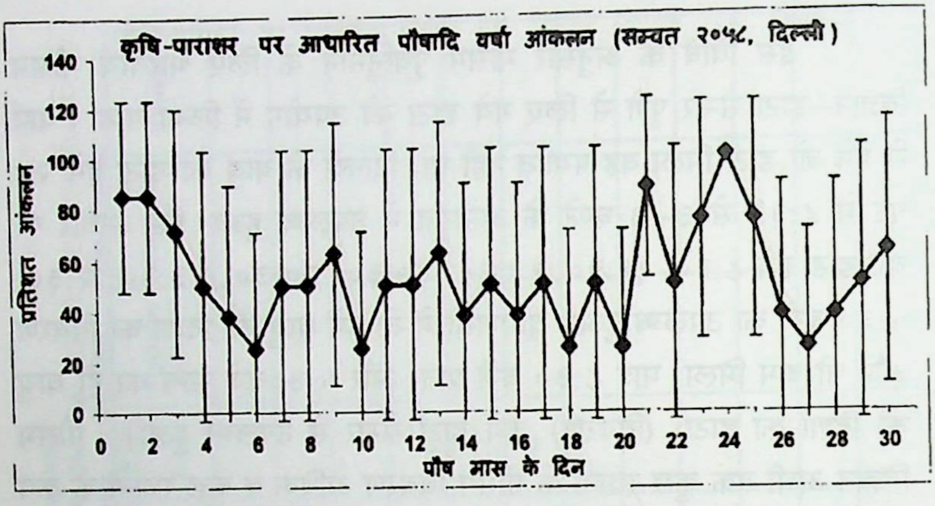
Every Hour from to Sunrise	Sunrise to Sunrise (Every Hour Beginning Time)	Wind direction	Result of Wind direction	Future Predictive Rain Fall Day			Predictive Rain Fall	Actually Rain Fall	Remarks
				Date	Day	Night			
1	06:48			13-Apr					
2	07:48								
3	08:48	0(CALM)	N	14-Apr	N		N		
4	09:48								
5	10:48			15-Apr					
6	11:48								
7	12:48			16-Apr					
8	13:48								
9	14:48			17-Apr					
10	15:48								
11	16:48			18-Apr		N	N		
12	17:48	11(ESE)	N						
13	18:48			19-Apr					
14	19:48								
15	20:48			20-Apr					
16	21:48								
17	22:48			21-Apr					
18	23:48								
19	00:48			22-Apr					
20	01:48								
21	02:48			23-Apr					
22	03:48								
23	04:48			24-Apr					
24	05:48								

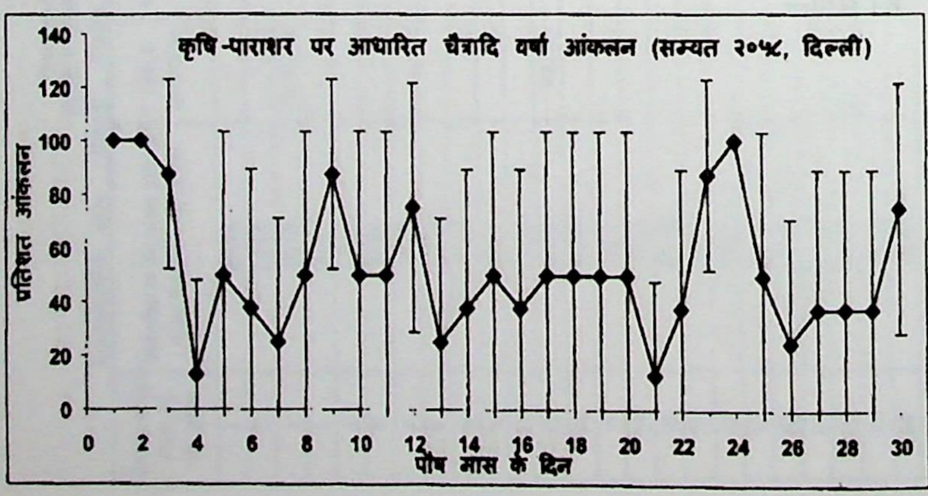
इस विधि की कठिनाईयां –

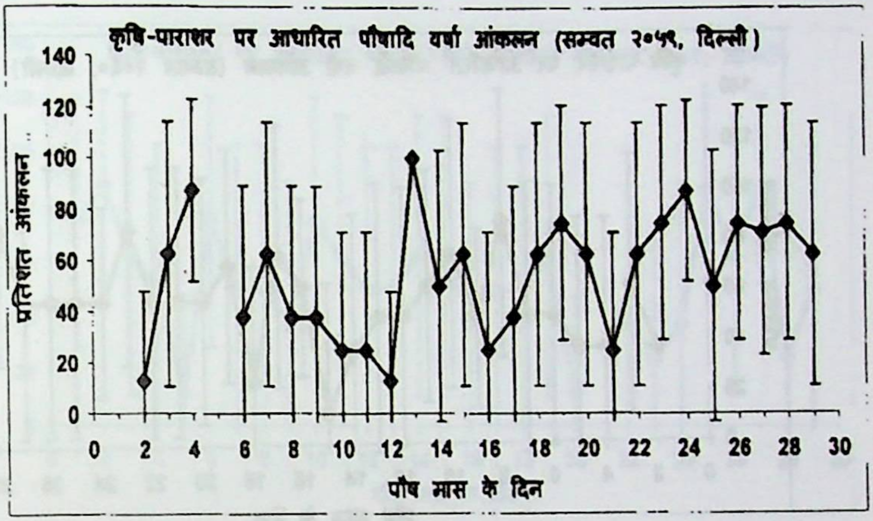
इस विधि के अनुसार मौसम पूर्वानुमान के लिए भारतीय मौसम विज्ञान–डाटा सेन्टर पूणे से लिए गये डाटा को उपयोग में लिया गया । यहाँ से हमें जो डाटा मिला वह पर्याप्त नही था। दिल्ली के वायु का डाटा हमें २४ घंटे में ८:३० से ३–३ घण्टे के अन्तर्गत में उपलब्ध हुआ। इस आधार पर यह डाटा हमें ८:३०, ११:३०, १४:३०, १७:३०, २०:३०, २३:३०, २:३०, ५:३० बजे का उपलब्ध हुआ। वाराणसी में तो हमें वायु की दिशा का विवरण और भी कम मिला। मात्र ८:३० बजे प्रात: और ५:३०बजे सायं का ही वायु की दिशा का डाटा (विवरण) हमें डाटा सेन्टर से उपलब्ध हुआ। मौसम विज्ञान अभी तक कुछ स्थानों के मौसम विवरण अधिक व कुछ स्थानों के कम अन्तरालों के तैयार करता है। जैसे दिल्ली के विवरण ३–३ घण्टे के हैं जबकि वाराणसी के १२–१२ घण्टे के हैं । वाराणसी के आंकडे १२–१२ घण्टे के विवरण के आधार पर तैयार किये गये जो उपयुक्त नहीं कहे जा सकते हैं।

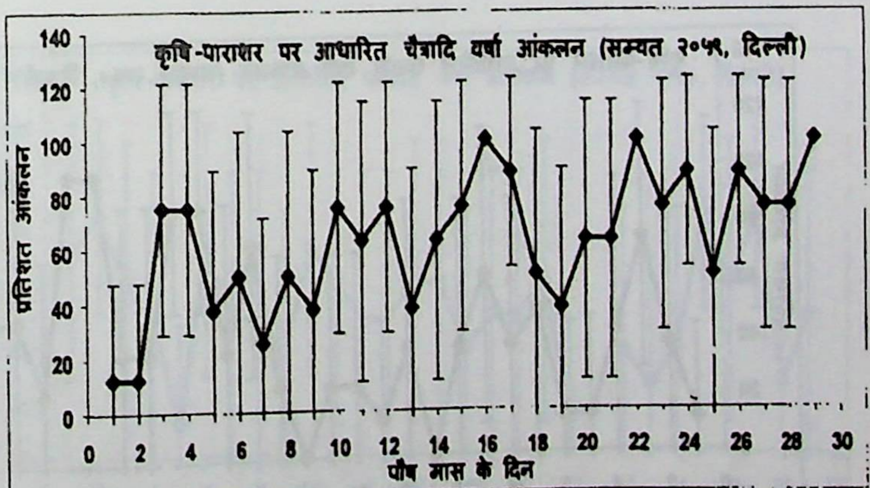
वर्षा का आंकलन–

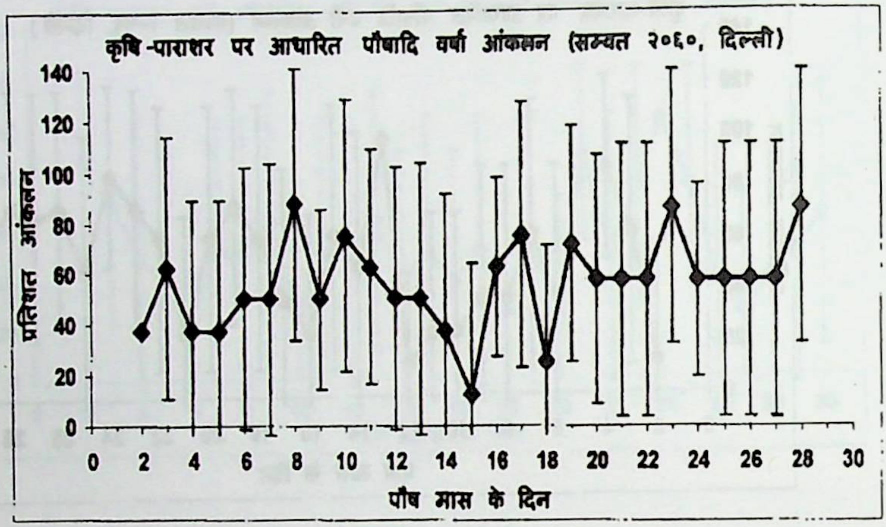
उदाहरणार्थ क्रमश: दिल्ली एवं वाराणसी के पूर्वानुमान अवलोकनार्थ संलग्न हैं। यथा–

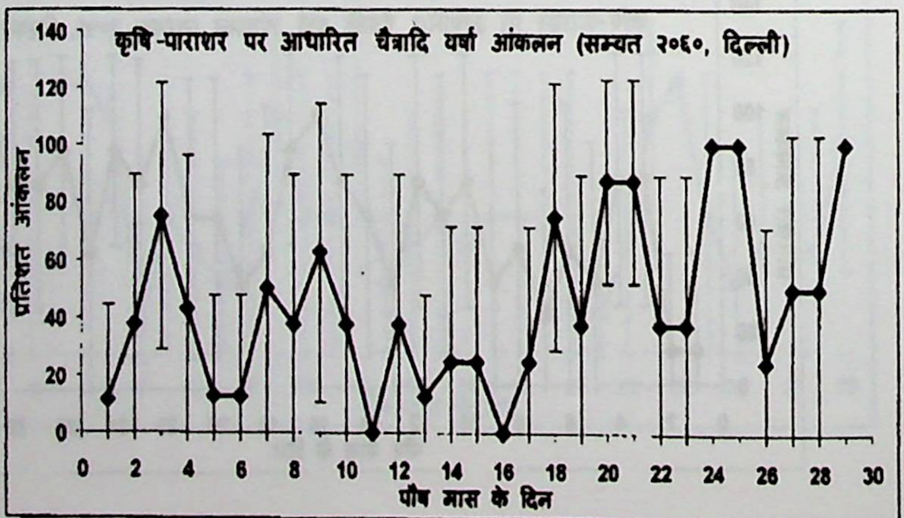

कृषि-पाराशर पर आधारित पौषादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०५८, दिल्ली)
प्रतिशत आंकलन
140
120
100
80
60
40
20
0
0 2 4 6 8 10 12 14 16 18 20 22 24 26 28 30
पौष मास के दिन

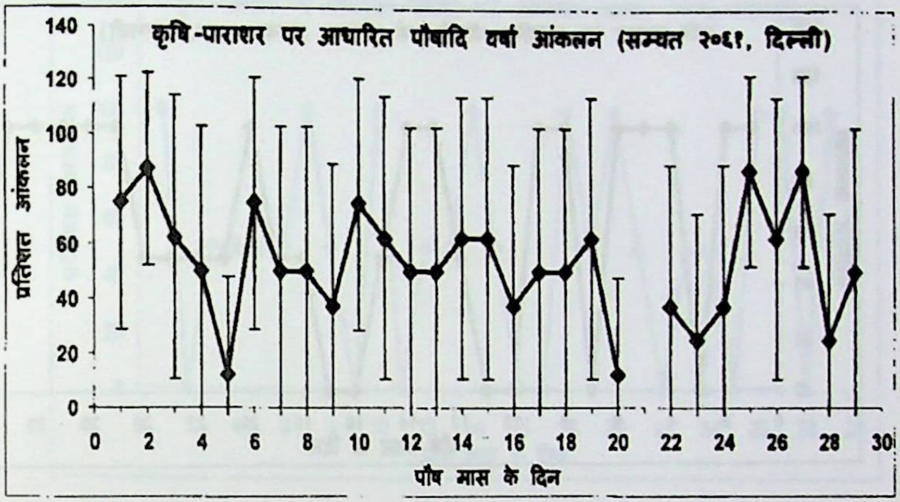

कृषि-पाराशर पर आधारित चैत्रादि वर्षा आंकलन (सम्यत २०५८, दिल्ली)
प्रतिशत आंकलन
140
120
100
80
60
40
20
0
0 2 4 6 8 10 12 14 16 18 20 22 24 26 28 30
पौष मास के दिन

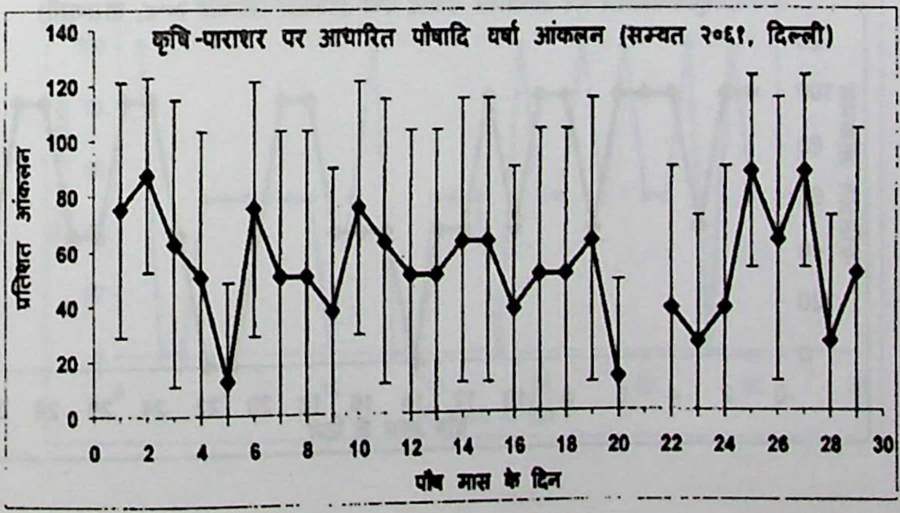

कृषि-पाराशर पर आधारित पौषादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०५९, दिल्ली)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन
0
20
40
60
80
100
120
140
0 2 4 6 8 10 12 14 16 18 20 22 24 26 28 30

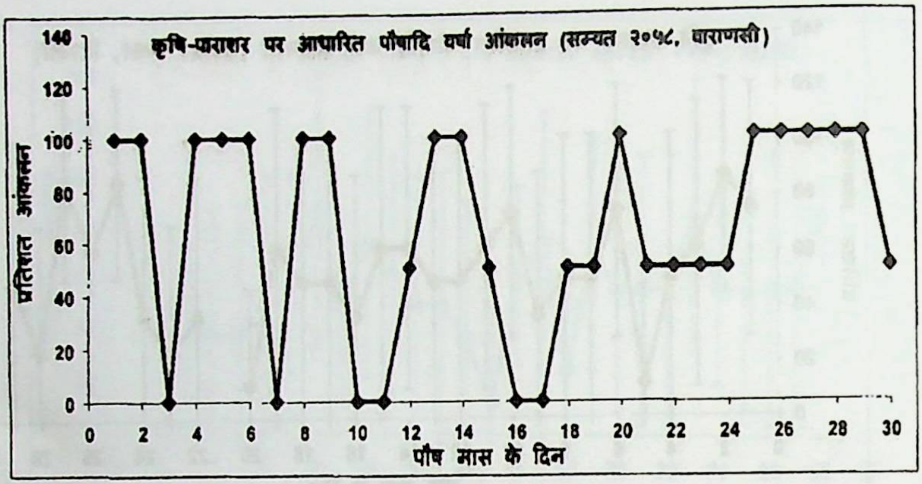

कृषि-पाराशर पर आधारित चैत्रादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०५९, दिल्ली)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन
0
20
40
60
80
100
120
140
0 2 4 6 8 10 12 14 16 18 20 22 24 26 28 30

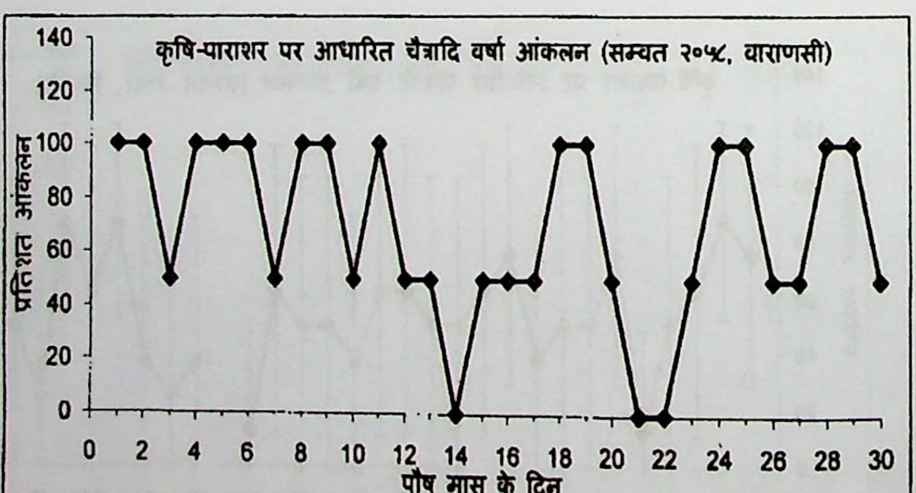

कृषि-पाराशर पर आधारित पौषादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०६०, दिल्ली)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन

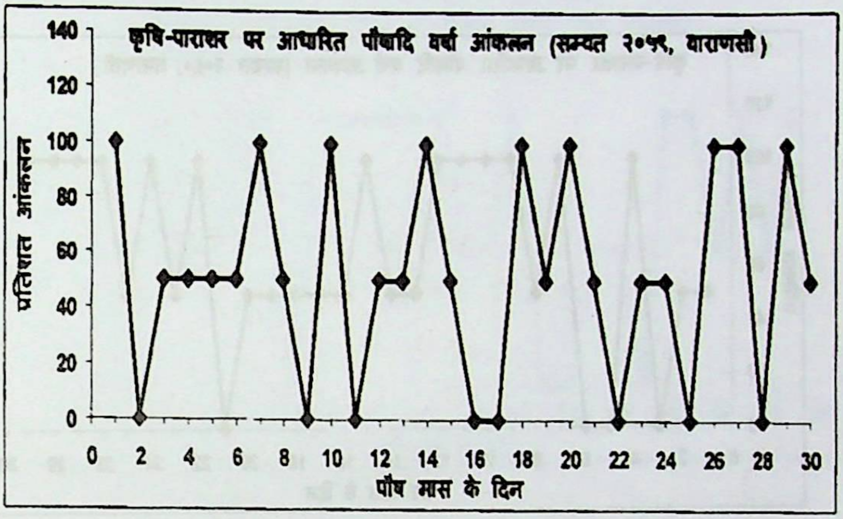

कृषि-पाराशर पर आधारित चैत्रादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०६०, दिल्ली)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन


कृषि-पाराशर पर आधारित पौषादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०६१, दिल्ली)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन
0
20
40
60
80
100
120
140
2
4
6
8
10
12
14
16
18
22
24
26
28
30

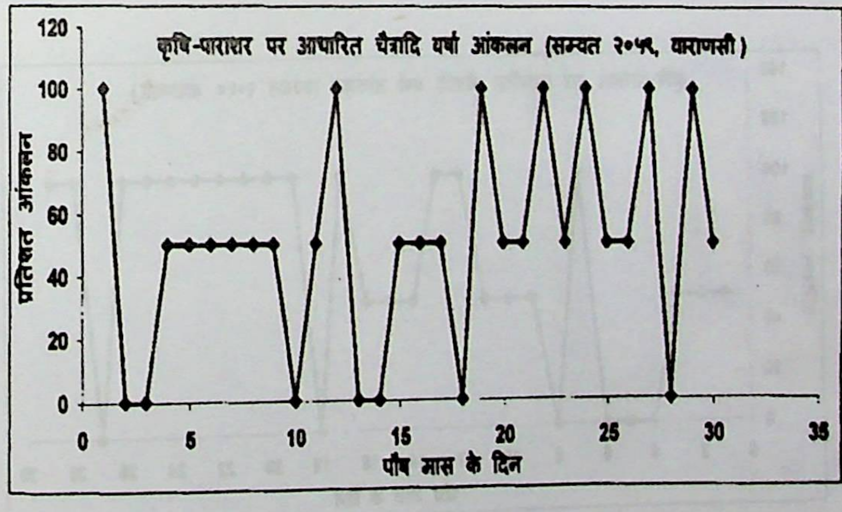

कृषि-पाराशर पर आधारित पौषादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०६१, दिल्ली)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन
0
20
40
60
80
100
120
140
2
4
6
8
10
12
14
16
18
22
24
26
28
30


कृषि-पाराशर पर आधारित पौषादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०५८, वाराणसी)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन
0
2
4
6
8
10
12
14
16
18
20
22
24
26
28
30
20
40
60
80
100
120
140

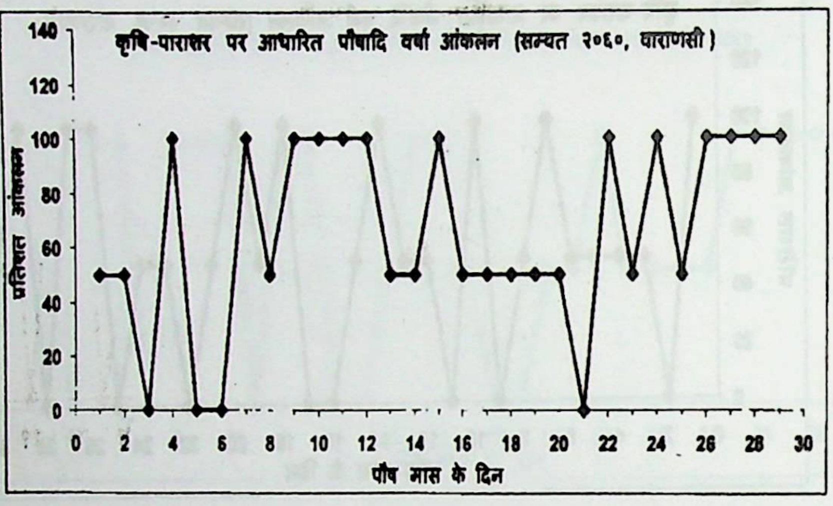

कृषि-पाराशर पर आधारित चैत्रादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०५८, वाराणसी)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन
0
2
4
6
8
10
12
14
16
18
20
22
24
26
28
30
20
40
60
80
100
120
140

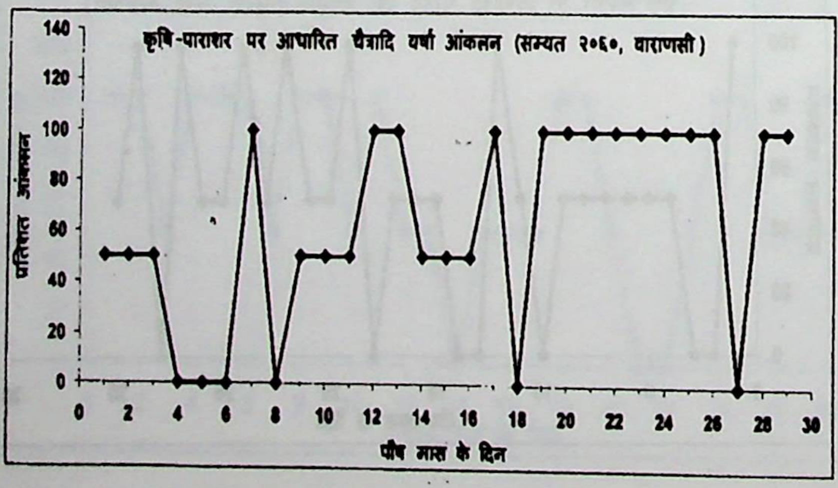


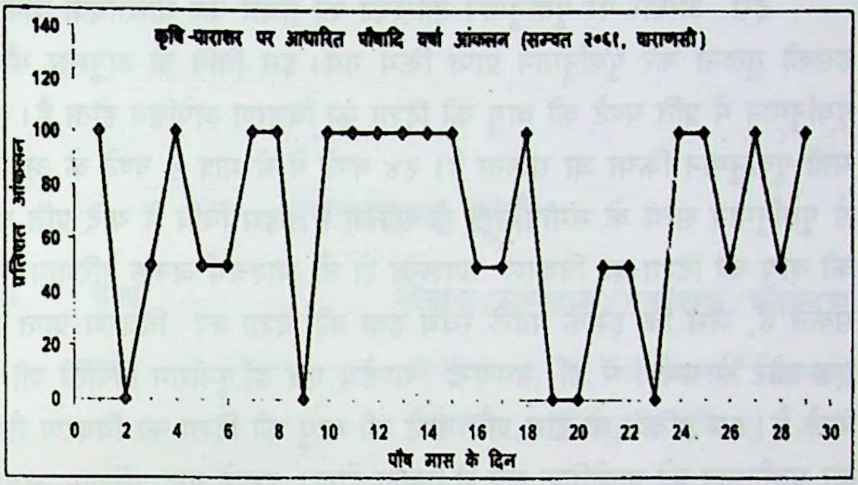
कृषि-पराशर पर आधारित पौषादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०५९, वाराणसी)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन



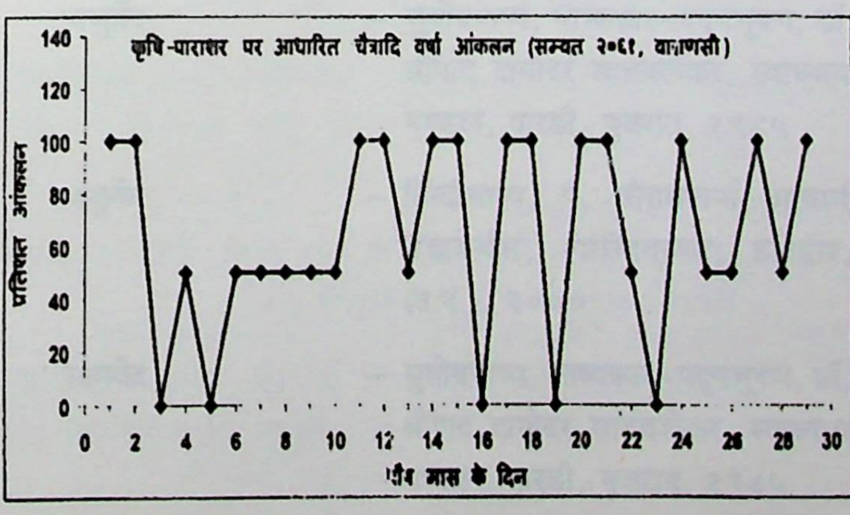
कृषि-पराशर पर आधारित चैत्रादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०५९, वाराणसी)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन


कृषि-पाराशर पर आधारित पौषादि वर्षा आंकलन (सम्यत २०६०, वाराणसी)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन
0
20
40
60
80
100
120
140
2
4
6
8
10
12
14
16
18
20
22
24
26
28
30


कृषि-पाराशर पर आधारित चैत्रादि वर्षा आंकलन (सम्यत २०६०, वाराणसी)
प्रतिशत आंकलन
पौष मास के दिन
0
20
40
60
80
100
120
140
2
4
6
8
10
12
14
16
18
20
22
24
26
28
30



कृषि-पाराशर पर आधारित पौषादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०६१, वाराणसी)
प्रतिशत आंकलन
140
120
100
80
60
40
20
0
0 2 4 6 8 10 12 14 16 18 20 22 24 26 28 30
पौष मास के दिन



कृषि-पाराशर पर आधारित चैत्रादि वर्षा आंकलन (सम्वत २०६१, वाराणसी)
प्रतिशत आंकलन
140
120
100
80
60
40
20
0
0 2 4 6 8 10 12 14 16 18 20 22 24 26 28 30
पौष मास के दिन

इस आधार पर पूर्वानुमान तालिका को तैयार कर वास्तविक वृष्टि से इसकी तुलना कर पूर्वानुमान प्राप्त किये गये। इस विधि के अनुसार मौसम पूर्वानुमान में प्रति घण्टे की वायु की दिशा का विवरण अपेक्षित होता है। तभी सही पूर्वानुमान किया जा सकता है। २४ घण्टे में से मात्र ८ घण्टे के आंकड़ो से पूर्वानुमान सत्य के समीप नहीं हो सकता है । इस विधि में यदि प्रति घण्टे की वायु की दिशा का विवरण उपलब्ध हो तो आश्चर्य जनक परिणाम मिल सकते हैं, जैसे कि इसके पहले स्वयं हवा की दिशा का विवरण प्राप्त कर एक छोटे से प्रयोग में डॉ. रामचन्द्र पाण्डेय एवं डॉ.धूनीराम त्रिपाठी जी को मिले थे। इस प्रविधि के द्वारा प्रति घण्टे की वायु की दिशा का विवरण तैयार कर पूर्वानुमान को प्रायोगिक रूप में देखना होगा। इसके बाद परिणाम अवश्य आश्चर्य जनक होंगे जैसा कि दिल्ली के ३–३ घण्टे के आंकलन से ही प्रतिध्वनित होता है। अत: इस प्रविधि पर पृथक् से वृहद् स्तर पर अनुसंधान की आवश्यकता है । अध्येताओं और जिज्ञासुओं को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

क्र.सं.	ग्रन्थ	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक/संस्करण
१	ऋग्वेद	– हिन्दीभाष्य, पं. श्रीरामशर्मा आचार्य ब्रह्मवर्चस, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, २०००
२.	ऋग्वेद	– सुबोधभाष्य, भाष्यकार–पद्मभूषण, डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, १९८५
३.	ऋग्वेद संहिता	– डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, १९९४
४.	यजुर्वेद	– डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, १९९७
५.	यजुर्वेद	– सुबोधभाष्य, भाष्यकार–पद्मभूषण, डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, १९८५
६.	यजुर्वेद	– हिन्दीभाष्य, पं. श्रीरामशर्मा आचार्य ब्रह्मवर्चस, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, (उ.प.), २०००
७.	सामवेद	– सुबोधभाष्य, भाष्यकार–पद्मभूषण, डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, १९८५

८.	सामवेद	– डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, १९९७
९.	सामवेद	– हिन्दीभाष्य, पं. श्रीरामशर्मा आचार्य ब्रह्मवर्चस, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, (उ.प.), २०००
१०.	अथर्ववेद	– सुबोधभाष्य, भाष्यकार–पद्मभूषण, डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, १९८५
११.	अथर्ववेद	– डॉ. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, गुजरात, १९९७
१२.	अथर्ववेद	– हिन्दीभाष्य, पं. श्रीरामशर्मा आचार्य ब्रह्मवर्चस, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, (उ.प.), २०००
१३.	केदारखण्ड	– प्रो. वाचस्पतिद्विवेदी, अनुसंधान संस्थान सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, २००१
१४.	पुराणदिग्दर्शन	– पं. माधवाचार्य शास्त्री, माधवविद्याभवन, पुरानी गुप्ता कालोनी दिल्ली–०९, सम्वत् २०५३
१५.	सचित्र ज्योतिष शिक्षा (सम्पूर्ण)	– वी. एल. ठाकुर, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली–१९८३
१६.	धर्मशास्त्र का इतिहास	– डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान महात्मागाँधी मार्ग, लखनऊ, १९९२

१७. वैदिकविज्ञान और भारतीय संस्कृति — पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, संस्करण—२०००

१८. वेदों में विज्ञान — डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद, ज्ञानपुर (भदोही), २००४

१९. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास — प्रो. श्रीनिवासरथ/प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय, उत्तर प्रदेश, संस्कृत संस्थान, लखनऊ, २०१२

२०. पुराणगत वेद विषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन — डॉ० रमाशंकर भट्टाचार्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, १९६५

२१. नारदीय ज्योतिष — डॉ. बिन्दाप्रसाद विद्यानिधि प्रकाशन, दल्ली, १८९८

२२. नारदपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन — डॉ. हेमवतीशर्मा बांके विहारी प्रकाशन आगरा, १९९९

२३. पुराणपरिशीलन — पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, विहार राष्ट्रभाषापरिषद पटना, बिहार, २०००

२४. पुराणतत्त्वमीमांसा — श्रीकृष्णमणित्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, २००९

२५. प्राचीन भारत — प्रो. राजबली पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, २०१०

२६. ऋषि—कृषि — श्रीमोहनशंकर देशपाण्डेय आगरा, कोल्हापुर महाराष्ट्र, १९९९

२७. अग्निपुराणम् — महर्षिवेदव्यासः, गुरुमण्डलग्रन्थमाला, संख्या १७, कलकत्ता, १९५७

२८. अथर्वज्योतिषम् — सुधाकरसोमकरभाष्यसहित, मोतीलाल—बनारसीदासः, वाराणसी, १९६१

२९. अथर्ववेदसंहिता — सायणभाष्य, सनातनधर्म यन्त्रालयः, मुरादाबादः, १९५१

३०. अद्भुतसागरः — बल्लालसेनविरचितं सम्पा. डॉ.शिवाकान्तझा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, २००६

३१. अर्वाचीनजन्योतिर्विज्ञानम् — रमानाथसहायः, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयः, वाराणसी, १९६४

३२. आर्यभट्टीयम् — आर्यभट्ट, श्रीरामनिवास, इण्डियन नेशनल साइंस एकेडमी, नई दिल्ली, १९७६

३३. आर्यभट्टीयम् — आर्यभट्ट, कृपाशंकरशुक्ला, इण्डियन नेशनल साइंस एकेडमी, नई दिल्ली, १९७६

३४. आर्षवर्षावायुविज्ञानम् — डॉ. गेन्दनलालशास्त्री, ज्योतिर्विज्ञान अनुसन्धानसंस्थान, मेरठ, १९७९

३५. ऐतरेयब्राह्मण — सुधाकरमालवीय (सं.), ताराप्रिंटिंग प्रसे, वाराणसी, १९८७

३६. कादम्बिनी — श्रीमधुसूदन ओझा, हरिमोहन प्रिन्टिंग प्रेस, जयपुरम्, १९९०

३७. कालामृतम् — कालिदास विरचितम्, सम्पा. प्रो. रामचन्द्र पाण्डेयः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनम्, वाराणसी २००६

३८. कृषिपराशर — सम्पा. प्रो. रामचन्द्रपाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९९९

३९. गणकतरङ्गिणी — म.म.प. सुधाकरद्विवेदी, श्रीसदानन्दशुक्ल, हेमन्तसंस्कृतसीरीज, वाराणसी, १९८६

४०. घाघ भड्डरी की कहावतें — घाघ, सावित्री ठाकुर प्रकाशन, वाराणसी, २००५

४१. छान्दोग्योपनिषद् — उमेशानन्दशास्त्री (सं.) कैलाश आश्रम, ऋषिकेश, १९८३

४२. ज्योतिषरत्नाकर — देवकीनन्दनसिंहः, अशोकराजपथ, पटना, १९३५

४३. ज्योतिर्विदाभरण — कालिदास विरचितम्, सम्पा. प्रो. रामचन्द्र पाण्डेयः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनम्, वाराणसी, १९८८

४४. ज्योतिषपीयूष — म.म. पं. श्री कल्याणदत्तशर्मा (ज्योतिषाचार्यः, राष्ट्रपतिसम्मानितः), श्रीवेदमातागायत्री ट्रस्ट शान्तिकुञ्ज हरिद्वार (उत्तराञ्चल), संवत् २०६१

४५. ज्योतिषशास्त्रस्येतिहास — आचार्य लोकमणि दाहालः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, १९९०

४६. श्रीमद्बापूदेवशास्त्रि प्रवर्त्तित दृक्सिद्धपञ्चाङ्गम् — ज्योतिष विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविलय वाराणसी–०२ (उ.प्र.), वि.सं. २०६१ (सन्–२००४–०५)

४७. ज्योतिषसार — श्रीशुकदेवविरचित, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, १९८७

४८. नरपतिजयचर्यास्वरोदय — नरपतिकवि, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम्, वाराणसी, वि.सं. २०२८

४९. नारदसंहिता — महर्षिनारद, आचार्य रामजन्ममिश्र, चौखम्भा संस्कृत संस्थानम्, वाराणसी, वि. सं. २०५८

५०. नारदत्रिस्कन्धज्योतिष — डॉ. कमलप्रकाश अग्रवाल, स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स, दिल्ली, २०००

५१. प्रश्नमार्ग — सम्पा. प्रो. शुकदेवचतुर्वेदी, रञ्जन पब्लिकेशन, दिल्ली, वि. सं. २०३४

५२. बृहद्दैवज्ञरञ्जन — व्या. डॉ. मुरलीधरद्विवेदी, मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, १९८५, २००१

५३. बृहज्जातक — श्रीवराहमिहिराचार्य, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, १९८१

५४. बृहत्पराशरहोराशास्त्रम् — श्रीपराशरः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, १९९९

५५. बृहत्संहिता — व्या. देवचन्द्रझा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००५

५६. बृहत्संहिता — श्रीकृष्णचन्द्रद्विवेदी, सम्पूर्णानन्दसंस्कृत वि.वि., वाराणसी, १९९६

५७. भद्रबाहुसंहिता — डा. नेमिचन्दशास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठम्, नई दिल्ली, १९५९

५८. भविष्यपुराणम् — महर्षिवेदव्यासः, खेमराज श्रीकृष्णदासः, मुम्बई, १९६७

५९. भारतीयज्योतिष — पं. नेमिचन्द्रशास्त्री, भारतीयज्ञानपीठ प्रकाशनम्, नई दिल्ली, १९५२

६०. भारतीयज्योतिष — शिवनाथ झारखण्डी, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थानम्, लखनऊ, २००२

६१. भास्करीयगोलमीमांसा — प्रो. देवीप्रसादत्रिपाठी, श्री ला.ब.शा.रा. सं.विद्यापीठ, दिल्ली, २०११

६२. भुवनकोशविमर्शः — प्रो. देवीप्रसादत्रिपाठी, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स, दिल्ली, २००४

६३. मत्स्यपुराणम् — महर्षिवेदव्यासः, गुरुमण्डलग्रन्थमाला, कलकत्ता, १९५७

६४. मयूरचित्रम् — नारदभाषितम्, सम्पा. अनुभूति चौहानः, संस्कृत ग्रन्थागारम्, दिल्ली, २००५

६५. महाभारतम् — महर्षि वेदव्यासः, गीताप्रेस, गोरखपुर, १९५७

६६. मुहूर्तचिन्तामणिः — आचार्यनारायणरामदैवाः, चौखम्भा विद्या–भवनम्, वाराणसी, शक्. १५२२

६७. मेघदूतम् — कालिदास, साहित्यभण्डार, मेरठ, १९६८

६८. मेघमाला — डा. सर्वनारायण झा, श्रीगंगानाथ झा राष्ट्रिसंस्कृत–संस्थानमुद्र इलाहाबाद, १९९९

६९. रुद्रयामलतन्त्रम् — आ. रामप्रसादत्रिपाठी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९९३

७०. ऋग्वेदसंहिता — आचार्य सायण, मैक्समूलर, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६६

७१. लघुपाराशरी — डा. सुरेशचन्द्रमिश्रः, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठानम्, वाराणसी, २००४

७२. लीलावती — व्या. श्रीसीतारामझा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, २००१

७३. वनमाला — व्या. कामेश्वरउपाध्याय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७९

७४. वाराही संहिता — बलदेवप्रसाद मित्रः खेमराज श्रीकृष्णदास, मुम्बई, १९७५

७५. विष्णुपराण — महर्षिवेदव्यासः, गीताप्रेस गोरखपुर, १९६१

७६. संस्कृतवाङ्मये जलविज्ञानम् — डॉ. श्रीकृष्णसेमवालः, दिल्ली संस्कृत अकादमी, नई दिल्ली, २००९

७७. संग्रहशिरोमणि — कमलकान्तशुक्लः, संस्कृत विश्वविद्यालयः, वाराणसी, १९९४

७८. सिद्धान्तशिरोमणि — व्या.पं. सत्यदेवशर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, २००६

७९. सूर्यसिद्धान्त — टीका. श्रीकपिलेश्वरशास्त्री, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, १९९५

८०. श्रीमद्भगवद्गीता — व्या. स्वामीरामसुखदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, २००६

८१. श्रीत्रैलोक्यप्रकाश — अनु. पं. भगवानदास जैन, ओरियण्टल बुक सेन्टर, दिल्ली, २००५

८२. भारतीयज्योतिष — डॉ. नेमीचन्द्र, भारतीयाानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, १९५२

८३. मनुस्मृति — गङ्गानाथ झा, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९९२

८४. वराहपुराण — मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, नई दिल्ली, १९८४

८५. वामनुपराण – वेदव्यासः, नाग प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८३

८६. वायुपुराण – वेदव्यासः, नाग प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८३

८७. कूर्मपुराण – वेदव्यासः, नाग प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८३

८८. शतपथब्राह्मण – बी.बी.चौबे (सं.), भारतीय विद्याभवन, वाराणसी, १९९०

८९. प्राच्यभारतीयम् ऋतुविज्ञानम् – डा. धुनीरामत्रिपाठी, सं.सं.वि.वि., वाराणसी, २००२

९०. वेधशाला परिचय – पं. कल्याणदत्तशर्मा, सं.सं.वि.वि., वाराणसी, १९९२

९१. जलवायु और मौसम – डा. एस. कश्यपः, आर्यप्रकाशन–मण्डलम्, दिल्ली, १९८१

९२. जलवायुविज्ञान – डी. एस. लाल, शारदा पुस्कत भवन, इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश, २००४

९३. जलवायुविज्ञान – एस. एल. गुप्ता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, २०००

९४. जलवायुविज्ञान के मूलतत्त्व – अनिल कुमार तिवाड़ी व बी. एल. शर्मा, राजस्थान के मूलतत्त्व, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान, १९७४

९५. मौसमविज्ञान – रमेश चन्द्र बनर्जी तथा दयाशंकर उपाध्याय, रास्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान, १९७३

९६. बृहत्संहिता – वराहमिहिर, अच्युदानन्द झा, चौ. विद्याभवन वाराणसी, २०००

९७. बृहत्संहिता भाग–I – वराहमिहिर, सं.सं. विश्वविद्यालय वाराणसी, १९९७

९८. बृहत्संहिता भाग–II – वराहमिहिर, सं.सं. विश्वविद्यालय वाराणसी, १९९६

९९. बृहत्संहिता भाग–I – वराहमिहिर, आ. नागेन्द्रपाण्डेय:, सं.सं. विश्वविद्यालय वाराणसी, २००२

१००. संग्रहशिरोमणि भाग–I – कमलकान्तशुक्ल:, सं.सं. विश्वविद्यालय वाराणसी, १९९६

१०१. संग्रहशिरोमणि भाग–II – कमलकान्तशुक्ल:, सं.सं. विश्वविद्यालय वाराणसी, १९९७

१०२. पदार्थ विज्ञान – डॉ. वी.के.द्विवेदी, चौ. कृष्णदास अकादमी, २००३

१०३. मौसम विज्ञान – रमेशचन्द्र बनर्जी, द. श. उपाध्याय, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९९१

१०४. भूविज्ञान परिचय – क्रोनाइस तथा क्रम्बाइन, विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, २०००

१०५. मौसम विज्ञान – रमेशचनद्र बनर्जी/दयाशंकर उपाध्याय, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९९४

१०६. भू–आकृति विज्ञान – एस. एल. गुप्ता, हिन्दी माध्यम कार्य, दि. विश्वविद्यालय, १९९२

१०७. जलवायु विज्ञान के मूलतत्व – अनिल कुमार तिवारी, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, २००२

१०८. वैदिक निर्वचन कोश – डा. कृष्णलाल, जे.पी.पब्लिशिंग हाउस जयपुर, २००१

१०९. वेद विज्ञान वीथिका – डॉ. दयानन्दभार्गव, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, १९९६

११०. पुराणविमर्श — आ. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी २००२

१११. सूर्यसिद्धान्त — श्रीकृष्णचन्द्र द्विवेदी सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, १९८७

११२. श्रीमदमरसिंह अमरकोषः — श्रीमन्नालाल अभिमन्यु एम. ए. चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १९९९

११३. कादम्बिनी — स्व. प. श्रीमधुसूदनशर्म्ममैथिलः, पण्डित श्री प्रधुम्नशर्मा ओझा, हरिमोहन प्रिंटिंग प्रेस, पुराणी वस्ती जयपुर सिटि, १९९९

११४. भौतिक भूगोल — डॉ. एल. एन. उपाध्याय, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १९९४

११५. अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम् — श्री रामनाथसहाय, सम्पूर्णानन्द सं.वि. वि., १९९६

११६. ग्रहगति का क्रमिक विकास— श्रीचन्द्र पाण्डेय, कृष्णदास अकादमी वाराणसी, १९८२

११७. भूगोल परिभाषा कोश — संयोजक मण्डल, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, २००१

११८. गणितीय भूगोल–II — डॉ. डी.पी.पी. शतपथी, बिहार हिन्दीग्रन्थ अकादमी पटना, १९८५

११९. नारद त्रिस्कन्ध ज्योतिष — डा. कमलप्रकाश अग्रवाल स्टैण्डर्ड पब्लिशर्स, नई दिल्ली, २०००

१२०. गणितीय भूगोल–I — जेम्सन एण्ड ऑर्म्सबी, विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९७८

१२१. चार शुल्वसूत्र — डॉ. रघुनाथ पुरुषोत्तम कुलकर्णी, महर्षीसन्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान,२००३

१२२. सचित्र ज्योतिष शिक्षा, — बाबूलाल ठाकुर, मोतीलाल बनारसी दास, १९९६

१२३. वाचस्पत्यम् — तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली—५८, २००६

१२४. श्रीमद्बापूदेवशास्त्रिप्रवर्त्तित दृक्सिद्धपञ्चाङ्गम् —ज्योतिष विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविलय वाराणसी—०२ (उ.प्र.), वि.सं. २०६० (सन्—२००३—०४)

१२५. अमरकोश — श्रीमद्रामसिंह विरचित, भानु जी दीक्षित, चौखम्बा कृशणदास अकादमी वाराणसी, २००२

१२६. वैदिक एवं वेदोत्तर भारतीय संस्कृति — प. गंगाधरमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, १९८१

१२७. चक्रपाणिमिश्र, — विश्ववल्लभ—वृक्षायुर्वेदः श्रीकृष्ण जुगनू न्यूभारतीय बुक कारपोरेशन दिल्ली, २००५

१२८. भद्रबाहुसंहिता — डॉ. नैमिचन्द्र ज्योतिषचार्य भारतीयज्ञानपीठ दिल्ली, २००४

१२९. कालिदास का भारत — भगवतशरण उपाध्याय, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, २००५

१३०. मत्स्यमहापुराण — डॉ. पुष्पेन्द्र, मेहेमचन्द्र लक्ष्मनदास दिल्ली, १९८४

१३१. वराहमहापुराण — के. वी. शर्मा, मेहेमचन्द्र लक्ष्मनदास दिल्ली, १९८४

१३२. नरपतिजयचर्या स्वरोदयः — श्रीमन्नरपतिकवि गणेशदत्तपाठक, चोखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.सं. २०६१

१३३. संस्कृत–हिन्दी कोश — वामन शिवराम आप्टे, न्यू भारती बुक कारपोरेशन, दिल्ली, २००६

१३४. शतपथ ब्राह्मण I & II — डा. बी.बी. चौबे, भारतीय विद्या प्रकाशन, १९८९

१३५. कौटिल्य अर्थशास्त्रम् — वाचस्पतिगौरोला, चौखम्बाविद्याभवन वाराणसी–१, पञ्चम सं.–२००६

१३६. ब्रह्माण्ड और सौर–परिवार — डा. देवीप्रसादत्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन, नवीन सहादरा दिल्ली–३२, २००४

१३७. नारद संहिता — पं. रामजन्म मिश्र, चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वि.सं.–२०५८

१३८. सिद्धान्तशिरोमणि — श्रीभास्कराचार्य गणपतिदेवशास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, चतुर्थ संस्करण–२००५

१३९. मैकडौनेल और कीथ वैदिक इण्डेक्स–I & II — रामकुमारराय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, वि.सं.–२०१८

१४०. कृष्णयजुर्वेदीय–तैत्तिरीय–संहिता — श्रीमत् सायणाचार्य विरचित, द्वितीयो भाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं. विद्यापीठम्, १९८९

१४१. संस्कृत साहित्य का इतिहास — वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००३

१४२. शब्दकल्पद्रुम — राजा राधाकान्तदेव, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान नई दिल्ली–२००६

१४३ विद्यापीठ पञ्चाङ्ग — ज्योतिष विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली–१६, वि.सं. –२०५८, सन् २००१–०२

१४४. विद्यापीठ पञ्चाङ्ग — ज्योतिष विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली–१६, वि.सं. –२०५९, सन्–२००२–०३

१४५. विद्यापीठ पञ्चाङ्ग — ज्योतिष विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली–१६, वि.सं. –२०६०, सन्–२००३–०४

१४६. विद्यापीठ पञ्चाङ्ग — ज्योतिष विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली–१६, वि.सं. –२०६१, सन्–२००४–०५

१४७. श्रीमद्बापूदेवशास्त्रिप्रवर्त्तित दृक्सिद्धपञ्चाङ्गम् —ज्योतिष विभाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविालय वाराणसी–०२ (उ.प्र.), वि.सं.२०५८–२०६१ (सन्–२००१–०५)

१४८. Theory of Re-ciruculation of the Atmosphere E.W.Bailow, The American Philosophical Society, 2000

१४९. Climatology - Dr. Sarvendra Singh, Bhandar, Merut, 2002

१५०. Physical & Dynamical Meteorology - David Brunt, Rosan Publising Group, Canada, 2003

१५१. History of Science - Pat Mundey, Encyclopedia Britanica, 11th edition, New York, 1911

१५२. Ptolemy's theory of cosmology - Smith A. Mark, The American Philosophical Society, 2000

१५३. The Natural Science - Robertson, University of Scotland Retriked, 2007

१५४. The Background of Ptolemy's planetry theory - Benard R. Goldestein, Journal for the History of Astronomy-28, 1977-1-12

१५५. Geographical Concept in Ancient India - Dr. Bechan Dube, B.H.U., Varanasi, 1967

१५६. Our Solar System - Avinash Vasudev Joshi and Narayan Chandra Rana, Wiley

Eastern Limited, New Delhi, 1992

१५७. The Oxford School Atlas - Oxford University Press, Delhi, 1990

१५८. Vedic Meteorology - Dr. Ravi Prakash Arya, Parimal Publications Delhi, 1995

१५९. Atmosphere, Weather and Climate - K. Sidharth, Kiralaya Publication Pvt. Ltd., 2002

Fosters Limited, New Delhi, 1992

१४९ The Oxford School Atlas - Oxford University Press, Delhi, 1990

१५० Vedic Meteorology - Dr. Ravi Prakash Arya, Parimal Publications Delhi, 1995

१५१ Atmosphere, Weather and Climate - K. Siddharth, Kisalaya Publication Pvt. Ltd., 2002

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

नैक द्वारा 'ए' श्रेणी प्राप्त

कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, कटवारिया सराय

नई दिल्ली - 110016